॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

मासिक

फरवरी १९७६
शिवरात्रि : २०३२

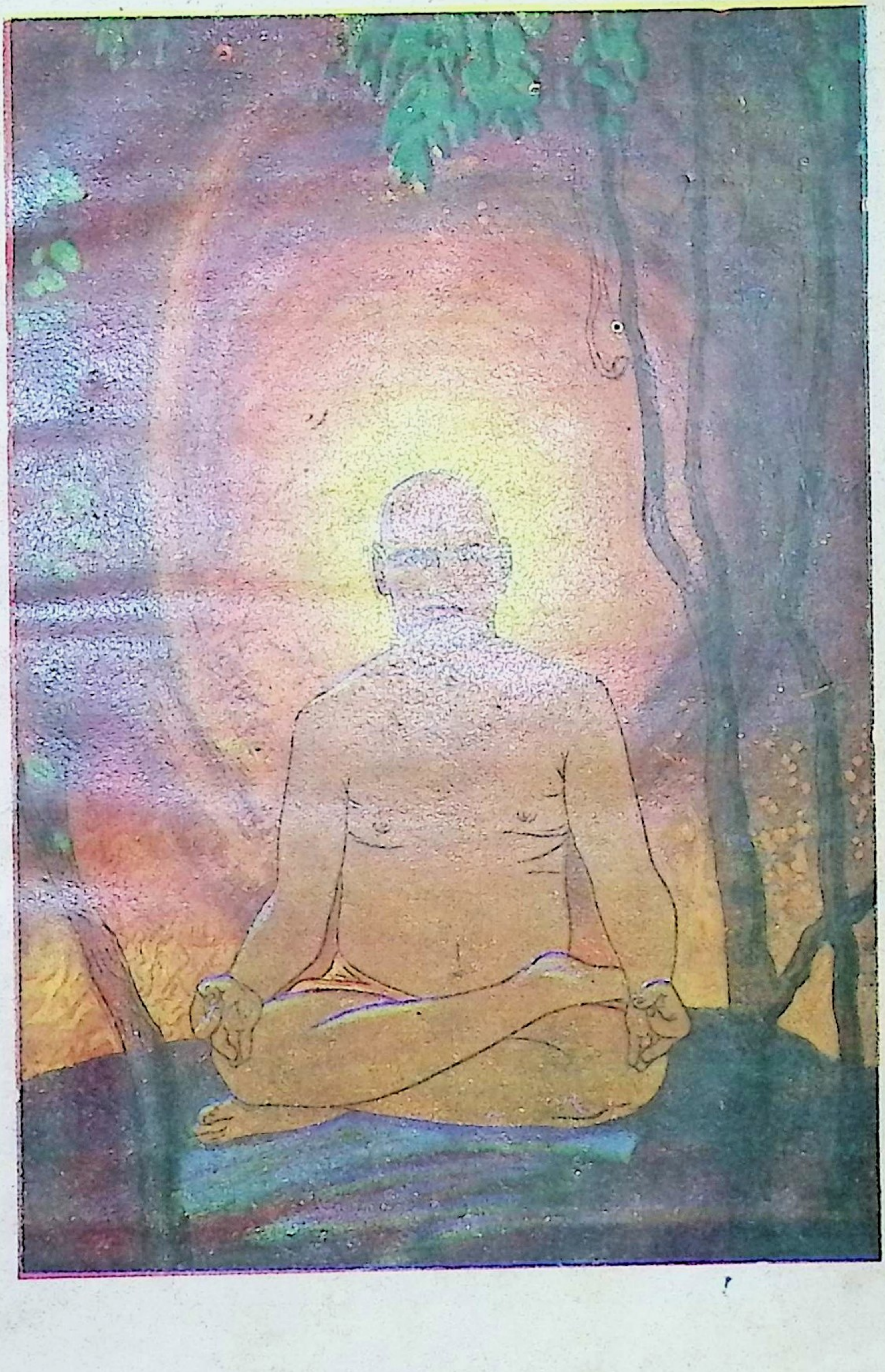

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

जन - ज्ञान

मासिक

संपादक
राकेश रानी
सह-संपादक
सुमेधा स्नातिका
दूरभाष : ५६६६३६

पता
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१-नाईवाला]
करौल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में ३ पौंड
(हवाई डाक से)
२ पौंड : समुद्री डाक से
(आजीवन २५१)

वर्ष ७ : अंक १०
फाल्गुन संवत् २०३२
फरवरी : १९७६

२७ फरवरी १९७६ की प्रातः काशी पहुंचो !

काशी 'ज्ञान' की राजधानी है। संसार काशी से प्रेरणा लेता रहा है। महर्षि दयानन्द ने काशी में विद्वानों को सत्य का प्रकाश दिखाने का प्रबल प्रयत्न किया था।

आज फिर सौभाग्य से शिवरात्रि के पवित्र अवसर पर काशी में २७-२८-२९ फरवरी को एक विशाल समारोह होने जा रहा है। इस शताब्दी समारोह का अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्व है।

वस्तुतः यह आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व रखता है। काशी का बदला रूप संसार के मस्तिष्कों को बदलने का सामर्थ्य रखता है। महर्षि दयानन्द ने इसी दृष्टि से अपने पूरे बल से काशी के विद्वानों को झकझोरा था।

आर्यजन ! उत्साह और उमंग से एक बार फिर २७ फरवरी की प्रातः काशी पहुँचने का संकल्प कीजिए। ज्ञान की नगरी में वैदिक धर्म का पवित्र नाद गुंजाने के लिए काशी पहुँचिए।

आर्यसमाजों को चाहिए कि अपने अपने स्थान से बसों का प्रबन्ध कर २७ की प्रातः काशी पहुँचें। अपने साथ समाज का माटो नया अवश्य लाएँ।

हमें एक बार फिर यह सिद्ध करना है कि आर्यसमाज के सैनिक आज भी जागृत हैं और भारत के बुद्धिजीवी वर्ग को बदलने के लिए उनमें शक्ति भी है और उमंग भी !

तैयारी कीजिए, भारी संख्या में काशी पहुँचने का निश्चय कर सभी को प्रेरित करें.........

"ओ३म्" की पावन ध्वजा फहराते हुए काशी पहुंचिये। जहां महर्षि ने वेद पताका अपने ज्ञान बल से फहरायी थी वहीं एक बार फिर 'ओ३म्" ध्वजा सभी के मानस पर फहराने हेतु जो भी कर सकते हों, कीजिए।

काशी वासियों को 'वेद' सत्य और सच्चे शिव के दर्शन का मार्ग बताने के लिए हम आप को काशी पहुँचने का आह्वान करते हैं।

—भारतेन्द्र नाथ

काशी के प्रत्येक मन्दिर में
ऋषि दयानन्द के भक्त

सत्यार्थ-प्रकाश - ऋषि जीवन
और 'वेद' पहुंचाने का संकल्प लें

प्रत्येक आर्यसमाज कम से कम
१०० सत्यार्थ प्रकाश १) में दें

ऋषि जीवन चरित्र ५० पैसे में
वितरित कीजिए

काशी के घर-घर में वैदिक
साहित्य पहुंचाने का व्रत लेकर
२७ फरवरी को प्रातः काशी पहुंचिए

सम्पादकीय

अपने को सुधारो !

हम दूसरों की बुराइयाँ देखते हैं, पर अपने को कभी नहीं देखते। अपनी त्रुटियाँ हमें गुण दिखाई पड़ती हैं और दूसरों की अच्छाइयाँ हमारे नेत्रों से ओझल हो जाती हैं।

किन्तु यह तो अपने विनाश का मार्ग है। आज की सब से पहली और बड़ी आवश्यकता है अपना सुधार। अपना निर्माण, आत्म निरीक्षण। आत्म चिन्तन के क्षण में ही हम अपने निकट आते हैं।

शताब्दी वर्ष भी बीत जाएगा ! पर यदि आप सबसे पूछा जाए कि इस वर्ष में आपने अपने को, अपने परिवार को कितना बदला ? तो क्या आप उत्तर दे सकेंगे ?

कितने भाई हैं जो अपने परिवार के साथ बैठकर प्रतिदिन संध्या करते हैं ? कितने हैं जो अपना काम ईमानदारी से करते हैं, कितने हैं जो सदा सच बोलते हैं ? क्या आप में स्पष्ट चिन्तन का साहस है।

भाषण—उपदेश—नारे क्या हमें उठा सकेंगे ? क्या असत्य का ग्रहण कर हम सत्य का डंका बजा सकेंगे ? घृणा के सरगम पर प्यार का गीत कौन बजा सकेगा ? कथनी और करनी का अंतर क्या हमें बढ़ा सकेगा ? उत्तर दे सकते हो तो दो, प्रश्न बहुत सीधा है, कि आप ने इस शताब्दी वर्ष में—

१—अपने को कितना बदला ?

२—कितने व्यक्तियों को दयानन्द का अनुयायी बनाया ?

आर्यसमाज मन्दिरों में सप्ताह में एक दिन इकट्ठे होकर, सत्संग निपटा कर अपने कर्त्तव्य की समाप्ति समझने वाले बताएँ कि क्या उन्होंने कभी अपने आस पास भी झाँककर देखा है।

अपना घर—मोहल्ला नगर और सारा क्षेत्र क्या आर्य विचार धारा से भर चुका है। यदि नहीं तो फिर संसार को आर्य बनाने का सपना कैसे पूरा होगा ?

सोचो और कुछ करो। अपने को, अपने आस पास को बदलो ! लकीर मत पीटो, कुछ सोचो और रास्ता बताओ ! संसार बहुत बड़ा है, पर आप स्वयं भी तो संसार के ही एक घटक हो।

यह देह सदा नहीं रहेगी। हम सब कुछ काल के लिए, अपने अपने क्षेत्र में आए हैं। हमें जितने समय रहना है, उतने में ही कुछ करना है। देह के मोह में अन्धे बन कर भटकना सबसे बड़ी मूर्खता है, अज्ञान है। इसलिए आओ, काम में जुट जाएँ। शिवरात्रि के दिन आत्मनिरीक्षण करें और सोचें कि कहीं हमने अपना सारा जीवन व्यर्थ में ही तो नहीं खो दिया।

मूलशंकर का चिन्तन यदि युग को बदल सकता है तो आप का चिन्तन भी अपने को, अपने परिवार और समाज को नयी चेतना दे सकता है।

पर क्या आप सोचेंगे ?

एक और सस्ता प्रकाशन

संस्कार विधि :

बढ़िया कागज पर महर्षि का यह अनमोल ग्रंथ अब संस्थान ने प्रकाशित किया है।

मूल्य =२)५०। सजिल्द ४)

१५०) सैंकड़ा। २५०) सैंकड़ा

बड़ा साइज सजिल्द मूल्य ६)

नए महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

100 YEARS OF THE ARYA SAMAJ

बड़े साइज में—५½×८ इंच सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर बहुत ही बढ़िया मुद्रित अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों में प्रचार के लिए अनुपम—पं० भारतेन्द्र नाथ लिखित यह ऐसा प्रकाशन है जैसा विदेशों में ही प्रचार हेतु छपता है— मूल्य ५०पैसे = ३५) सैकड़ा

Universal Patriotism

स्वामी भूमानन्द सरस्वती द्वारा की गयी देश भक्ति पूर्ण वेद मंत्रों की अनुपम व्याख्या, इस ग्रन्थ को पढ़कर आप मंत्रों का गूढ़ार्थ आसानी से समझ सकेंगे।

मूल्य केवल २)

ऋषि दयानन्द ने कहा था....

बढ़िया तिरंगा कवर मूल्यः १ रु० ४० पैसे, १००) सैकड़ा

दयानन्द संस्थान नई, दिल्ली-५

सबसे बड़ी आवश्यकता

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम नए कार्यकर्ता, उपदेशक, तैयार करें। पुराने इने गिने उपदेशक अब उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।

नए विद्वान् उपदेशक बनना नहीं चाहते। आर्य समाजें नेताओं को पूछती हैं विद्वानों को नहीं, तो कोई उपदेशक क्यों बनें? जब मूर्ख रहकर और झूठी घोषणाएँ करके सम्मान मिल सकता है तो विद्वान् त्याग क्यों करें।

उपदेशक आर्य समाज के प्राण हैं। उनका सम्मान ही हमें जीवन दे सकेगा, यह तथ्य जितना शीघ्र हम समझ लें, उतना ही कल्याण है।

आर्य परिचय

हम आर्य समाज के विद्वानों, संन्यासियों, पुरोहितों, लेखकों, कवियों भजनोपदेशकों और अधिकारियों का एक सचित्र परिचय छाप रहे हैं। इसका फार्म इसी अंक में छपा है। सभी यह विवरण शीघ्र भजें।

जन-ज्ञान साप्ताहिक हो गया

शताब्दी वर्ष में जन-ज्ञान साप्ताहिक हो गया। जन-ज्ञान (मासिक) के सभी सदस्यों को जमा धन में से उतने ही समय के लिए साप्ताहिक का सदस्य बना लिया गया है। और **भविष्य में सभी को साप्ताहिक संस्करण भेजा जाएगा।**

किन्तु हमारी इच्छा है कि सभी मासिक संस्करण भी लेते रहें। इस की पाठ्य सामग्री सर्वथा पृथक होगी। अतः हमने यह सुविधा दी है कि आप **केवल १०) भेजकर** जन-ज्ञान मासिक के सदस्य भी बन सकते हैं।

हमने बिना साधनों के आगे चरण बढ़ा दिए हैं। हमें विश्वास है कि सभी का स्नेह सहयोग हमें प्राप्त होगा।

हम घोषणाओं में नहीं कार्य में विश्वास रखते हैं। क्या हम आशा करें कि 'वेद' और ऋषि दयानन्द के अनुयायी काम का महत्त्व समझ हमें उदारता पूर्वक अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

—राकेश रानी

१९७६ के लिए आकर्षक डायरी

वैदिक-दैनन्दिनी (डायरी)

नयी साज सज्जा

अनेकों आकर्षण युक्त

पहले से दुगने पृष्ठ

२४ रंगीन चित्र

साइज़ पहले जितना

एक पृष्ठ पर एक तिथि : दूसरा संस्करण

मूल्य

अजिल्द ५) =३००) सैंकड़ा

सजिल्द ६) =४००) सैंकड़ा

१९७६ का आकर्षक कैलेंडर

५ रंगों में छपा : बड़े साइज़ का कैलेंडर

तैयार है

५०) सेकड़ा

अपना आदेश तुरन्त भेजें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ~

प्रभु सबका कल्याण करें

तुम अपनी प्रशंसा के गीत गा सकते हो। अपने कामों का ढिंढोरा पीट सकते हो, पर जब तक संसार तुम्हारी मान्यताएँ स्वीकार नहीं करता, तुम्हारे कथन का क्या मूल्य है ?

कभी तुमने अपने आसपास भी झांककर देखा है? कभी तुमने यह अनुभव भी किया है कि जहाँ तुम रह रहे हो, वहां कितना अंधकार है ? उसे अंधेरे को उजाले में बदलने का भाव क्या कभी तुम्हारे मन में उठा है ?

तुम उपदेश दे सकते हो, सुन कर गर्दन हिला सकते हो, पर यदि तुम्हारे आचरण में कुछ नहीं आया तो तुममें व किसी और में क्या अन्तर है ?

सोचो और विचारो, तुम कहां भटक रहे हो ? तुम्हें कहाँ जाना था, और तुम कहां जा रहे हो ? तुम मनुष्य हो, ईश्वर के पुत्र……किन्तु क्या अपने पिता की बातों को तुम ने माना या समझा है।

तुममें और पशु में क्या अंतर हैं ? तुम्हारा जीवन उन से कितना भिन्न है ? कहाँ जा रहे हो ? सोचो तो सही…पेट भरने के लिए ही क्या यह मनुष्य देह तुम्हें मिली थी ?

प्यार तुम में नहीं, सत्य तुम में नहीं, लक्ष्य का तुम्हें ज्ञान नहीं, मंजिल की पहचान नहीं, तो मेरे भाई, किस बात पर अभिमान है तुम्हें ? क्या विशेषता है तुम में। तुम और मैं क्या है, तुम्हारे पास सोचने का समय नहीं, पर जब मृत्यु आकर द्वार खटखटाएगी, तब तुम क्या करोगे ?

तुम्हें जाना होगा, यह देह छोड़नी होगी। यह साँसारिक संबंध भी समाप्त हो जाएंगे, तब तुम केवल तुम होंगे, उस समय तुम्हारे पास अपना क्या होगा, किस धन पर अभिमान कर सकोगे तुम ?

उलझनें आसान बन सकती हैं। जीवन स्वर्ग हो सकता है। तुम मुस्करा सकते हो, बस शर्त केवल इतनी है कि तुम जीवन के सत्य को समझने का साहस-भाव हृदय में उत्पन्न करो !

ज्योतिर्मय बनो, ज्योति-पथ का ग्रहण कर अंध तमस दूर करो। निराशा निशा को दूर कर आशा के प्रागंण में मधुर संगीत का श्रवण कर जीवन सफल बनाओ !

आशीर्वाद हमारा, प्रभु का, सत्यका, धर्म का तुम्हें प्रकाश देगा। तुम आत्म-ज्योति से प्रकाश लेकर सदा मुस्कराते रहो यह हमारी हार्दिक कामना है— प्रभु सबका मार्ग दर्शन करें।

हम क्या हैं

आर्यसमाज कोई मत नहीं, संप्रदाय नहीं, धर्म नहीं। वह केवल एक संगठन है जिसका उद्देश्य संसार के सब मनुष्यों का उपकार करना है। अर्थात् शारीरिक, सामजिक और आत्मिक उन्नति करना !

यह भी कहा जा सकता है कि आर्यसमाज संसार से अज्ञान, अन्याय अभाव समाप्त कर सभी भेदभावों को मिटा मनुष्य को ऐसे मार्ग पर चलाना चाहता है जिस पर चलकर उसे दुःख न मिले।

आर्यसमाज संगठन है, मजहब नहीं। आन्दोलन है, संप्रदाय नहीं। वह क्रांति का संचालक है धर्म की स्थापना के लिए। उसकी दृष्टि में धर्म केवल 'धर्म' है। उसके आगे पीछे कोई भी विशेषण नहीं लगाया जा सकता।

'धर्म' उसका मार्ग का नाम है जो मनुष्य को आनन्द देता है। कष्ट क्लेश से छुड़ाता है। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, युद्ध, क्रोध से मुक्ति देता है।

आर्यसमाज के नेता, व सदस्य आर्य समाज को समझें और उसे संप्रदाय बनाने का यत्न—अपराध न करें। यह हमारी इच्छा है।

साप्ताहिक जन-ज्ञान

जब आप यह पंक्ति पढ़ेंगे तब जन-ज्ञान साप्ताहिक निकल चुका होगा। चुप-चाप बिना घोषणाओं के यह बोझ हमने उठा लिया। प्रभु भक्त सोचें कि वे हमारे इस बोझ को कैसे बाँट सकते हैं।

वर्तमान युग घोषणाओं का युग है। पर हम काम में विश्वास रखते हैं। आपको शायद काम नहीं, नारे अच्छे लगते हैं। इसलिए हम तेजी से बढ़ नहीं पा रहे।

हमारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं। धर्म के नाम पर शून्य ही हमारी पूँजी है। फिर भी हमने चरण बढ़ाये हैं प्रभु के विश्वास पर, अब काम बढ़ गया, आराम तो पहले ही नहीं था, अब तो सपना ही बन गया।

फिर भी हम चलेंगे। मृत्यु तक चलते रहेंगे। कोई साथ दे या न दे, बढ़ना ही हमारा मन्त्र रहेगा। अपने बाद की चिन्ता भी छोड़ दी है। जब तक जीवन है, सामर्थ्य है, हम बढ़ेंगे और विश्वास है, सफल होंगे।

बोध रात्रि आपको बोध दे। आप नारे और काम का अन्तर समझें। नेता और साधक में भेद करें, तो दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूर्ण होने में समय नहीं लगेगा।

माँगता हूँ प्रभु से शक्ति और आपसे प्यार, स्नेह, आशीर्वाद बढ़ते हुए डगमगाऊँ नहीं, थकूँ नहीं, हारूँ नहीं।

"ओ३म्" पताका भूमण्डल पर लहराने का दिव्य स्वप्न प्रभु पूर्ण करें। केवल यही चाह है।

हौआ नहीं.....वरदान

भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना जब से हुई है तब से कुछ नेताओं को नींद नहीं आ रही। इसे हौआ समझकर कुछ व्यक्ति परेशान हैं।

हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि इसे हौआ नहीं वरदान समझिये। इससे कभी किसी का अहित चिन्तन नहीं होगा। जिस दिन होगा उस दिन यह समाप्त कर दी जायेगी।

आर्यसमाज हमारा जीवन है, मञ्जिल है, प्राण है, आशा है। वह हमारे रक्त की प्रत्येक बूँद में है। हमारा सब कुछ आर्यसमाज के लिए है। अतः हमें कभी भी **ऐसा कुछ नहीं करना जिससे दयानन्द के आर्यसमाज को हानि पहुँचे।**

महर्षि दयानन्द ने जिस आर्यसमाज की स्थापना की थी वह आर्यसमाज ही हमारा सब कुछ है।

बाद में इसी आर्यसमाज को बढ़ाने के लिए प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाएँ बनीं। आर्यावर्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा बनी, जिसका नाम बदलकर बाद में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा कर दिया गया।

आर्यसमाज को शक्ति देने के लिए बना यह संगठन का ढांचा हमारे लिए आदरणीय है। हम इसका सम्मान करते हैं और घोषणापूर्वक कहते हैं कि हम इस ढाँचे को सबल बनाने में विश्वास रखते हैं।

आरम्भ में आर्यसमाज स्थापित हुआ। उसको बल देने के लिए पिछले १०० वर्षों में एक ढाँचा बना—**वह ढाँचा आर्यसमाज नहीं है। आर्यसमाज को गति देने के लिये केवल एक ढाँचा—संगठन है।**

लक्ष्य है आर्यसमाज

हम नम्रता पूर्वक निवेदन करना चाहते हैं कि यह ढाँचा आज आर्यसमाज को भूलकर ढाँचे को ही लक्ष्य मान चुका है। गद्दियों की भूख ने ढाँचे के रक्षकों को पागल बना दिया है। मुकदमे, झगड़े, झूठ ने आर्यसमाज को जो हानि पहुँचाई है, उसे कौन नहीं जानता?

अतः इस ढाँचे को सुदृढ़ बनाने की हार्दिक कामना करते हुए भी हम आर्यसमाज को सबल बनाने की अविलम्ब आवश्यकता अनुभव करते हैं और उद्देश्य **आर्यसमाज को भारत के ५५ करोड़ नागरिकों तक पहुँचाने के लिए।**

"भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा" की स्थापना हमने की है। यदि १८७५ में आर्यसमाज स्थापित होने के बाद उसे बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रदेशीय सभाएँ बनाई जा सकती हैं। यदि **आरम्भ में आर्यावर्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना** हमारे

नेता कर सकते हैं तो १९७५ में भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना क्यों उचित नहीं ?

हमारा निवेदन है कि भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा—

१—आर्यसमाजों, प्रतिनिधि सभाओं व उनसे सम्बन्धित अन्य संस्थाओं में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

२—किसी भी प्रबन्ध सम्बन्धी विवाद में कभी कोई पक्ष नहीं बनेगी।

३—आर्यसमाज को बढ़ाने के लिये जो भी संगठन बने हुये हैं उनका विरोध किसी भी स्तर पर नहीं किया जायेगा।

४—इस सभा का कार्य केवल आर्यसमाज के सिद्धान्तों, महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों का प्रचार प्रसार होगा।

५—आर्यसमाज को महर्षि दयानन्द की भावनाओं के रूप में शक्तिशाली बनाते हुये हम देश को 'वेद' की विचारधारा से अनुप्राणित करेंगे।

जिस दिन भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा के किसी भी कार्य से वेद, महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सिद्धान्त या संगठन को कोई हानि पहुँचने की संभावना होगी, उस दिन हम इसे बिना एक क्षण की भी देर किये भंग करने में संकोच न करेंगे।

पर जो लोग अपने स्वार्थ, पदलोलुपता और मुकदमेबाजी में उलझे हैं, जिन के पास २४ घन्टे में से २ घन्टे का भी समय आर्यसमाज के लिए नहीं है, जो आर्य-समाज के बल पर अपनी लीडरी चमकाना ही उद्देश्य समझते हैं, उनसे हमारा आग्रह है कि आप अपनी राह पर चलते रहिए और हमें ऋषि दयानन्द की राह पर चलने दीजिए।

मौत के साये में खड़े रहकर भी हमने आर्यसमाज के गीत गाये हैं। सत्यार्थ-प्रकाश, ऋषि जीवन और वेद के लिए हम जी रहे हैं और मरेंगे। हमारे पास ८ दिन रहकर देखो, तब पता चलेगा कि किस मुसीबत में हम चल रहे हैं। पैसा नहीं, साधन नहीं, स्थान नहीं, सहारा नहीं, फिर भी तूफानों से लड़ते हम बढ़ रहे हैं। केवल सत्य के बल पर।

भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा आर्यसमाज के सिद्धान्तों को भारत में स्थापित करने के लिए स्थापित हुई है। उसकी स्थापना आशा की एक स्वर्ण किरण है।

नया प्रभात उभरा है। विहान मुस्कराया है। जिन्हें प्रकाश पुंज दयानन्द के प्रति श्रद्धा है वह हमारा साथ देंगे। जो सत्य के उपासक हैं वे हमारे साथ आयेंगे। जब तक भारत के ५५ करोड़ नागरिक समवेत स्वर से ऋषि दयानन्द की जय नहीं बोलेंगे, जब तक प्रत्येक मन मन्दिर पर "ओ३म्" पताका नहीं लहराएगी तब तक भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा संघर्ष करती, विजय वरती बढ़ेगी, काल भी उसकी गति न रोक सकेगा।

शिवरात्रि के दिन

कम से कम ११) प्रत्येक आर्य परिवार महर्षि दयानन्द की लक्ष्य पूर्ति के लिए भेजे।

जो अधिक भेज सकें वे अधिक भेजें पर भेजें अवश्य। धन आप दें काम हम कर रहे हैं।

—भारतेन्द्रनाथ

जय शहनायी !

बंधन में रोते हैं सारे, भटक रहे हैं मारे-मारे,
अन्धकार में विह्वल होकर, काँप रहे आकुल बेचारे।

पथ भूला है, विभ्रम मन, का,
उलझाता मानस का मंथन,
तुम कहते हो, सत्य कहाँ है,
सत्य स्वप्न का बन्धन चिन्तन,
बुला रहा हूं नभ मंडल के नीचे बैठा आज सितारे,
नैया छोड़ी बीच भंवर में, पहुँचेगी कब कहो किनारे।

तुम ने सपनें देखे होंगे,
तुम ने जाना नहीं ठिकाना,
गाए होंगे गीत प्यार के,
किन्तु किसे अपना है माना।
नीरव पथ पर भटक रहे हो, खोज रहे हो किसको बोलो,
चले गए थे, दूर पार तुम, कैसे क्यों, कुछ, गुंठन खोलो।

पीड़ा तुमने कब बाँटी थी,
कब देखे थे घाव पुराने,
घनी रात में हँसी कहाँ थी,
कहाँ बचे थे, सपन सुहाने,
दर्दों में भी दीप जलाकर, चलना कब तुमने सीखा था,
रुदन, हास की छलना में प्रिय, जलना कब तुमने सीखा था।

आज नयी झंकार बजाकर
बजा रहा हूँ बिगुल प्यार का
नयी राह को ज्योतित कर मैं,
सजा रहा पथ सुधा सार का,

नींद खोलकर, लो अंगड़ाई, जागे फिर से मधु तरुणायी,
जीवन बेल भरे फूलों से, नव प्रभात वेला मुस्कायी,
मेरे घर में अंधकार की, छाया कभी न रह पाएगी.
मेरे आंगन में गूंजगी, सदा विजय की जय शहनायी।

—भारतेन्द्र नाथ

महत्त्वपूर्ण नए प्रकाशन

१-ऋषि दयानन्द ने कहा था....

पृष्ठ ११२, तिरंगा बढ़िया आवरण
बढ़िया कागज : मूल्य १)४०,

२-महर्षि के प्रति श्रद्धांजलियाँ

तिरंगे आवरण में संसार के महान् पुरुषों की भाव भीनी
श्रद्धांजलियाँ— मूल्य १)४०,

३-वेद ज्योति

चारों वेदों के १००-१०० चुने हुए शतकों का आकर्षक संग्रह
मूल्य ४) : सजिल्द ६)

४-दयानन्द चित्र कथा

प्रचार संस्करण—एक रंगा : ३०) सैकड़ा
राज संस्करण—चार रंगों में छपा : ४५) सैकड़ा

सत्यार्थ प्रकाश-वेद के साइज में

आकर्षक आर्ट पेपर पर— मूल्य १०१)
आज तक इस कागज पर छपने वाला पहला
सफेद कागज पर— मूल्य ५१)

६-यज्ञ-प्रसाद—

महात्मा आनन्द स्वामी जी

का प्रेरक उपदेश: यज्ञ के पश्चात् बाँटने के लिए—
मूल्य ६० पैसे।

शीघ्र मंगाएं : स्टाक थोड़ा है

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-५

दहेज का दुष्परिणाम

—श्री रामनारायण आर्य

मैं आर्यसमाजी विचारों का हूँ। मेरे लड़के बी० ए०, एम० ए० पास हैं। उनके विवाह में मैंने एक पाई भी दहेज में नहीं लिया। यहाँ तक कि लड़के के श्वसुर ने कुछ न कुछ माँगने के लिए मुझसे तथा मेरे लड़कों से बड़ा आग्रह किया। परन्तु कुछ माँगना भी दहेज ही है तथा दहेज लेना तथा देना दोनों राक्षसी कर्म हैं ऐसा समझने के कारण मैंने कुछ भी माँगने से निषेध कर दिया। यदि मैं चाहता तो किसी न किसी बहाने से हजारों रुपया वसूल कर सकता था। जैसा कि आयेदिन बड़े-बड़े समाज सुधारक, दहेज के विरुद्ध भाषण देने वाले अपने लड़कों के विवाह में लड़के की पढ़ाई के व्यय के नाम पर, किसी दुकान के खुलवाने के नाम पर लड़की वाले से दहेज से कई गुना धन वसूल करते हैं।

जब मैंने अपने लड़कों के विवाह में किसी प्रकार का दहेज नहीं लिया तब मैंने अपनी लड़की गायत्री के विवाह में भी दहेज देना अनुचित समझा। मैंने कई स्थानों में योग्य वर तलाशे। मेरी लड़की भी सुन्दर, सुशील तथा सुशिक्षित थी। अनेक प्रसिद्ध आर्यसमाजियों के द्वार पर गया और इस आशा से गया कि यह दहेज के विरोधी होने से कुछ माँगने की चर्चा न करेंगे—परन्तु इधर उधर की बातों के बाद उन्होंने प्रश्न किया कि "आप किस प्रकार से विवाह करेंगे ?" मैंने कहा कि वैदिक रीति से करूँगा। तह सुनकर बोले कि हाँ यह तो ठीक है परन्तु लग्न आदि में क्या देंगे ? अमुक के लड़के के विवाह में दो हजार नकद मिले हैं। मैंने कहा कि मैं तो कुछ नहीं दे सकता। मैं तो दहेज का लेना और देना दोनों राक्षसी कर्म समझता हूँ। इतना कहकर चला आया। मैं समाज के पतन पर विचार कर रहा था कि जयपुर में मुझे एक सज्जन मिले उनका नाम······था। उन्होंने जब मेरी चिन्ता सुनी तो बड़ी सहानुभूति दिखलाई और दहेज के विरुद्ध एक अच्छा लेक्चर दे डाला। मैंने उनसे उनके लड़के के सम्बन्ध में बातचीत की, वे बड़ी खुशी से राजी हो गए। उन्होंने कहा कि मुझे कुछ दहेज नहीं चाहिये मेरा लड़का एफ० ए० पास कर चुका है और सर्विस भी कर ली है। आपकी लड़की की पढ़ाई भी बन्द नहीं होने दूंगा।

मुझे जैसे परमेश्वर मिल गये मैंने परमपिता परमात्मा का धन्यवाद किया कि जिन्होंने मेरी चिन्ता मिटा दी। विवाह पक्का हो गया। जब विवाह संस्कार के तीन दिन रह गये तब उन सज्जन का एक पत्र आ पहुँचा। उसमें लिखा था कि "हमारे यहाँ एक रिवाज है सास बहू को लिवाने आती है तो उसको लड़की का पिता वस्त्र, भूषण देता है अतः इसका प्रबन्ध आपको करना पड़ेगा।" पत्र पढ़कर मैं आश्चर्य में पड गया. दिमाग चक्कर खाने लगा कि अब क्या करूँ, यह दहेज की माया बड़ी विचित्र है। मैंने उस सम्बन्ध को स्थगित करना चाहा परन्तु अब तो दो दिन

ही रह गये थे। मित्र स्नेहियों की सम्मति से विवाह हुआ और उन सज्जन की बात का पालन करना पड़ा।

मेरी लड़की जब ससुराल पहुँची तो उस पर सास के व्यंग वाणों की वर्षा होने लगी कि "तेरे बाप ने क्या दे दिया, मेरा लड़का मुफ्त में लूट लिया।" खाते पीते सोते समय हरदम यही उलाहना कि 'क्या दहेज दिया" बेचारी लड़की तंग आ गई। कुछ दिनों बाद उसकी मारपीट भी शुरू हो गई। चोटी पकड़कर घर से बाहर निकाल दिया। ससुर का पाद प्रहार करना, बात बात में दहेज न मिलने का उलाहना नित्य का कर्म हो गया।

भारतवर्ष में सासों का बहुओं पर अत्याचार करना प्रसिद्ध हो गया है जिनका निरंकुश शासन है न तो उनको पति रोकता है और मातृभक्त लड़का। तो भला रोक ही कौन सकता है ? वह तो दूसरे तीसरे दिन माता पिता की प्रसन्नता के लिए अपनी पत्नी की पीठ पूजा कर देना परम श्राद्ध समझता है।

हाँ मेरी लड़की की सास ने लौंग पीसकर अपनी बहू की आँख में भरकर पीड़ा पहुंचाई कि जिससे एक आँख सदा के लिए चली गई। बाद में जब मुझे पता चला तो मैं उसे ले आया और उसकी आंख के इलाज के लिए शर्राफ चिकित्सालय दिल्ली, मागा मण्डी इन्दौर, अलीगढ़ और सीतापुर के प्रसिद्ध डाक्टरों के पास ले गया, सभी ने कहा कि लौंग से आँख की पुतली जल गई है अब नहीं बन सकती। अलीगढ़ के डाक्टर मोहनलाल ने एक दवा दी और कहा कि अगर इससे कुछ एक मास में आराम पहुँचा तो आँख बन सकती है। कुछ दिनों के बाद उसका पति जयपुर इलाज कराने के नाम पर लिवा ले गया परन्तु कोई इलाज न होने से आँख चली गई।

कुछ दिनों के बाद ससुर ने पत्र डालकर मुझे बुलाया और कहा कि मेरे घर में नरक हो रहा है सास बहू का झगड़ा होता है आपकी लड़की में जरा भी सहनशक्ति नहीं है, मुझे भी विवश होकर एक रोज दो चार लातें लगानी पड़ीं। अब आप इसको यहाँ से लिवा ले जाओ। मैं लड़की को लिवा आया और उसकी पढ़ाई शुरू करा दी और दो वर्ष में विद्या विनोदिनी परीक्षा पास करा दी। इसके बाद उसके ससुर बड़ी क्षमा याचना तथा आश्वासन देकर फिर विदा करा ले गये।

बहुत दिनों तक लड़की का कोई कुशल समाचार न मिलने से मैं स्वयं गया। वहाँ नित्य वही चर्चा, वही गाली गलौज, वही दहेज के रोने। निर्लज्ज सास ने मुझे सुनाकर कहा कि "बड़ा दहेज दिया है। लड़की वाले का सिर सदा लड़के वाले के पैरों के नीचे होता है।" मैंने कहा कि दहेज लेना देना बड़ा राक्षसी कर्म है। मैं दहेज हरगिज नहीं दूँगा। लड़की वाले का दरजा उन लड़कों वालों से सदा ऊँचा होता है जो कि लड़के के नाम पर भीख माँगा करते हैं। दहेज मांगना भीख मांगने के बराबर है। मैंने तो लड़की का पालन पोषण करके लिखा पढ़ा करके तुम्हें दिया है और साथ ही यथाशक्ति श्रद्धानुसार कुछ पैसा भी दिया है फिर मेरा दरजा कैसे नीचा हो सकता है ? इसके बाद लड़की के ससुर के समझाने पर मैं लौट आया।

कई महीने तक कुशल समाचार न मिलने से मैं पुनः गया, तो वहाँ फिर वही झगड़ा सुना। मैंने जो गहने लड़की को दिये थे उन्हें वह सास पहनती थी, मेरी लड़की ने वे गहने माँगे इस पर लड़ाई हो पड़ी। सास ने बहू के हाथ में अपने दाँत गड़ा दिये। यहाँ तक कि खून बहने लगा। बड़ी कठिनता से मैंने हटाया उसके मुँह में काफी खून लगा था, साक्षात डायन का रूप था। उसने अपने लड़कों से कहा कि मेरा दाँत टूट गया है। लड़कों ने बिना जाँच किये मेरी लड़की को पीटना शुरू किया। जब मैंने रोका तब मुझे गालियाँ मिलने लगीं और धक्का देकर घर के बाहर जमीन पर गिरा दिया। जब जब उठने का प्रयत्न किया तब तब प्रहार किया। अन्त में मेरे क्रोध को देखकर सब डर गये। मैंने कहा कि मेरी लड़की ऐसी डायन के साथ नहीं रह सकती। मेरी लड़की को दो दिन तक अन्न नहीं दिया और बिना सामान दिये दूसरे घर में जुदा कर दिया। मैंने एक मास रहकर लड़की का सब प्रबन्ध किया मेरे चले आने पर फिर उसको सास के साथ रहने को विवश किया गया। अब चार पाँच मास के बाद ससुर का पत्र आया कि बच्चा हुआ है उसके नामकरण में आकर शोभा बढ़ाओ, मुझे दहेज देना नहीं था और वहाँ मेरी बेइज्जती होती थी इसलिए नहीं गया। इस दहेज न भेजने के कारण लड़की के हाथ का लिखा हुआ पत्र नहीं आ रहा है। सम्भव है इस दहेज न देने के कारण उस पर फिर अत्याचार हो रहे होंगे। □

नई……नई……बिल्कुल नयी

सशक्त भाव भरी श्रद्धापूर्ण भाषायुक्त

महर्षि दयानन्द की जीवनी

१६ चित्र : पृष्ठ २१२
तिरंगा बढ़िया कवर : मूल्य १)५० ।

शीघ्रता कीजिए :

भारी संख्या में मंगाकर बांटें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

रामलाल कपूर ट्रस्ट का विशिष्ट प्रकाशन

आज ही आदेश भेज भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें

ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य सत्यार्थप्रकाश—संस्कार विधि १४ लघु ग्रंथों का संग्रह आदि ग्रंथों के **विशिष्ट सुन्दर शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण** समान आकार में छापे हैं। प्रत्येक ग्रन्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाली १०-१२ सूचियाँ अन्त में दी है। इन सूचियों से इस संस्करणों का महत्व बहुत बढ़ गया है। निम्न ग्रन्थ छप चुके हैं।

१—**ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी) वेद विषयक सहस्रों टिप्पणियां के सहित भाग १-३०-००, भाग २-२५-००, भाग ३-३०-००। आगे छपाई चालू है।

२—**सत्यार्थप्रकाश**—नवीन परिष्कृत द्वितीय संस्करण। मूल्य (१२५० पृष्ठ) २४-००, राजसंस्करण ३०-००।

३—**संस्कारविधि**—मूल्य १०-००, राजसंस्करण १२-००।

४—**दयानन्द लघु ग्रंथ संग्रह**—१४ ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह एवं सम्पादन। मूल्य २०-००।

५—**उणादिकोष**—ऋषि दयानन्द की स्वरचित वृत्ति, १२ प्रकार की सूचियों के सहित। मूल्य ७-००, सजिल्द १०-००।

६—**ध्यानयोग प्रकाश**—स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत। मूल्य ८-००।

७—**महाभाष्य**—(हिन्दी व्याख्या सहित) व्याख्याता—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य—भाग २, २५-००, भाग ३, २५-००।

७० पुस्तकों का बृहत्सूचीपत्र बिना मूल्य मंगवावें।

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत)

"स्तेन निवारण एवं धर्मराज्य"

महर्षि दयानन्द जी के ऋग्वेद भाष्य पृष्ठ ४६७ के मंत्र का भाव—

अपत्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुते रज ॥

भावार्थ—चोरा अनेक विधाः, केचिद् दस्यवः, केचित् कपटे नाव हत्तरिः । केचिन्मोहयित्वा पर पदार्थादायिन । केचिदुत्कोचकाः । केचिद् रात्रौ सुरंगं कृत्वा पर पदार्थान् हरन्ति, केचिन्नानापण्यवासिनो हट्टे छलेन पर पदार्थान्हरंति, केचिच्छुल्क ग्राहिणः केचिद् भृत्वा भूत्वा स्वामिनः पदार्थान्, केचिच्छल कपटाभ्यां पर राज्यानि स्वीकुर्वन्ति केचिद् धर्मोपदेशेन जनान् भ्रामयित्वा गुरवोभूत्वा शिष्य पदार्थान् हरन्ति, केचित् प्राड्विवाकाः सन्तो जनान् विवादयित्वा पदार्थान् हरन्ति, केचिन्न्यायासने स्थित्वा शुल्कादिकं स्वीकृत्य मित्रभावेन वाऽन्यायं कुर्वन्ति । एतदादयस्सर्वे चोरा विज्ञेयाः । एतान् सर्वोपायैर्निवर्त्य मनुष्यैर्धर्मेण राज्यं शासनीयम् ॥

स्पष्टीकरण—महर्षि के इस भावार्थ पर विचार करने से प्रतीत होता है कि धर्म से राज्य का शासन होना चाहिए । राज्य में चोर कई प्रकार के होते हैं ।

१. कोई डाकू होते हैं । २. कुछ कपट से चोरी करते हैं । ३. कुछ मोहित करके दूसरे के पदार्थों को ले लेते हैं । ४. कुछ घूसखोर चोर होते हैं । ५. कुछ रात में सुरंग लगाकर दूसरे के पदार्थों को हरते हैं । ६. कुछ शुल्कग्राही होते हैं । ७. कुछ भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरते हैं । ८. कुछ छल कपट से परराज्य को स्वीकार करते हैं । ९. कुछ धर्मोपदेश से लोगों को भ्रान्त कर गुरु होकर शिष्य के पदार्थों का अपहरण करते हैं । १०. कोई वकील होकर लोगों को विवाद में फंसा कर पदार्थ हरते हैं । ११. कुछ न्यायासन पर स्थित होकर प्रजा से धन आदि लेकर अथवा मित्र भाव से अन्याय करते हैं । इस प्रकार चोरों के १२ भेद दिखाये हैं । यदि यथार्थ दृष्टि से इस पर सूक्ष्मविचार किया जाये तो पता चलेगा, महर्षि को ऋतंभरा प्रज्ञा प्राप्त हो चुकी थी, इन १२ प्रकार के चोर कर्म में विश्व के राज्य प्रायशः ग्रस्त हैं । अतएव सब प्रकार के ज्ञान विज्ञान के विकास से युक्त होने पर भी विश्व के शासनारूढ़ व्यक्तियों की मनोवृत्ति एवं बुद्धि की प्रवृत्ति भावों के दूषित होने की सूचना दे रही है । कुछ दैवी प्रवृत्तियाँ भी इनके विरूद्ध संघर्षरत हैं । धर्म और अधर्म के महान् संग्राम में अभी तो अधर्म वृद्ध होता आयाततः प्रतीत हो रहा है । जब तक सभी धार्मिक प्रवृत्तियों का संघटन वाणी, बुद्धि एवं शरीर से एकात्मक होकर सभी उपायों से इन चोरों की प्रवृत्तियों का निरोध नहीं करेगा, तब तक धार्मिक प्रवृत्ति को जमने और बढ़ने का अवसर नहीं मिलेगा ।

—प्रभामित्र 'विद्यावारिधि' आचार्य
एम० ए० 'साहित्यरत्न'

आया शिव-संकल्प का त्योहार

(कृष्णदत्त, प्राचार्य हिन्दी महाविद्यालय हैदराबाद)

आर्यसमाज शिवरात्री को महर्षि दयानन्द सरस्वती के जन्म-दिन के रूप में मनाता है। यह स्वामीजी महाराज का जन्म दिवस नहीं है। वस्तुतः यह स्वामीजी के लिए 'बोध-रात्रि' है। उस दिन रात में गुजरात के एक छोटे से ग्राम टंकारा के एक शिवालय में एक सामान्य-सी घटना घटी। मंदिर में शिवरात्रि का त्योहार मनाने के लिए कुछ भक्त बैठे हुए थे। सभी प्रौढ़ थे। उनमें एक बालक भी था। यही कोई १३-१४ वर्ष का किशोर मूलशंकर भक्तिभाव में बैठा हुआ था। बालहृदय में एक अभिलाषा को लिए हुए, मस्तिष्क में कुतूहल पूर्ण उत्सुकता को छुपाये हुए मूलशंकर शिवालय में बैठा था, 'त्रिशूलधारी' शिव के आज उसे दर्शन करने है। कितनी आश्चर्यजनक और कैसी मनोहर रही होगी वह बाल कल्पना ? शिव का ऐसा ही रूप उस बालक की कल्पना में समाया होगा कि एक हाथ में त्रिशूल होगा, दूसरे में डमरू, गले में रुद्राक्ष की माला और एक भयंकर सर्प, सिर पर जटा, उसमें लगा हुआ चन्द्रकोर और ऊपर से निकलती हुई गंगा की पावन, पतली-सी धारा। यह सब कुछ अपनी कल्पना में संजोकर बालक शिवजी के अद्भुत रूप को देखने की लालसा में बार-बार सिहरन अनुभव कर रहा था। रह-रहकर उसके रोंगटे खड़े होते थे। जब यह बात याद आती कि शिवजी सम्पूर्ण शरीर में भभूत रमाये, मृगचर्म को कमर में लपेटे, गले और हाथों में फुफकारते नागों को लपेटे, नाक के दोनों ओर की सामान्य आँखों के साथ माथे पर एक और बन्द नेत्र और नीलवर्णीय कण्ठ—इस रूप की कल्पना करके बालक कभी-कभी आतंकित भी हो जाता था, पर वह आतंक क्षणिक था, क्योंकि शिवजी तो भक्तों की रक्षा करनेऔर दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं। वह तो उनका भक्त है। और यूँ भी डर किस बात का ? क्यों कि पिता पास हैं। अन्य लोग भी हैं। इन्हीं बाल कल्पनाओं में डूबा हुआ बालक मूलशंकर बैठा हुआ था। सम्पूर्ण भक्तिभाव और तन्मयता के साथ पूजा-अर्चना हुई, प्रार्थना और पाठ समाप्त हुआ। रात बीतने लगी। सब कुछ शांत हो गया, स्तब्धता बढ़ी। भक्तों की हलचल बन्द हो चुकी थी—कोई ऊंघने लगा, कोई लेट गया और कोई सो गया। शिवालय के दीपकों का प्रकाश भी उन्हें जगाए न रख सका। प्रकाश से निद्रान्धकार की ओर वे बढ़ गये। हाँ बालक मूलशंकर शिवजी की मूर्ति पर टकटकी बाँधे वहाँ के प्रज्ज्वलित दीपक के प्रकाश में शिवजी के दर्शन की अभिलाषा में बैठा हुआ था। वह अन्धकार से प्रकाश की ओर आ रहा था। शिवालय में वही जाग रहा था, अन्य सब सो गये थे—पुजारी, पड़ौसी, उसके पिता, सभी निद्राग्रस्त थे।

मानव से आतंकित अन्य क्षुद्र प्राणी, सर्वत्र नीरवता देखकर अपने-अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए प्रकट होने लगे। रात्रि के अन्धकार में कीट पतंग

निकल आये, अन्य प्राणी भी सरसराने लगे। सहसा एक चूहा भी बिल से निकल आया। बड़ी सावधानी से, बहुत सतर्क होकर, तांक-झांक करता हुआ, रुकता उछलता आता शिवजी की मूर्ति के पास घूमा-फिरा मानों मूर्ति की परिक्रमा कर रहा हो। उछलता-कूदता मूर्ति पर चढ़ गया और वहां पर रखे भक्ष्य पदार्थ खाने लगा। मूलशंकर ने यह देखा और वह स्तम्भित हो गया। बाल-मस्तिष्क में प्रश्नों की बारात जम गई। 'क्यों और कैसे' का जमघट हो गया। यदि वह न होता तो अनर्थ हो जाता। इन्हीं 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्नों ने महान् क्रांति मचाई। यही प्रश्न गौतम बुद्ध के सामने खड़े थे, भक्त प्रहलाद के सामने खड़े थे, स्वामी रामतीर्थ के सामने खड़े थे, स्वामी विवेकानन्द के सामने खड़े थे, राजा राम मोहनराय के सामने खड़े थे। उन्हीं प्रश्नों को हल करने के लिए, उन्हीं का उत्तर मालूम करने के लिए सभी महापुरुषों ने संसार में वैचारिक क्रांति फैलाई। इस क्रांति ने मानव का निर्माण किया, समाज को गढ़ा और देश को संवारा। बालक मूलशंकर के मन में भी ऐसे ही प्रश्न खड़े हुए। घटना छोटी सी-अत्यन्त क्षुद्र, पर उसको देखने वाली आँखें महान् थीं, अनुभव करने वाला मन-मस्तिष्क महान् था। मूलशंकर ने तत्काल पिता को उठाया और अपने प्रश्न उनके सामने रखे। पिता क्या उत्तरदेते? कोई न कोई उत्तर तो देना ही था। यह कहकर पुत्र को शांत किया, बेटा, यह सच्चे शिव थोड़े ही हैं? यह तो शिव की मूर्ति है। सच्चे शिव कैलाश में निवास करते हैं।' पिता ने समझा पुत्र शाँत हो गया। पर पिता ने यह उत्तर देकर पुत्र के हृदय सागर को मथकर रख दिया, उसे आलोड़ित कर दिया, उसमें तूफान पैदा किया। बालक मूलशंकर वहाँ से यह कहकर घर लौट आया, 'मैं तो सच्चे शिव का दर्शन करूंगा।' यह बालक की निरी कल्पना नहीं थी, वह भुलायी जाने वाली घोषणा नहीं थी, यह एक बच्चे की खिलवाड़ नहीं थी। बाल हृदय से निकला हुआ वह एक ऐसा पवित्र किन्तु दृढ़ संकल्प था जिसको पूर्ण करने में उस बालक ने साँसारिक सुख-वैभव, माँ-बाप का दुलार, जवानी का मधुर आकर्षण, साँसारिकता का मोह-पाश, समाज की रूढ़ियों का आतंक और विदेशी राज्य का बन्धन सब कुछ त्याग दिया। टंकारा के शिवालय में घोषित यह 'दृढ़ संकल्प' 'शिव-संकल्प' भी था। उसने कितनों की आँखें खोलीं, कितनों का मार्गदर्शन किया, सहस्र-सहस्र जनों के जीवन का निर्माण किया। नास्तिकों को आस्तिक बनाया, पतितों को उन्नत किया, पथ-भ्रष्टों को सन्मार्ग प्रदान किया, अन्धविश्वासों और रूढ़ियों में आवद्ध समाज को मुक्त किया। बड़ा शुभ संकल्प था वह: शिवरात्रि का यह संकल्प 'शिव' और 'शुभ' ही हो सकता था।

और उस संकल्प का क्या हुआ? समाज का सुधार हुआ, राष्ट्र का मार्ग दर्शन हुआ। उस घोषणा का क्या बना? वह भी पूर्ण हुई, जिसकी झलक अन्यों के साथ नास्तिक गुरुदत्त ने भी देखी, अजमेर नगरी में १८८३ को दीपावली के दिन। संकल्प वाला दिन शिवरात्रि का था और उसकी पूर्ति की झलक मात्र दीपावली को देखी गई। शिव सकल्प किया था एक बालक ने, एक टिमटिमाते दीपक के प्रकाश में, एक छोटे से शिवालय में, अपने पिता के सन्मुख, शिवरात्रि के घोर अन्धकार से घिरे वातावरण में और उस शिव संकल्प की पूर्ति की झलक १८८३ की दीपावली के पावन त्योहार के दिन अमावस्या के घोर अन्धकार को विच्छेदित करते हुए अनगिनत दीपकों के प्रकाश पुंज के बीच अनेक भक्त जनों के मध्य अजमेर

नगरी में दिखाई दी। आज भक्त प्रवर महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मा पीड़ित नहीं है, अपने हाथों स्थापित किये हुए आर्यसमाज की उन्हें चिन्ता नहीं है, वेद भाष्य के अधूरे कार्य की फिकर नहीं है, परोपकारिणी सभा में मन अटका हुआ नहीं है, रोग से ग्रस्त और विष के प्रभाव से संत्रस्त व पीड़ित देह का ध्यान नहीं है। उनकी उस परिस्थिति और दशा को देख वहाँ पर एकत्र सभी भक्त जन अश्रु पूरित नेत्रों से महर्षि को निहार रहे हैं। उन सभी के मुखों पर चिंता है, पीड़ा है और बेचैनी है। ऋषि की शारीरिक पीड़ा से सभी तड़प रहे हैं, सभी के चेहरे क्लांत और शिथिल हैं, किन्तु ऋषिवर अत्यन्त शान्त और गम्भीर हैं, जैसे उन्हें कुछ हुआ ही नहीं। जर्जर शरीर उन्हें कोई पीड़ा नहीं पहुँचा रहा था। वे वस्तुतः विदेह बने हुए थे। ऋषिवर अपने सभी नाते-रिश्ते तोड़ चुके थे—भक्तों से, आर्यसमाज से, वेद भाष्य से, सम्पूर्ण संसार से। उनके मुख पर तेज था, दीप्ति थी, संतोष था, समाधान था। उस शिवरात्री पर किये हुए शिवसंकल्प की आज पूर्ति हो रही है, अतः कैसा विषाद और किसकी चिन्ता, कैसी पीड़ा और किस का दर्द? आज तो भक्त भगवान से मिलने जा रहा है, मूलशंकर शिवशंकर के दर्शन करने जा रहा है। आज तो खुशी का, आनन्द का, हर्ष का और स्फूर्ति का वातावरण है। आज दीपावली है घर-घर में, गली-कूचों में, बाजार में हाट में दुकानों में, सड़कों पर, झोंपड़ों और महलों में, नगर और ग्राम में, भारत के चप्पे-चप्पे पर, बूढा-बच्चा, नर-नारी, अमीर-गरीब, सभी तो प्रसन्न हैं। फिर जिस आत्मा पर भगवान की असीम दया और आनन्द की वृष्टि होती रही वह दयानन्द भला क्यों दुःखी रहता? वह भी प्रसन्न है, आत्मा आनन्द सागर में डूबी हुई है। पर विष से जर्जर यह शरीर! भक्तों के अश्रु! शिष्यों का विलाप! यह सब क्या है? ऋषि ने अपने अन्तिम क्षणों में इसका भी उत्तर दे दिया--इस शंका का भी उन्होंने निवारण कर दिया और कहा यह सब कुछ 'ईश्वर की लीला' मात्र है। इसलिए 'तेरी इच्छा पूर्ण हो' के उद्गार के साथ सब कुछ ईश्वरार्पण कर दिया और महर्षि अपने प्रभु के सामने पूर्णतः समर्पित हो गए। भक्त ने सच्चे शिव का दर्शन पा लिया। शिवरात्री का शिव संकल्प पूर्ण हुआ। टंकारा के शिवालय में शिवरात्री को प्रारम्भ किये हुए यज्ञ की अजमेर नगरी में दीपावली को पूर्णाहुति हुई।

□

अधिक से अधिक सत्यार्थ-प्रकाश बांटकर "शिवरात्रि" मनाइए।

तू गर्क उसे करना चाहे जो तेरा बेड़ा पार करे

—दीवानचन्द आर्य

० ० ० ०

पिछले दिनों सनातन धर्म सभा के उत्सव पर पौराणिक जगत् के प्रसिद्ध विद्वान श्री माध्वाचार्य जी ने आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द जी के विरूद्ध अनर्गल-मिथ्या प्रलाप की झड़ी लगा दी, उत्तर देने वाले को एक हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा। (जैसा इनका सदा का दम्भ रहा है) भी कर दी।

वर्तमान राष्ट्रीय व सामाजिक परिस्थितियों की माँग है कि आज अनावश्यक व मिथ्या खंडन को छोड़कर समाज में धार्मिकता, सामाजिक सहिष्णुता, पारस्परिक भ्रातृभाव के पोषक विचारों का प्रचार व प्रसार किया जावे। इस पुराने ढपोल शंखी रूढ़िवादी प्रचार को सुनते-सुनते जनता ऊब चुकी है। आज का चन्द्रलोक यात्री मानव उन पौराणिक गपोड़ों को सुनने में अपना समय नष्ट करना नहीं चाहता। क्या आप आज के मानव से मनवाना चाहेंगे कि ?

(१) पृथ्वी शेष नाग पर टिकी है, भगवान शूकर का शरीर धारण करके पृथ्वी को जल में से निकाल कर लाये थे, हिरण्य कश्यप पृथ्वी को चटाई की भाँति लपेटकर सिरहाने लगाकर सो गया था।

(२) राहू देव सूर्य व चन्द्रमा को अपने जबड़ों में दबाकर संसार को सूर्य व चन्द्र ग्रहण के दृश्य दिखाता है, हनुमान जी ने तो सूर्य को निगल ही लिया था।

(३) क्या बीसवीं सदी के मानव को गाय की पूँछ पकड़वाकर वैतरणी पार कराना चाहते हो ?

(४) क्या एक लोटा जल पृथ्वी पर डालकर सूर्य की तृप्ति की कल्पना पर जनता से स्वीकृति की मोहर लगवाना चाहते हो ?

(५) क्या आज का मानव मान ले कि सुरसा ने सौ योजन मुख फैलाया था तथा आम, जामुन, बड़, कदम्ब के ग्यारह सौ योजन ऊँचे और सौ योजन मोटे वृक्ष पर्वतों पर खड़े हैं।

(६) कि अगस्त्य मुनि ने सारे समुद्र को पीकर पुनः पेशाब रूप में पृथ्वी पर डाल दिया था (तभी से समुद्र खारी है), हनुमान जी द्रोणागिरि को उठा लाये, कृष्ण जी ने अंगुली पर गोवर्धन पर्वत उठा लिया था।

(७) कि मूर्ति ही भगवान है। जबकि सारा संसार प्रत्यक्ष साक्षी है कि—

खुद जो बेबस था बचाता दूसरों को किस तरह।
वह तेरा आकाये वरतर वह खुदाये सोमनात्॥

ऐ बिरहमन तू मुहूर्त देखता ही रह गया।
गजनवी ने खत्म करदी उसकी सारी कायनात् ॥

आज भी आयेदिन मन्दिरों में आपके भगवान के शृंगार, सज्जा, वस्त्राभूषण तथा स्वयं भगवान तक को भी चुरा चुराकर आम बाजारों में बेचा जा रहा है।

(८) क्या जनता सत्य मान ले कि—

वाराह भगवान ब्रह्मा जी के छींकने पर उनकी नाक से उत्पन्न हुए थे, मनु जी के छींकने पर उनकी नाक से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ, शिवजी की जटाओं से वीर-भद्र तथा ब्रह्मा जी की भृकुटियों से स्वयं शिवजी उत्पन्न हुए थे। मृतक वेन की जंघाओं के मथने से निषाद इसकी बाहू मथने से स्त्री पुरुष का जोड़ा, निमि की देह मथने ने महाराज जनक उत्पन्न हो गये थे तथा घड़े में से अगस्त्य मुनि व झाड़ों से कृपी व कृपाचार्य जी पैदा हो गये थे इत्यादि।

आप भूल जाते हैं कि अपने समय में यदि महर्षि दयानन्द जी न होते तो सम्भवत: आपके पुराणों व मन्दिरों के दर्शन भी दुर्लभ होते, न पंडित जी को श्राद्ध खिलाने वाले ही सहज में मिल पाते, न पंडित जी ही ढूंढ पाते। सम्भवत: श्री माध्वाचार्य जी का नाम मोहम्मद दीन या मिठ बैल होता। खेद है कि जिस युगपुरुष ने अपना जीवन देकर आपकी वर्तमान स्वरूप की रक्षा की आप उसी देवता को गालियाँ देकर आत्मतुष्टि का अनुभव करते हैं।

फारसी पुस्तकों में एक लघु कथा आती है कि—

कहते हैं कछुवा व बिच्छु परस्पर मित्र थे। संयोगवश एक दिन उन्हें नदी पार करनी थी जिसे देखकर वृश्चकराज घबरा गये परन्तु कूर्मदेव सौम्यभाव से मित्र को आश्वस्त करके अपनी पीठ पर बिठा नदी पार करने लगे। ज्यों ही यह यात्री युगल नदी मध्य में पहुँचे कच्छप राज को अपनी पीठ पर कुछ खट खट की ध्वनि का आभास हुआ। बोले वृश्चक मित्र यह क्या हो रहा है ? बिच्छू बोला कुछ नहीं मित्र जरा आपकी पीठ पर डंक मारने का अभ्यास कर रहा था, बन्धु ! क्रोध न करना चाहे मित्र की पीठ हो चाहे शत्रु का सीना हो मेरा तो काम ही डंक मारने का है।

कुछ सोच विरोधी दिल में तू इल्जाम दयानन्द को क्या दे।
तू गर्क उसे करना चाहे जो तेरा बेड़ा पार करे॥

आज महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज को गालियाँ देने वाले धर्म के ठेकेदार उस समय कहाँ थे जब एक सदी पूर्व रटे हिन्दू कथा सिलोई–तौहकतुलहिन्द—लज्ज-तुक हिन्द—खिलअतुल हुनूद जैसी कई दर्जन पुस्तकें लिखी जा रही थीं। विधर्मियों के इन घातक षड्यन्त्रों से भारतीय संस्कृति की अन्तरात्मा चीत्कार कर उठी थी। कातर दृष्टि से किसी रक्षक की ओर निहार रही थी। उस समय आप क्या कर रहे थे जब थोड़े समय पूर्व निकट भूल में ही—दाईये इस्लाम—बुतशिकन—मदर इण्डिया तथा सीता का छिनाला जैसी घिनौनी व अश्लील पुस्तकें सरेआम बाजारों में बिक रही थीं, सत्यार्थ प्रकाश को गालियाँ देने वालों की आँखें क्या उपरोक्त साहित्य को नहीं देखती थी जिसके परिणाम रूप राम कृष्ण के कलेजे के टुकड़ों की आयेदिन सामूहिक रूप से धड़ाधड़ चोटियाँ काटी जा रही थीं, आयेदिन कुलीन देवियाँ

"विधर्मियों के घर आबाद कर करके गोघातक सन्तान की वृद्धि में संलग्न थीं तथा कोठों की शोभा बनने को विवश की जा रही थीं। जान बूझकर यह अनमोल हीरे कीचड़ में फेंके जा रहे थे, यह आर्यसमाज ही था जो आयेदिन इन अमूल्य हीरों को गन्दी नाली में से निकाल कर राष्ट्रीय गौरव की वैजयन्तीमाला की शोभा बनाता रहा है।

कहाँ थे आप उस समय जब महात्मा गाँधी के सुपुत्र श्री हीरालाल गाँधी "अब्दुल्ला गाँधी' बन गये थे इस पर माता कस्तूरबा गाँधी ने खुली अपील की थी कि "है कोई माई का लाल जो मेरे कीचड़ में जा फँसे हीरे को पुनः मेरी गोदी का हीरालाल बनाये"। यह आर्यसमाज ही था जिसने खोये हुए हीरे को माता कस्तूरबा के चरणों में पुनः "हीरालाल" बनाकर समर्पित कर दिया था। आप भूल गये पं० लेख-राम स्वा० श्रद्धानन्द के महान् बलिदानों, पं० चमूपति जी, स्वामी दर्शनानन्द जी की सूर्यमयी प्रतिभा को।

वह समय याद है जब निजाम हैदराबाद में आपके शंख, घड़ियाल, कथावार्ता सबको बन्द कर दिया गया था। जब हैदराबाद की गलियों में यह प्रतिध्वनि गुंजारित हो रही थी—

बन्द नाकूस हुआ सुन के निदाये तकबीर।
जलजला आ ही गया रिश्तये जुन्नार पै भी॥

अर्थात्—अल्लाहो अकबर के नारे को सुनकर शंख बन्द हो गया है तथा यज्ञोपवीत पर भी भूकम्प आ गया है।

जिसे आप आज गालियाँ देकर गौरवानुभूति करते हैं उसी आर्यसमाज ने सर्वस्व की बाजी लगाकर ६ लाख रुपया, ९३ वीरों की प्राणाहुती तथा अनगिनत वीरों की असह्य यातनाओं का महान् भार अपने सर पर लेकर आपके शंख घड़ियालों की रक्षा की थी।

जब-जब भी "सनातन धर्म" रूपी दुर्योधन का किसी भी गन्धर्व ने अपहरण करने की कुचेष्टा की है तब-तब उसी आर्यसमाज रूपी भीम ने तथाकथित सनातन धर्म रूपी दुर्योधन की गन्धर्वों के पंजे से प्राण रक्षा की है जिसे आज माध्वाचार्य जी पानी पी पीकर कोसते हैं। अन्त में हम उन लोगों से यही प्रार्थना करते हैं कि वर्त-मान राष्ट्रीय व सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में मिथ्या गपोड़ों व गालियों का प्रचार न करके आत्म निरीक्षण करें। स्वार्थ से ऊपर उठ कर देखें कि आर्यसमाज व ऋषि दयानन्द ने देश व धर्म को क्या दिया है तथा हमारा आज क्या कर्तव्य है?

तू गर्क उसे करना चाहे जो तेरा बेड़ा पार करे।

*

वेद का संदेश घर-घर पहुंचाएं

'हम वेदार्थ के नानार्थ में विरोधी क्यों'?

—सुरेन्द्र कुमार व्याकरणाचार्य

दान का महत्व प्रत्येक देश, जाति सम्प्रदाय एवं संस्कृति में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। दान की भावना एक नैसर्गिक भावना है। जो हर एक प्राणी के अन्दर विद्यमान रहती है। यहाँ तक की पशु, पक्षी, कीट, पतंगों के अन्दर भी यह भावना हमें दृष्टिगोचर होती है। फिर मनुष्य की तो बात ही क्या। मनुष्य तो उस विश्वनियन्ता के विचित्र सृष्टि में सर्वोत्तम कृति है। इसलिए जब और प्राणियों के अन्दर यह भावना होती है तो मनुष्य के अन्दर यह होना स्वाभाविक ही है। अन्य जीव तो स्वार्थ में अभिप्रेरित होकर दान प्रदान करते हैं। किन्तु मनुष्य इससे आगे निकलकर निस्वार्थ भाव से दान प्रदान करता है। यदि वह स्वार्थ भाव से दान देता है तो उसका महत्व प्रत्येक संस्कृति में कम है। मानवीय जीवन में दान देने के लिए प्रभु ने मनुष्य को विभिन्न प्रकार की वस्तुयें प्रदान की हैं। तो हमारे अन्दर ये स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि उन विभिन्न पदार्थों में से सर्वश्रेष्ठ कौन सा दान है। वैदिक समाज में तो दानों में सबसे श्रेष्ठ दान विद्या-दान को माना जाता है। क्योंकि मनुमहाराज ने भी मनुस्मृति में लिखा है।

'सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते'

सब दानों में विद्यादान सर्वश्रेष्ठ है। विद्यादान के साथ छलकपट करने वाला जघन्य तथा गुरुद्रोही होता है। विद्यादान की भाँति विचारदान भी किसी प्रकार कम नहीं है।

इस युग में महर्षि स्वामी दयानन्द जी एक ऐसे ही विचार प्रदाता हुये जिनको सर्व पथिन् कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। धर्म, राजनीति, कला, कौशल, अध्यात्म आदि ऊँचे विषयों पर ही नहीं अपितु हँसने, बोलने, पढ़ने, उठने, बैठने आदि के बारे में भी उन्होंने हमें विचार प्रदान किया है। जिस तरह से महर्षि दयानन्द जी ने वेदार्थ करके अपने विचारों को हमें प्रदान किया उसको आर्य जगत् ही नहीं अपितु पौराणिकों को भी मानना पड़ा। केवल मानना ही नहीं पड़ा अपितु उस तरह से वे भी वेदार्थ करते हैं। महर्षि दयानन्द जी के वेद भाष्य की सबसे बड़ी तथा सबसे प्राचीन विशेषता यह है कि वेदमन्त्रों की संगति के साथ अध्यायों मण्डलों की भी संगति विद्यमान है। यह बात और है कि इसे साधारण व्यक्ति समझ नहीं पाता। किन्तु अन्य भाष्यकारों के वेदार्थ में इस तरह संगति नहीं पाईजाती है। उदाहरण के लिये एक यजुर्वेद के शिक्षा विषयक मन्त्र को देखिये। मन्त्र यह है।

कस्त्वा छयति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति।
क उते शमिता कविः ॥ यजु० २३।३९

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए उव्वटाचार्य जी लिखते हैं कि कस्त्वा छयति आदि ६ मन्त्रों का पाठ करके चर्बी निकालने के लिए घोड़े के पेट को फाड़ा जाए।

(अश्वोदरं पाटयति मेदस उद्धरणाय) अश्वदेवत्था: षड् ऋचय: ।' हे अश्व: (क:) प्रजापति: त्वाम् (आच्छयति) छिनत्ति। छो छेदने। हे अश्व: (क: त्वां विशास्ति) त्वचा वियोजयति (ते) तव (गात्राणि) क: (शम्यति) शमनेन हवी

करोति (कः) कश्च प्रजापतिरेव (कविः) मेधावी (ते) तव (शामिता) शमयिता प्रजापतिरेव सर्वं करोती। नाहम् इत्यर्थ (यजुर्वेद उव्वट भाष्य पृ० ४१५)

अर्थात्—घोड़े के पेट को फाड़कर घोड़े को संबोधित करते हुए कहा जाता है कि हे अश्वः प्रजा का पालक परमेश्वर ही तुझे काटता है। वही तुझे त्वचा से वियुक्त करता है। तेरी खाल उतारता है। वही तेरे अंगों की आहुति देता है। इस प्रकार मेधावी वह प्रजापति परमेश्वर ही सब कुछ करता है। मैं नहीं।

महीधर ने भी इसका अनुकरण करके अक्षरशः इसी तरह भाष्य किया और सुप्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इन्हीं भाष्यों का अनुकरण करते हुए इसी तरह अर्थ किया। उव्वट महिधरादि का ही अनुसरण करते हुए मि० ग्रिफिथ ने अपने यजुर्वेद के अंग्रेजी अनुवाद में इस मन्त्र का निम्नलिखित अनुवाद किया।

O horse ? who flays thee ? who dissect thee ? who prepares thy limbs for sacrifice ? who is the sage that slaughters thee ?

Foot Note—who or ka that is Prajapati him self performs these sacrificial operations and not ?, the human priest. (Texts of the white yajurveda, lranslated by Griffith. P. 214)

इसका अर्थ भी पूर्ववत् उव्वटकृत भाष्यानुसार है। यह कितनी असंगत बात है कि स्वयं तो अश्व की हत्या करके उसके अंगो की आहुति अग्नि में डाल करके उस मरे हुए घोड़े को कहा जा रहा है कि यह सब कार्य प्रजापति परमेश्वर ही कर रहे हैं। अब इसके वास्तविक अर्थ को देखिये जिसको महर्षिदयानन्द महाराज जी ने अपने वेदभाष्य में सुसंगत करके लिखा है। इस मन्त्र में देवता वा प्रतिपाद्य विषय अध्यापक है। 'पुनरध्यापका विद्यार्थीनां कीदृशीं परीक्षा गृहणीयुरिति।' अर्थात् फिर अध्यापक विद्यार्थियों की किस तरह से परीक्षा लें। इस मन्त्र के अर्थ निम्न है।

पदार्थ—(कः त्वा) त्वाम् (आच्छयति) समन्ताच्छिनत्ति (कः त्वा) (विशास्ति) विशेषेणोपदिशति (कः ते) तव (गात्रणि) अंगानि (शम्यति) शाम्यति शमंप्रापयति (कः उ) वितर्के (ते) तव शमिता यज्ञस्यकर्त्ता (कविः) सर्वशास्त्रवित्।

अन्वयः—हे अध्येतस्ते कः आच्छयति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति-कउते शमिता कविरध्यापकोऽप्ति।

भावार्थ—अध्यापकः अध्येतृनप्रत्येवं परीक्षयां पृच्छेयुः के युष्माकमध्ययनं छिन्दन्ति के युष्मान् अध्ययनायोपदिशन्ति। के अंगानां शुद्धि 'चेष्टां च ज्ञापयन्ति। कोऽध्यापकोऽस्ति। किमध्येतव्यमस्तीत्यादिपृष्ट्वा सुपरीक्ष्योत्तमानुत्साह्याधमान् धिक्कृत्वा विद्यामुन्नयेयुः।

अर्थ—अध्यापक लोग पढ़ने वालों से प्रश्न करें कि कौन तुम्हारे पढ़ने में विघ्न करते, कौन तुमको पढ़ने के लिए भली भाँति उपदेश देते हैं? कौन तुम्हें अंगों की शुद्धि और योग्य चेष्टा का ज्ञान कराते हैं? क्या तुमने पढ़ा है क्या-क्या और पढ़ना है इत्यादि पूछकर अच्छी प्रकार करके उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर और दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देकर विद्या की उन्नति करादें।

उव्वट महीधर आदि के भाष्य में और महर्षि दयानन्द जी के भाष्य में आकाश पाताल का अन्तर है यह तो आपने अभी ही देखा। इसी तरह वेद के अर्थों को अनर्थ कर दिया। इसलिए हम वेदार्थ के अशुद्ध नानार्थ को नहीं मानते हैं।

सिद्धान्त-चर्चा

श्री रामगीर गुमानगीर गोस्वामी, मु०—पो० बोरी, ता० लातूर, जिला उस्मानाबाद (मराठवाडा विभाग) का पत्र, श्री सम्पादक जी "जन ज्ञान मासिक" हरध्यानसिंह मार्ग (निकट ३१ नाईवाला) करौल बाग, नई दिल्ली-५ नमस्ते—

शङ्का वि० वि० धार्मिक संस्कृति के आधार पर पुनर्जन्म माना गया है। उसके कर्मानुसार (आचरण) उसको अनेक योनियाँ जन्म धारणा होती हैं। उसके पाप पुण्य के अनुसार सुकृत होने पर मानव जन्म प्राप्त होता है। लेकिन आजकल रेडियो वर्त्तमान पत्रों द्वारा मानव जाति की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इस तरह हम हर रोज़ सुनते हैं और पढ़ते हैं। उसी तरह प्रचलित युगों में पापाचरण ज्यादा बढ़ रहा है। इस तरह हम बार-बार पढ़ते हैं और सुनते हैं। यह क्यों और किस वजह से ऐसा सुनने में और पढ़ने में आता है। कृपया धार्मिक दृष्टि से मेरे संशय का निवारण किया जाय, तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

समाधान १. मनुष्य रोजाना अनुभव करते हैं कि अपने जीवन में दुःख कम और सुख अधिक होता है। दुःख का कारण पाप और सुख का कारण पुण्य है अतः यह सिद्ध है कि मनुष्य योनि पुण्य के कारण बढ़ती है। हम भ्रान्ति में पड़ते हैं कि हमें दुःख अधिक है। इस भ्रम को दूर करना हमारा कर्त्तव्य है।

२. मनुष्य जन्म (योनियों) की अपेक्षा पशु, पक्षी, कीट, पतंग, चींटी आदि बहुत बढ़ते हैं जबकि वह दुःख का कारण है, पुण्य का नहीं।

३. एक ब्रह्माण्ड में अनेक नक्षत्र, भूमियाँ हैं जो कि एक सूर्य के साथ संलग्न है। एक भूमि के साथ एक चन्द्रमा रहता है। उन भूमियों और लोकों में मनुष्यों की अपेक्षा क्षुद्र जन्तु अधिक हैं। अतः पापाचरण करने वालों को ईश्वर उन लोकों में जन्म धारण कराता रहता है। फिर वहां पाप का फल भोगकर पुनः भूमियों में मनुष्य जन्म के लिए परमात्मा यहां भेजता है। अतः हमें यह प्रतीत होता है कि मनुष्य संख्या बढ़ रही है इसका कारण हम ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं कि हमें प्रतिदिन अपने जीवन में सुख अधिक और दुःख कम होता है। सुख के कारण मनुष्य योनि मिलती है।

४. जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुणा अधिक होता है—सत्यार्थ-प्रकाश अष्टम समुल्लास देखें।

५. पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं— नवां समुल्लास

६. जब पाप बढ़ जाता है पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पशु आदि नीच शरीर में और जब धर्म अधिक और अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता है और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है। इस प्रकार परमात्मा जीवों को कर्म फल भुगाता रहता है। पुण्य-पाप के फल की व्यवस्था ईश्वर के आधीन है। ६वां समुल्लास ॥

समाधाता—जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री, प्रैस, पहाड़ी धीरज, देहली-६

—श्रीमती कमलावती आर्या,

आर्य के गुण लक्षण

० ० ० ० ०

आर्य के अर्थ श्रेष्ठ, कर्मठ, सक्रिय, धर्मात्मा, उपकारी, सत्यमानी, सत्यकामी विद्यायुक्त न्यायप्रिय प्रगतिशील, समृद्धिमय आदर्श उन्नत नागरिक होना है। यह गुण मानवता के उत्कर्ष के साधक हैं। मानव के उत्थान का मूलभूत गुणविशेषण उत्साह पौरुष, वीरत्व, कर्मठता और क्रियाशीलता हैं। आर्य 'ऋ' धातु से बना है, जिसके अर्थ प्रगति क्रियाशीलता और आगे बढ़ना है। आर्य की जन्म घुट्टी उत्साह है, आर्य आलसी, हिम्मत हारा हुआ नहीं हो सकता। आलस्य का परिणाम शरीर, मन, बुद्धि आत्मा प्राण सभी शारीरिक अंगों की दुर्बलता के रूप में उभरता है। क्योंकि आलस्य समस्त आसुरी मलिन विकृतियों की जड़ है। तभी तो वेद ने अकर्मा दस्यु: कर्महीन अनार्य होता है का आदेश दिया है। आर्य तो 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः १०० वर्ष तक स्वतन्त्र निर्भय कर्म करते हुए जीने की कामना करता है। आर्यत्व सत्य तप साधना का संघर्षमय जीवन है।

आर्य का आदर्श ईश्वर है 'आर्य ईश्वर पुत्रः' वह अपने आप को ईश्वर का अमृतपुत्र मानता है। पिता के गुण कर्म स्वभाव दया, न्याय कल्याण निर्भयता निर्वैरता सर्व उपकारी गुणों का उसके मन मस्तिष्क व्यवहार में स्वतः ही स्फुरण होना स्वाभाविक है जिससे उसकी भावनाएँ पवित्र होती हैं और आचरण निर्मल बनता है। फिर डर भय कुकर्म अनाचार ईर्ष्या द्वेष वैर विरोध की कुत्सित कामनाओं का जीवन में क्या काम ? पवित्रता से चित शांत होने से बुद्धि मेधावी और आत्मा आनन्द विभोर हो उठती है। मानव देवता बन जाता है। महर्षि दयानन्द ने इसका स्वर्णिम वर्णन करते हुए कहा 'परमेश्वर का सामीप्य प्राप्त होने से सब दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।'

वेद ने कहा प्रकृति का सुख भोग करो परन्तु उसके दास मत बनो। प्रकृति का दास बनने से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार दोष जागते हैं, पाप उभरता है। क्योंकि प्रकृति शारीरिक सुख, स्वार्थ, मोह वासना और प्रभुत्व लालसा है। धर्म परमार्थ कल्याण उपकार साधना है। प्रकृति की गुलामी जीवन की हार है यह आर्यत्व है। इसकी लालसा में फँसा मनुष्य राक्षस बन जाता है। भगवान ने हमें सुख साधन दिये हैं उन्हें अपना साधन बनाओ साध्य नहीं। ईश्वर के सत् चित् आनन्द गुणों को जीवन-लक्ष्य बना, अमृतत्व की प्राप्ति की चाह में, धर्म पर आरूढ हो कुत्सित वासनाओं को पूर्णतः जीत, प्रकृति की गुलामी से स्वतन्त्र होकर ही हम आर्यत्व की जीत करा सकते हैं।

प्रभु 'प्रजापति' है। उसके सबका रक्षक होने से लोकहित भावना जागती

है। "आर्यंते सततं चार्ते" 'आर्य दु:खी पीड़ितों की सहायता के लिये अग्रणि हो' वह दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझे। इसी भावना से प्रेरित महर्षि दयानन्द ने अपने मोक्ष को छोड़कर संसार का उपकार करते हुए कहा 'दु:खी पीड़ितों को दु:खों से विमुक्त कराते कराते मुझे मोक्ष आनन्द की प्राप्ति स्वत: ही हो जाएगी। नास्तिक गुरुदत्त ने महर्षि की मृत्यु का आलौकिक दिव्य दृश्य देखा, और अपना जीवन आर्यत्व के प्रसार में जुटा दिया। स्वामी श्रद्धानन्द ने महर्षि के विचार सुने तो उनके आदर्शों की पूर्ति में संसार भर के ऐश्वर्य छोड़ कर संन्यास ले लिया और गुरुकुल की स्थापना के लिये अपने दोनों बच्चों को लेकर गंगा के किनारे जा बैठे, पंडित लेखराम ने धर्म प्रचार की मस्ती में, जहां मेल ट्रेन नहीं ठहरती थीं, छलाँग लगा दी थी। स्वयं कष्ट सह कर दूसरों का उपकार करना ही आर्यत्व का ज्वलन्त आदर्श है—

क्रोध एवं निराशा आर्य के निकट नहीं फटती, वह आशा विश्वास का देवता है। धन उसकी जीविका का साधन है, सौ हाथों से कमाना और हजारों हाथों से बांटना उसकी दिव्यता है। भूखा नंगा आर्य नहीं होता। कठोर परिश्रम और कुशलता से सात्विक कमाई कर सुख समृद्धि निर्माण करना उसके विशेषण हैं। अपने लिए किसी के आगे हाथ फैलाना पाप और योग्य को दान देना धर्म है। अर्थ यह है कि समाज उत्थान में समाज को हमारा सहयोग स्वत: ही मिले और समाज का हर अंग सर्वांगीण उन्नति करे। समाज को हम दान अपने धन का दे सकते हैं, श्रम और रक्त का भी, त्याग और बलिदान ही आर्यत्व की आधारशिला है। भगतसिंह, बिसमिल चन्द्रशेखर राजगुरु और सुखदेव देश के लिये फाँसी के रस्से को चूमने वाले, देश की अखण्डता सुरक्षा और स्वाभिमान के लिए शत्रु से सीमाओं पर लड़ने वाले सब आर्य हैं। जीवन-ज्योति बनकर जिन्होंने जहर पिया, धर्म रक्षा में छुरे खाये, कत्ल हुए जीवन तिलतिल जलाया और जो आज भी वैदिक धर्म के प्रचार में अपनी जवानी की बहारें लुटा रहे हैं, वह सब आर्य क्षितिज पर चमकते ध्रुव सितारे हैं। इनका तप तेज ही आर्यत्व की गौरव गरिमा है। यह गौरव दीप्तिमान प्रतिभा उदय होती है, सत्य, विद्या, तप, सदाचार, अजेय, अक्षय, वीरत्व, तेज ओज और पौरुषमय व्यक्तित्व निर्माण से आर्य बनना जीवन साधना की कठाली में तप कर कुन्दन बना है। जो संकट विपदाओं और बाधाओं में सिंह समान पूर्ण विजय का कृत संकल्प सदा आगे बढ़े वह ही निर्भीक, साहसी, नरकेसरी, चरित्रवान, मननशील, उपकारी, सत्यनिष्ठ, धर्मात्मा राष्ट्राभिमानी आदर्श वीर विजयी आर्य कहला सकता है।

आज मानवता राष्ट्र जाति, भाषा, प्रांत रंग, अमीर, गरीब, सभ्यता और मान्यताओं में बट रही है एक ईश्वर के सभी पुत्र, मतभेद, अज्ञान, ईर्ष्या, द्वेष स्वार्थ के कारण परस्पर एक-दूसरे के शत्रु बने हुए हैं। आर्य हर मनुष्य को अपना भाई मानता और उनका कल्याण अपना आदर्श समझता है वह मनुष्य मनुष्य के दरम्यान तमाम दीवारों को गिराकर आदर्श मानव समाज का निर्माण ही आर्यत्व समझता है। आचार, विचार और प्रचार उसके साधन हैं। शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति इसके आदर्श का स्पष्टीकरण है।

परमात्मा सब आर्य बहन भाइयों को आर्यत्व के इन उत्तम गुण लक्षणों से युक्त करें, जिससे उनमें स्फूर्ति और नवजीवन का संचार हो, और वे अपने स्वर्णिम अतीत के गौरव को आत्मसात कर, उसके अनुरूप अपने और आर्यसमाज के उज्ज्वल ज्योतिमय भविष्य का अरुणोदय करने में समर्थ हों।

शताब्दी समारोह शतप्रतिशत सफल शतप्रतिशत असफल

—डा० कृष्णवल्लभ पालीवाल M.Sc. Ph.D.

जिन लोगों ने आर्यसमाज का शताब्दी समारोह जो कि रामलीला मैदान में २४ से २८ दिसम्बर तक आयोजित किया गया, देखा होगा उन पर शताब्दी समारोह की विभिन्न प्रतिक्रियाऐं हुई होंगी । मैं भी अपार उत्साह एवं उमंग के साथ सभी कार्यक्रमों में शामिल हुआ । मुझ पर जो मिश्रित प्रतिक्रिया हुई वह इस प्रकार है ।

जहाँ तक आर्य जनता, वेद भक्तों एवं आर्यसमाज के प्रगतिशील कार्यक्रमों के अनुगामी व्यक्तियों के उत्साह, सहयोग और सेवा का प्रश्न है समारोह शत प्रतिशत सफल रहा मगर जहाँ तक संयोजकों की व्यवस्था, कार्यक्रम आयोजन भावी कार्यक्रम की रूपरेखा आदि पर विचारें तो यह समारोह शत प्रतिशत असफल रहा ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आह्वान पर विदेशों से लगभग दो हजार और स्वदेश के सभी प्रान्तों से आये लाखों आर्यजनों के सम्मिलित होने से उनके उत्साह, त्याग और सहयोग की अद्वितीय झाँकी मिलती है । दिल्ली की जनता ने भी जुलूस का जो भव्य स्वागत किया वह अद्भुत और कल्पना से परे था, सनातनी ईसाइयों एवं जामा मस्जिद के इमाम द्वारा आर्य सन्यासियों एवं जुलूस का ऐतिहासिक स्वागत किया वह चिरस्मरणीय रहेगा ।

आर्यसमाज की अन्य संस्थाओं, गुरुकुलों, पुस्तक विक्रेताओं एवं प्रकाशकों ने भी आर्यसमाज के लगभग अधिकाँश पूर्व प्रकाशित साहित्य को जनतातक पहुँचाने में सराहनीय कार्य किया और गुरुकुल झज्जर के कार्यकर्ताओं ने तो केवल १ रुपये में सत्यार्थप्रकाश बेचकर साहित्य प्रचार में प्रशंसनीय कार्य किया ।

समारोह में भाग लेने के लिए आने वाले व्यक्तियों ने धन और समय दिया और शीत में कष्ट की चिन्ता न करते हुए, आर्यसमाज के नये संदेश को पाने के लिए लालायित दृष्टि से समारोह की कार्यवाही देखी परन्तु मेरी तरह अधिकाँश को निराशा हुई । १. समस्त कार्यक्रम का आयोजन दिखावे के लिए हुआ और अधिवेशनों में विद्वानों को बहुत कम समय दिया गया । २. संयोजकों ने पिष्ट पेषण में अधिकांश समय बर्बाद किया । व्यवस्था का सर्वथा अभाव था । ३. अधिवेशन प्रातः ६ बजे से १ बजे तक, २ बजे से ६ तक और रात्रि में ८ से १० तक होने चाहिए थे । दो घंटे के अधिवेशन में बहुत कम समय मिला । ४. २४ दिसम्बर

का दिन बिल्कुल बर्बाद किया गया जिसमें एक छोटा सा कार्यक्रम रखा गया। ५. विद्वानों को सम्मानित किया गया। वह कार्यक्रम तो ठीक रहा मगर उनसे विचार विमर्श करने के लिय कोई अलगपंडाल नहीं बनाया गया जैसा कि प्रेस के लिए था, परिणाम स्वरूप अनेकों जिज्ञासु आर्य विद्वानों से अपनी जिज्ञासा शान्त न कर सके। ६. शताब्दी समारोह के अवसर पर आर्यसमाज के गत १०० वर्ष का एक प्रमाणिक तिथि अनुसार इतिहास प्रकाशित होना चाहिए था। ७. इसी प्रकार वैदिक धर्म का सार्व भौमिक स्वरूप के विषय में एक विशाल प्रमाणिक ग्रंथ प्रकाशित होना चाहिए था जिसमें आज के संदर्भ में वेद भाष्य, ऋषि दयानन्द की वैदिक विचार धारा की पुष्टि करनी चाहिए थी। वस्तुतः ग्रंथ लेखन एवं प्रकाशन की ओर अधिकारियों का विल्कुल ध्यान नहीं है। ८. आर्य समाज के भावी कार्यक्रम के वारे में जो १२ प्रस्ताव रखें गये वे स्वतः प्रस्ताव रखने वाले महोदय उन्हें सर्व स्वीकृत नहीं मानते थे और उनमें सुधार की आवश्यकता कहते थे तो उन्होंने प्रस्तावों को पूर्णतया स्वीकृत कराके क्यों नहीं प्रस्तुत किया। प्रास्ताव भी वर्मा औपचारिक थे वर्तमान काल की समस्याओं पर आर्यसमाज क्या कार्यक्रम बनाये जो कि व्यवहारिक हो, कोई ठोस कार्यक्रम नहीं रखा गया। ९. हमें अपने साप्ताहिक सत्संगों को रोचक एवं युवकों के लिये प्रेरणादायक बनाने के लिये सुधार करना चाहिए। आर्य-समाज अब कर्मकाण्ड और यज्ञ तक ही सीमित रह गया है। १०. आवश्यक है कि आर्यसमाज कुछ ही कार्यक्रमों को अपनाये और उसे जोर शोर से पूरा करे। ११. साहित्य का निर्माण कुछ विद्वानों से प्रतिबन्धित होकर लिखवाया जावे और सुचारु ढंग से प्रकाशित किया जावे। १२) आर्य उपदेशकों एवं संन्यासियों की वृद्धावस्था की व्यवस्था करे।

□□

नया साहित्य : शीघ्र मंगाएं

१. आर्याभिविनय — काव्यमय व्याख्या
सजिल्द मूल्य ३) अजिल्द २)

२. प्रभु के चरणों में — हरिशरण सिद्धांतालंकार
मूल्य २)

३. महान दयानन्द — पं० शिवदयालु आर्य
मूल्य १-४०)

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

आदर्श राष्ट्र

ओ३म आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइशव्यो ऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढान ड्वानाशुः सप्ति पुरन्धिर्योषा जिश्नू रथेष्ठाः सभेया युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम। यजु० अ० २२-मं० २२ । हमारे राष्ट्र में शिक्षक और उपदेशक ओजस्वी और तेजस्वी हों वे विद्या के भण्डार हों। वे वेद ज्ञाता हों।

उनका चरित्र उच्च एवं आदर्श हो। देश में ब्राह्मण जितना उच्च कोटि का विद्वान होगा वह देश को उतना ही अधिक उन्नति की ओर ले जायगा। टका-पन्थी पेटू स्वार्थी काला अक्षर भैंस बरावर जन्म का ब्राह्मण देश को गढ़े में गिरायेगा ब्राह्मण जन्म से नहीं गुण-कर्म स्वभाव से बनता है। ब्राह्मण ही विद्या दान के द्वारा देश का सच्चा सुनिर्माण करता है। शराबी कबाबी बीड़ी-सिग्रेट पीने वाला ब्राह्मण ब्राह्मण विद्यार्थियों में उच्च और आदर्श भावनाएं नहीं भर सकता। देश को आगे बढ़ाने और उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए राष्ट्र में ज्ञान की ज्योति से चमकते हुए ब्राह्मण होने चाहिएं।

२. राजन्यः शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः आजायताम्-हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय शूर-वीर-धनुर्धरः अतिवेग और बल से शत्रु को पोड़ित और परास्त करने-वाले तथा महारथी अकेलाही हजारों से लड़नेवाला हो देश की रक्षा का भार क्षत्रिय शूर वीर रण में कुशल और युद्ध विद्या में कुशल है तो वे देश को कभी पराधीन नहीं होने देगा। यदि कभी देश ने अपने देश पर आक्रमण किया, तो वे शत्रु के दाँत खट्टे कर देगा। देश में क्षत्रिय होना चाहिये महारण प्रताप जैसे।

महाराणा प्रताप बिना साधनों से भी मुगल सम्राट अकबर से जूझता रहा वे जंगलों की खाक छानते हैं परन्तु अकबर के सामने शिर नहीं झुकाते। एक कवि ने उसकी प्रशंसा में ठीक हीं कहा—

आके देखो दोस्तो इस राजपूती शान को।
लड़ते-लड़ते मर गया लेकिन न छोड़ा आनको।

क्षत्रिय होने चाहिएं महाराणा सांगा छत्रपति शिवाजी और पृथिवीराज चौहान जैसे। ऐसे वीर देशको शत्रु के आक्रमण से बचा कर देश को आगे ले जाते हैं।

३ धेनुः दोग्ध्रीः—राष्ट्र में दूध देनेवाली गौएं होनी चाहिए। देश के युवकों का स्वास्थ्य दुग्ध-पान से हो बनेगा। चाय कोका-कोला और शराब पीने से देश के नौजवान हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ नहीं हो सकते।

देश में घी-दूध दही आदि पदार्थ भारी मात्रा में उपलब्ध हो सकें इसके लिए देश मे गायें होनी चाहिए और गायें भी मरियल नहीं लूली लंगड़ी नहीं। गाय सबल हों और खूब दूध देनेवाली हों। प्रत्येक गाय १०-१५ लीटर दूध देही सकें। गायों की नस्ल को सुधारने का प्रबन्ध होना चाहिए।

४ अनड्वान वोढ़ा

बैल बोझ उठाने में समर्थ हों। खेती के लिए बलशाली बैलों की आवश्यकता है। बैल जितने बलशाली होंगे उतनी अधिक राष्ट्र की उपज भी बढ़ेगी। देश अन्न

५ आशुः सप्तिः

राष्ट्र में वेगवान घोड़े भी होने चाहिए। घोड़े सवारी का कार्य देंगे आज का युग ट्रैक्टरों का युग है।

६ योषा पुरन्धि

स्त्रियां राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ हों। वेद में नारी को अबला नहीं कहा उसे शरारु (सबला) और शत्रु संहारक कहा है। स्त्रियां किसी भी देश का नक्शा बदल सकती हैं। वेद में पुराणों की भांती नारी को पददलित और अपमानित नहीं बताया गया। नारी तो गृह की शोभा और राष्ट्र का भार वहन करने वाली है।

७ जिष्णु रथेष्ठाः

रथ पर बैठने वाले सवार युद्ध करने वाले वीर विजयशील हों। वे सदा विजय करके ही लौटें कभी भी पराजित होकर न लौटें। समर-भूमि में शत्रु के छक्के छुड़ा दें।

८ अस्य यजमानस्य सभेयो युवा वीरः आजायताम्—

यज्ञ करने वाले पुरुष के पुत्र सभ्य सभा में उत्तम बोलने वाले और वीर हों। देश के सभी नागरिक सभ्य बनें। उनका व्यवहार रहन-सहन चाल-चलन ऐसा हो जिससे सभ्यता प्रकट हो। वे असभ्यता का कोई काम न करें। जिसके साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए उसके साथ ही वे वीर हों कायर डरपोक और भीरू न हों।

९ निकामें निकामे नः पर्जन्य वर्षतु—

हमारे राष्ट्र में समय-समय पर वर्षा हो। जब हम चाहें उसी समय वर्षा हो जब न चाहें उस समयवर्षा न हो। यज्ञ के द्वारा समय पर वर्षा कराई जा सकती है। यज्ञ के द्वारा वृष्टि को रोका भी जा सकता है। देश में यज्ञों का ऐसा वातावरण तैयार किया जाय कि जाय कि हम जब-जब कामना करें तब-तब वृष्टि हो।

१० फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्ताम्—

हमारी ओषधियाँ जड़ी-बूटियाँ गेहूँ जौ चना चावल आदि सभी फल वाली-होकर पकें। ओषधियों पर जनता का जीवन निर्भर है। देश में नाना प्रकार के अन्न पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हों।अन्न के सेवन से हमारे शरीर पुष्ट रहेंगे और जड़ी-बूटियों के सेवन से हम रोगों से बच सकेंगें।

११ योगक्षेमः नः कल्पताम्

हमारा सर्वविधि योग और क्षेम रहे योग का अर्थ है जो पदार्थ हमारे पास नहीं हैं उनकी हमें प्राप्ति हों।

हमारे राष्ट्र में जिन वस्तुओं की कमी है उस कमी को पूरा करने के लिए प्रबल प्रयत्न और पुरुषार्थ किया जायें। उद्योग और परिश्रम से जिस वस्तु कों हमने प्राप्त कर लिया है उसका क्षेम उसे सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाय। ये ११ बातें है।

जिस राष्ट्र में ये वस्तुएं होंगी वह राष्ट्र एक आदर्श वैदिक राष्ट्र होगा। इस मन्त्र में देश के लिए सभी आवश्यक वस्तुओं का निर्देश कर दिया गया है। इस से सुन्दर क्या किसी राष्ट्र की कल्पना हो सकती हैं?

ट्रैक्ट : १००) हजार

१. आर्यसमाज क्या मानता है ? श्री मदनमोहन विद्यासागर
२. महर्षि दयानन्द की विशेषताएं : महात्मा नारायण स्वामी
३. आर्यसमाज की मान्यताएं : पं० रामचन्द्र देहलवी
४. विश्व को वेद का सन्देश—भारतेन्द्रनाथ
५. आर्यसमाज के दस नियम [व्याख्या सहित]
६ निमन्त्रण आर्यसमाज का : स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
७. आर्यसमाज के १०० वर्ष : पं० भारतेन्द्र नाथ
८. सुख का मार्ग : पं० भारतेन्द्रनाथ
९. आर्य कौन ? पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार
१०. स्वास्थ्य का महान शत्रु अण्डा : स्वामी जगदीश्वरनन्द सरस्वती
११. साम्यवाद—समाजवाद क्यों नहीं ? महात्मा नारायण स्वामी
१२. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश : महर्षि दयानन्द
१३. मूर्ति पूजा से हानियाँ : महर्षि दयानन्द
१४. आर्योद्देश्य रत्नमाला : महर्षि दयानन्द
१५- वैदिक संध्या—अर्थ सहित
१६ वेद महिमा

ये सभी ट्रैक्ट १००) हजार। १५) सैकड़ा दिए जाएंगे। ट्रैक्ट १००० से कम हजार के रेट में नहीं भेजेंगे।

भारी संख्या में मंगाकर प्रचार करें

दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली-५

कुछ जलते प्रश्न

माननीय बहिन जी,

काफी समय से मैं आपको पत्र लिखने का विचार कर रहा था, परन्तु संयोग से मैं अपने अन्तःकरण की अपरिमित श्रद्धा, अटल विश्वास और अपना अथाह स्नेह आप तक अभिव्यक्त कर पाने में सफल हो गया।

वैसे मैं ऊपरी दिखावे, महज शिष्टाचार, झूठी या सच्ची प्रशंसा, मीठी आकर्षक लच्छेदार भाषा अथवा कोरी भावुकता में लेशमात्र भी विश्वास नहीं करता, पर फिर भी मेरी लेखनी का हर शब्द न चाहते हुए भी आप जैसी तपस्विनी देवी, संघर्षों के बीच अविचलित बुलन्द व्यक्तित्व पूज्य भारतेन्द्र नाथ जी द्वारा आर्यसमाज के साहित्य के क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रचार एवं प्रसार के अद्वितीय कार्य को देखकर लिखने पर विवश हो गया, जो कुल मिलाकर आपके आदर्श परिवार की महानता व्यक्त करता है।

मैं एक विद्यार्थी हूँ एवं इन्दौर इन्जीनियरिंग कालेज द्वितीय वर्ष का छात्र हूँ, कुछ ही वर्ष पूर्व जब मैं विदिशा में हमारे यहाँ-अपना ही पत्र-याने आपका पत्र—जन-ज्ञान के माध्यम से युगदृष्टा देव दयानन्द के महान् मिशन आर्यसमाज के सम्पर्क में आया और कुछ कर गुजरने की प्रेरणा मिली, आपके पत्र में जो लेख आते हैं, उन्हें मैं निरन्तर पढ़ता हूँ। चिन्तन एवं मनन किया करता हूँ।

जन-ज्ञान के नवम्बर १६७५ के अंक में कैलाश सत्यार्थ शास्त्री का "वर्तमान सन्दर्भ और आर्यसमाज" शीर्षक वाला लेख मैंने निरन्तर ३-४ बार गम्भीरतापूर्वक पढ़ा, पढ़ने पर ऐसा लगता है कि लेखक पर कम्युनिज्म की गहरी छाप है। इनके भाई भी विदिशा में कम्युनिस्ट पार्टी के महामन्त्री हैं और अभी नगरपालिका के चुनाव में इन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी का open support किया था—वैसे मुझे कैलाश जी को निकटता से जानने का सुअवसर भी मिला है। अतः आपसे निवेदन है कि लेख छापने के पहले उसका अच्छी तरह से अध्ययन कर लिया जाये और इस प्रकार के लेखों द्वारा आर्य जनता को गुमराह न किया जाये।

पूज्य बहिन, मैं एक और आपसे निवेदन करूँगा—शायद उचित हो? मेरा तात्पर्य स्पष्ट है कि जिससे हमारा सैद्धान्तिक विरोध हो, उसे न तो आर्यसमाज सहन करेगा और न दयानन्द के अनुयायी ही।

लेकिन पिछले कुछ समय से मैं देख रहा हूँ कि दयानन्द के नाम पर कुछ ऐसे व्यक्ति जो दयानन्द को समाजवादी बताकर स्वामीजी के कुटेशन देखकर निरन्तर

स्वामी जी को समाजवादी बताकर यह सिद्ध करने की उधेड़ बुन में लगे हुए हैं कि स्वामी जी भी कम्युनिज्म से प्रभावित थे।

अतः ऐसे व्यक्तियों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि दयानन्द के नाम से तुम आर्यसमाज में कम्युनिज्म नहीं फैला सकते और तुम्हारे लिए आर्यसमाज में कोई स्थान नहीं। आर्य जनता तुम लोगों का मान मर्दन करने के लिए कृतसंकल्प है।

अतः मैं इतना ही कहूँगा कि मैं आर्यसमाज और दयानन्द के अधूरे कार्य को पूर्ण करने के लिए प्राणपण से संकल्पबद्ध हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आपका आशीर्वाद और मार्ग दर्शन मिला तो कोई भी परिस्थिति मुझे अपने मार्ग से विच-लित नहीं कर सकती।

आपका ही लघुभ्राता

—प्रदीप कुमार पंडित

माननीय महोदय

सादर नमस्ते !

निवेदन है कि आपके पास से हमारे यहाँ आपका जन-ज्ञान मासिक आता है, आपका यह जन-ज्ञान वेदों की पावन पुस्तकें और आर्य साहित्य बड़ा ही लाभदायक है और वैदिक धर्म का प्रचार यह एक आपके द्वारा जो हो रहा है वास्तव में यह एक महर्षि जी का महान् कार्य संसार के अन्दर फैल रहा है। आज तक किसी ने भी इतना अनुपम साहित्य और वैदिक धर्म में प्रचार के लिए परिश्रम नहीं किया।

हमको यह सुनकर अति दुःख हो रहा है कि कुछ आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता आपको तंग कर रहे हैं। हम इसकी घोर निन्दा करते हैं। इससे आर्यसमाज के प्रचार में बाधा पड़ेगी क्योंकि सच्चे हृदय से काम करने वालों को अवसर नहीं मिलता। प्रभु करे आपका यह कार्य बढ़े और उन्नति करे। धन्यवाद !

भवदीय :

सुन्दर दास

आदरणीय बहन राकेश रानी जी,

सप्रेम नमस्ते।

दिसम्बर मास के जन-ज्ञान के पृष्ठ ७७ पर छपते-छपते शीर्षक समाचार को पढ़कर बहुत कष्ट पहुँचा। स्वार्थ मनुष्य को कितना गिरा सकता है यह घटना अपने आप में सिद्ध करती है। कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है अथवा वेदों की दुहाई देने वाले स्वयं में अवैदिक होते जा रहे हैं ? मैं तो प्रभु से बस यही प्रार्थना करता हूँ कि पंडित जी दीर्घायु को प्राप्त करें और वेद प्रचार कार्य करते रहें। महर्षि के आदर्शों की कीर्ति-संदेश को जनमानस के अन्तस्थल में उतार सकें।

शेष प्रभु के चरणों में अर्पित। अखण्ड सौभाग्य की कामना करता हुआ

आपका भाई

बी० के० भटनागर

श्रीयुत मान्यवर भारतेन्द्र जी,

सादर सप्रेम नमस्ते !

आप आर्यसमाज की भावीयोजना की प्रगति के निमित्त २५ जनवरी को मीटिंग बुला रहे हैं। भगवान से शुभ कामना है कि प्रभु आपकी आर्यसमाज के हित निमित्त उदात्त योजनाएँ फलवती करे। बन्धुवर! पर छिद्रान्वेषण को छोड़कर कोई स्वस्थ योजना बनाइये। भगवान् हम सब आर्य बन्धुओं के सहयोग से आपकी सब भावीकल्पना अवश्यमेव साकार करेंगे। आप गुरुवर देव दयानन्द के गुणगान में अपनी अथक लेखनी को चलाइये। ध्यान रहे बादशाह की रेखा को बिना काटे ही आप पुरुषार्थ की बड़ी रेखा खींचकर छोटी कर दीजिए। आप त्याग और तप तथा परिश्रम के मार्ग पर चलिए। हम सब आपका अभिनन्दन करेंगे। आपने जो अथक पुरुषार्थ कर आर्य जगत को विपुल साहित्य सृजन कर उपकार किया है। सब आर्य जगत् आपका आभारी है। आपसे विनीत प्रार्थना है कि आप गीता प्रेस के साहित्य से भी कम मूल्य का साहित्य सृजन करें। सारा आर्य जगत् आपकी पवित्र सेवाओं का सदा-२ आभारी रहेगा। आप देव दयानन्द के ऋण से अवश्य उऋण हो जाएँगे। पर आर्य जगत् को अपना ऋणी अवश्य बना जाओगे। यदि ऋषि के प्रति किसी ने अशुभ लिखा है तो आप गुरुदेव के प्रति सफल प्रमाणों युक्त करके इतना अधिक लिखिए कि किसी में उत्तर ही क्या शुभ गुणानुवाद से अशुभ कुछ कोई सोच ही न सके। बन्धुवर आप आर्यसमाज के शुभचिन्तक हैं तो आप अटूट श्रद्धा भक्ति के साथ सब मनोमालिन्य निकालकर स्वयं काम कीजिये। प्रचार के सब साधन आप के पास में विद्यमान हैं आपके त्याग तप की अमिट छाप आर्य जगत् के दिलों पर लगेगी। आपका यश होगा, आपकी महिमा होगी। भगवान् आपको सुमति देवें।

भवदीय

स्वामी अर्चवेन

बहन,

प्रणाम !

अक्तूबर के अंक को प्राप्त कर लिया। उसमें मैंने "आर्यसमाज के कर्णधार। ये संस्थायें" नामक शीर्षक से अपने पत्र का संशोधित रूप पढ़ा। दिसम्बर का भी 'जन-ज्ञान' प्राप्त हो गया। दीपावली के दिन श्री अध्यक्ष महोदय का अपमान वास्तव में दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष मात्र का अपमान नहीं अपितु महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके अनुयाइयों का प्रबल अपमान है। आप लोगों की सहनशीलता और कर्म-निष्ठा से सचमुच आर्य जगत् में जो भूचाल आया है उसका प्रत्यक्ष आघात नेताओं के सर पर हुआ है तथा साथ ही आर्यजनों की थोथी आत्म तुष्टि को भी धक्का लगा है। वर्तमान में निष्पक्ष पक्ष आपके साथ तो है ही किन्तु इन कुटिल घटनाओं से मुझे तो ऐसा लगता है कि भविष्य में जहाँ भी आपके पसीने की एक बूंद गिरेगी वहीं पर सच्चे आर्य शहीद होंगे।

आपका स्नेही

रामसिंह 'सर्राफ'

आर्य सम्मेलन टाँडा का प्रस्ताव

परम हर्ष की बात है कि १४-११-७५ से १८-११-७५ तक आर्यसमाज टाँडा (फैजाबाद) का ८५वाँ वार्षिकोत्सव परमात्मा की असीम कृपा से बहुत ही धूमधाम से सम्पन्न किया गया। इसी अवसर पर १७-११-७५ को २ बजे से ५ बजे तक (दिन में) आर्यसमाज मन्दिर के हाल में 'आर्य सम्मेलन' का विशाल आयोजन किया गया। इस सम्मेलन द्वारा पारित निम्नलिखित प्रस्ताव कृपया जन-ज्ञान के अग्रिम अंक में प्रकाशित करने की कृपा करें।

यह सम्मेलन पंडित देवनारायण पाठक (प्रचार मन्त्री आ० स० टाँडा) द्वारा प्रस्तावित, डा० विमला जैन द्वारा लिखित शोध ग्रन्थ "**सायण तथा दयानन्द के वेदभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन**" के विरोधात्मक प्रस्ताव का सर्वसम्मति से स्वागत करता है और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान, मन्त्री एवं सभी अधिकारियों से माँग करता है कि अधिकारीगण तत्काल ही उपरोक्त शोध प्रबन्ध को अमान्य घोषित करके आर्यसमाज के भविष्य को प्रौढ़ एवं उज्ज्वल बनाने की कृपा करें। यह कार्य २४-१२-७५ के पूर्व अनिवार्य रूप से करके दिल्ली के आर्य महा सम्मेलन में भी घोषित किया जाना चाहिए। अन्यथा आ० स० टाँडा (फैजाबाद) आर्य प्रतिनिधि सभा (उ० प्र०) माँग करेगी कि यह तत्काल सार्वदेशिक सभा से अपना संबन्ध विच्छेद कर लेवें।"

—अक्षयवरनाथ आर्य

उपप्रधान आर्य प्रतिनिधिसभा उत्तर-प्रदेश

आदरणीय बहन जी, राकेशरानी जी ! सादर नमस्ते,

आपका भेजा हुआ शुभ मंगलसूत्र (राखी) और पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद। बहन मैं ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करता रहा हूँ कि प्रभु आपके परिवार और आप दम्पति को शारीरिक, मानसिक, बुद्धि, और आत्म बल से सदा के लिए भर पूर रखे ताकि आप अपना कार्य लोक सेवाहित में अहर्निश पूरी लग्न, धैर्य, सत्य निष्ठा, और अभय होकर करते रहें। सारे संसार भर में केवल आप ही की एक संस्था दृष्टिगोचर आती है जो कि देव दयानन्द जी का सच्चा और सही स्वप्न पूरा कर रही है। देश भर में शेष जितनी भी आर्य संस्थाएँ हैं वे सबकी सब कार्य तो न्यून और दिखावा अधिक दिखा रहे हैं। काश ! ईश्वर हमारे आर्य नेताओं को सद्बुद्धि और सदाचार प्रदान करे ताकि देव दयानन्द के बताये हुए मार्ग पर चल कर अपने कर्त्तव्य का पालन करें और संसार का उद्धार करें।

मैं आपकी संस्था को केवल ५१) रुपये मनीआर्डर कर रहा हूँ आशा है कि आप मेरी यह तुच्छ भट सहर्ष स्वीकार करेंगे और मन में तो आशा यही हो रही है कि प्रतिवर्ष इतनी राशि से सहयोग देता रहूँगा ! शेष कुशल।

पूज्य पंण्डित भारतेन्द्र नाथ जी को नमस्ते—

आपका शुभचिन्तक

प्यारेलाल शर्मा आर्य

खैरथल (अलवर)

परम श्रद्धेय आर्य प्रवर,

सादर नमस्ते।

जनज्ञान के माध्यम से यह जानकर हमें हार्दिक दुःख हुआ कि सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत कार्यरत व्यक्तियों ने आपके साथ शर्मनाक एवं अभद्र व्यवहार किया। आपके साथ प्राण घातक हरकत भी लोग करने की अनाधिकार चेष्टा कर रहे हैं। यदि यह सब हो रहा है तो आर्यसमाज के संगठनात्मक पहलू का एक अत्यन्त ही घिनौना और वीभत्स स्वरूप आर्यसमाज को ले डूबेगा। कवि की यह उक्ति कि—

समझ बैठे थे जिनको हार गला अपना सजाने को।
वो काले नाग बन बैठे हमारे काट खाने को॥

उपरोक्त बात चरितार्थ हो रही है। अस्तु। समस्त आर्य जनता ऐसी स्थिति में आपके साथ है। प्रभु सद्बुद्धि प्रदान करे उन नादान और बेसमझ लोगों को जो इस प्रकार हठ और दुराग्रह करके अमानवीय व्यवहार कर रहे हैं। आर्य जनता दुगने उत्साह से आपके ऋषि के कार्य को करती रहें यही अपेक्षा करनी है। देहली हम आप से मिलेंगे।

—सत्येन्द्र आर्य

पिपलिया मण्डी, जि० मन्दसौर (म०प्र०)

प्रिय आचार्य रत्नसिंह जी,

नमस्ते!

मैं भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह सँस्था महर्षि दयानन्द सरस्वती के संकल्पों तथा स्वप्नों को सफलता पूर्वक चरितार्थ करने में निष्ठापूर्वक सन्नद्ध है।

मेरा सहयोग आपके साथ है। सधन्यवाद—

—साहित्य मार्तण्ड, डा० लक्ष्मीनारायण दुबे

महाशया,

आपके प्रकाशन की एक वैदिक-दैनन्दिनी डायरी १९७६ मुझे किसी आर्य बन्धु द्वारा भेंट की गई जिसे देख कर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। यह एक अच्छी डायरी है। जिसमें वेद मंत्रों के साथ-साथ कतिपय भजनों का भी संग्रह है। अतएव, मैं चाहता हूँ कि इसका वितरण मैं अपने मित्रों के बीच कर दू।

पटना

—दुखनराम

आदरणीया दीदी एवं पण्डित जी,

सादर नमस्ते !

जनवरी मास का अंक अभी तक नहीं मिला। यदि आपने ९ या १० जनवरी से पहले अँक भेजा होता तो वह नहीं मिल पाया। संभव हो तो भेज देना।

पण्डित जी लकवे की चपेट में आ गये थे सुनकर बहुत ही दु:ख हुआ। विष देकर मारने का जो षड़यंत्र किया गया उसे सुनकर आँखों में खून उतर आता है। एक आर्यसमाज का वह वर्ग जो दयानन्द के नाम की दुहाई देकर आपको मिट्टी में मिलाने की घोषणा कर रहा है, उन्हें चुल्लूभर पानी में डूब मरना चाहिये। सचमुच ऐसे व्यक्ति उस महर्षि की आत्मा को काँटों में घसीट रहे हैं। आपका अल्प साधनों के होने पर भी किया गया विशाल प्रयास निकम्मे रहकर वाह-वाही लूटने वाले वर्ग की छाती में कील की तरह से ठुक रहा है। मैं सहारनपुर जिले के प्रो० मुहम्मद सुलेमान की दाद देता हूँ जिसने कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर जिलाधीश के अध्यक्षता में हुई सभा में कहा कि मुसलमानों को कृष्ण जन्माष्टमी अवश्य मनानी चाहिए क्योंकि वे मुहम्मद साहब से भी पहले पैगम्बर थे। इस बारे में उन्होंने मुस्लिम ग्रंथों का हवाला भी दिया। एक ओर ये व्यक्ति हैं जो आपके द्वारा किये गये पावन यज्ञ में हड्डी फेंककर 'दयानन्द के चेले' का खिताब जीतना चाहते हैं। विद्वान हो जाना कोई बड़ी बात नहीं परन्तु 'मणिना भूषित: सर्प: किमसौ न भयंकर:'। प्रभु इन्हें सद्बुद्धि दें।

—रामेश्वर काम्बोज 'हिमाँशु'

जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय।
बाल ना बांका कर सके, जो जग बैरी होय।

आदरणीय भारतेन्द्रनाथ जी,

सादर नमस्ते !

दिसम्बर ७५ का अंक पढ़ कर यह मालूम हुआ कि दीपमाला के शुभदिन आपको गालियाँ अपमान एवं मारने की धमकियां मिलीं। और आचार्य श्री विश्वश्रवा जी का हस्तलिखित पत्र भी पढ़ा और अंत में यह भी मालूम हुआ कि आप को विष भी दिया गया! आप बाल-बाल बच गये इसके लिए ईश्वर का बहुत-बहुत धन्यवाद !

आपको विष दिया गया इसमें आश्चर्य की क्या बात है। इन्हीं धर्म के ठेकेदारों ने गुरुवर देव दयानन्द को भी तो विष दिया था।

पं० लेखराम को भी छुरे भोंके थे। स्वामी श्रद्धानन्द को भी तो मौत के घाट उतारा था ! और भी न जाने कितने महापुरुषों का इन लोगों ने बध किया या कराया। फिर अगर आपको भी विष दिये गएतो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

जिसने विष, पिया बना शंकर।
जिसनें विष, पिया बनी मीरा।

अंत में परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि आपको सत्य मार्ग पर चलने की शक्ति दें।

दुश्मन लाख बुरा चाहे तो क्या होता है।
वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है।

—सत्यनारायण यादव

आदरणीय भारतेन्द्र जी,

सादर नमस्ते !

प्रत्येक माह का जन-ज्ञान बराबर हमें मिलता रहा तथा आज भी दिसम्बर माह का मासिक मिल गया। पढ़ कर हृदय में एक तूफान सा उठा कि अच्छे काम के लिए तथा सत्य के प्रचार के लिए जो कठिनाइयाँ उठानी पड़ती है वह क्या वास्तव में इतनी विकराल होती हैं जिसे खून के घूंट के समान पीना पड़ता है। आपके ऊपर जो तूफान आया या आयेगा वह केवल आपके लिए नहीं बल्की पूरी आर्य जनता के लिए होगा। आप वृद्ध हैं उम्र में नहीं बुद्धि में, मेरा लिखने का अभिप्राय यह नहीं कि मैं आपसे उम्र में बड़ा हूँ, मैं तो दो जन्मों में भी आपका शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त करना चाहूँगा। आपने वह समय कभी कल्पना में तो सोचा होगा कि जिस समय स्वामी जी कार्य क्षेत्र में आए उस समय उनके लिए क्या-क्या मुसीबतें थीं उनका न कोई साथी न सहारा अगर सहारा था तो केवल एक प्रभु का, लेकिन स्वामी जी ने जो पैर आगे बढ़ाया वह बढ़ता गया और इतना बढ़ गया कि अन्धकार भरा ढ़ोंग भाग गया और आर्य जगत् के लिए प्रकाश की एक लहर दौड़ गई। आप के लिए तो कम से कम राह खुली है। लेकिन स्वामी को तो राह खोलना था। फिर उस कवि का वचन याद आता है कि :—

सनातन सूर्य पर जो मुँह उठाकर थूकेगा।
जमाना ही नहीं बल्कि वह अपने मुँह पे थूकेगा।

हम लोगों का पैर आगे बढ़ चुका है अब वह रुकने वाला नहीं है चाहे तूफान हो या आँधी, स्वामी जी ने जो प्रकाश आज आर्य जनता को दिया है वह कभी रुक नहीं सकता मिट नहीं सकता। चाहे लोग जुबान से स्वामी का नाम लें या न लें लेकिन हृदय में सबके वह रम गया है। उसी का उपकार है कि आज हर कोई सत्य का विचार करना शुरू कर दिया नहीं तो अन्धे के पीछे अन्धेवाली बात थी।

"मैं हृदय मंदिर से लिखता हूँ" हमें बहुत पसन्द आया। तथा स्वामी जी का ऐक्यवाद पढ़कर जीवन के लिए मनो निधि मिल गई। स्वामी का कर्णवास निवाश पढ़कर तो आँखों में आँसू आ गए कि क्या स्वामीजी ने हमारे लिए इतना कष्ट, अपमान, सहा और एक हम हैं कि आज उनके शिष्य होने का दम भरते हैं लेकिन करते हैं एक कसाई का काम। हमारे अन्दर का वह उत्साह कहाँ गया। आज असत्य को छोड़ने में हम क्यों डरते हैं समाज के डर से नहीं। हमारे पथ प्रदर्शक भी गुमराह हो गए जब पथ प्रदर्शक ही गुमराह हों तो बाकी जनता का क्या होगा।

१९५८ में जब मेरी उम्र केवल १५ साल की थी उस समय आर्य साहित्य पढ़ना शुरू किया धीरे-धीरे बीज अंकुरित हुआ और एक छोटा पौधा बन गया लेकिन कुछ अभाग्य या समय की लीला कि उस पौधे को कोई सींच न सका और हम इतना गुमराह हो गए कि शराब माँस तथा इसके साथ जितने दुर्गुण थे सब आ गए नौकरी करता रहा पैसा मिलता रहा किसकी परवाह। लेकिन मैं यह लिखने में जरा भी संकोच नहीं करूँगा कि स्वामी जी की 'संध्या' बराबर हमारे पास रही और उसी के बल पर एक मित्र द्वारा आपके संस्थान का पता लगा। पत्र व्यवहार कर वेद मँगाए जिस दिन वेद का आना हुआ दूसरे दिन सभी व्यसन चोर की तरह भाग गए। यह आपका ही तो उपकार है।

मैं अभी भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की सदस्यता के लिए प्रतिज्ञा पत्र तथा १२ रुपये भेज रहा हूँ। कृपया स्वीकार कर हमें आशीर्वाद दें जिससे कदम सत्य मार्ग पर बढ़ता रहे। —रघुनन्दन सिंह

आदरणीय बहन राकेश रानी जी,

नमस्ते !

आपके 'जन ज्ञान' मासिक पत्र के माध्यम से अपने हृदय की व्यथा आर्य-जगत् तक पहुँचाना चाहता हूँ। विगत जौलाई ७५ में मैंने २० बीघा जमीन, ८ तोले सोना १४ कुन्तल जौ ३ मकान एक बाग (सम्पूर्ण सम्पति) आर्यसमाज नाई की मण्डी आगरा को इस उद्देश्य से दान कर दी थी कि मेरे यहाँ पर वैदिक संस्कृति की आर्य पद्धति से ब्रह्मचारियों को शिक्षा दी जाय। और मैंने वानप्रस्थ ले लिया था। अगस्त मास में उन्होंने दो आचार्य भेज कर 'वैदिक-सेवाश्रम गुरुकुल गौरौला' की स्थापना कर दी थी। आज छः माह होने को आये लेकिन कोई भी किसी भी प्रकार की शिक्षा किसी को नहीं दी गई। गुरुकुल में कोई भी विद्यार्थी नहीं है। आचार्यों के भोजन, रहन सहन व वस्त्रों के अलावा ५५०) मासिक दिनेश कुमार जी शास्त्री इन्हें देते हैं। आचार्यों का व्यवहार गुरुकुल जीवन से नितान्त भिन्न है। संध्या, यज्ञ आदि वैदिक कर्म नहीं करते हैं। आश्रम में अप्राकृतिक दूषित गन्दगी फैलाते हैं।

आर्य जगत् ! जब से मेरी सम्पत्ति का दाखिल खारिज हुआ है तब से आचार्यों का मेरे प्रति व्यवहार आपत्तिजनक है। मुझे आश्रम से न तो खाने को दिया जाता है और न पहनने को वस्त्र। जब कि इनके पहले प्रस्ताव में यह अंकित है कि भोजन (सात्विक) ऋतु अनुसार वस्त्र तथा ३००) वार्षिक मुझे मिलने चाहिये। किन्तु मुझे अब दुतकारा व फटकारा जा रहा है। साधु सन्यासियों का अनादर करते हैं। उन्होंने मेरी इच्छा व दान का मखौल क्षेत्र में बना दिया है। मुझे दुःख है कि मेरे गुरुकुल का स्वप्न ईसाकुल के रूप में परिवर्तित हो रहा है। मैं जन साधारण व आर्य समाज हितार्थ गुरुकुल चलाना चाहता हूँ। मेरी दान की हुई सम्पत्ति का दुरुपयोग कर केवल दो आचार्य परिवार के भरण पोषण में लगाई जा रही है। आर्य जगत् से मेरी याचना है कि मेरे दान का सदुपयोग कर गुरुकुल चलाने की व्यवस्था की जाये दिल्ली में आर्यसमाज जन्म शताब्दी समारोह मनाया जायगा दिल बेचैन है कि किस प्रकार आर्य बन्धुओं के दर्शन कर सकूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी रोती हुई आत्मा की पुकार को आर्यसमाज का पूर्ण व्यक्ति सुनेगा।

—व्रतानन्द वानप्रस्थी

आज : दो आँसू

—कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर

जिन्हें संसार में संसार का उपकार था
जिन्हें दुनिया में वैदिक धर्म का विस्तार करना था
अनाथों और अछूतों का जिन्हें उद्धार करना था
जिन्हें निज देश और जाति का बेड़ा पार करना था
उन्हें देखो कि बाहम बरसरे पैकार बैठे हैं
समाजों को मिटाने के लिए तैयार बैठे हैं।

सभाओं में सदा जो संगठन के गीत गाते हैं
बड़े सरमन सुनाते हैं बड़ी, बातें बनाते हैं
खुदाई का जो खुद को बेगरज खादिम बताते हैं
जो उनके दिल टटोलो तो ख़ुदी से स्याह पाते हैं
यही लीडर रहे तो हो चुका प्रचार वेदों का
इन्हें तो खून करना है दयानन्द की उमीदों का।

जमाना रश्क करता था कभी वो प्यार था हममें
हर इक इक-दूसरे का मूनिसो गमख्वार था हममें
धर्म पर जान देने को हर इक तैयार था हममें
बला का जोश था और जज्बये ईसार था हममें
मगर अब आर्य्यों में नाम को उल्फ़त नहीं मिलती
न वो श्रद्धा, न वो भक्ति हैं वो हिम्मत नहीं मिलती।

निकलते थे जो हम शानों पै वेदों के अलम रखकर
फरिश्ते भी फ़िदा होते थे उस पुरजोश मंजर पर
जला देते थे हम दुश्मन के खिरमन को कदम रखकर
हटाते ही न थे पीछे कभी आगे कदम रखकर
नमस्ते लब पै आते ही मुखालिफ़ चौंक पड़ते थे
'समाजी' नाम से पाखंडियों के होश उड़ते थे।

समाजों की मगर अब रात-दिन तहकीर होती है
रवाँ गर्दन पै रोज अगयार की शमशीर होती है
न वो तहरीर होती है, न वो तकरीर होती है
जो होती है तो हर इक बात बे-तासीर होती है
न वो लेखक रहे हममें, न वो तक्कार हैं बाकी
कि इस गुलशन के गुल मुरझा गए अब खार है बाकी।

ऋषि किस्मत से फिर इक बार यदि भारत में आ जाएँ
रुखे अनवर 'मुसाफ़िर' आके फिर इक बार दिखलाएँ
हमारे दम्भ को देखें और इस आचार मर जाएँ
तो सच कहता हूँ गैरत से बिना ही मौत मर जाएँ
पदों की लालसा में रोज लड़ते औ लड़ाते हैं
अदायें शासकों की हैं मगर सेवक कहाते हैं।

उठो अब आर्य्य वीरो फिर से अपना संगठन करके
समाजों को बचाओ फूट से कोई जतन करके
मिटा दो ढोंग और पाखण्ड को भगवद्-भजन करके
बजाओ वेद का डंका फिदा जान और तन करके
तुम्हें जेबा नहीं हरगिज भी इस हालत से घबराना
जो तुम चाहो तो कुछ मुश्किल नहीं बिगड़ी का जाना।

[वन्दना के स्वर से]

आर्यसमाज के उपदेशक, संन्यासी, भजनोपदेशक, पुरोहित, विद्वान्, लेखक, कवि, पत्रकार, कार्यकर्ता, समाजों व सभाओं के अधिकारी कार्यकर्ता कृपया यह फार्म भरकर शीघ्र से शीघ्र भेजें। साथ में अपना पासपोर्ट साइज का चित्र चिकने कागज पर भेजें। —संपादक

आर्यसमाज के आधार स्तम्भ

नामक ग्रंथ छप रहा है। विवरण पत्र भरकर शीघ्र भेजें।

पता : दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

विवरण पत्र

१. नाम

२. पिता का नाम

३. माता का नाम

३. जन्मतिथि

५. जन्म स्थान

६. आरम्भिक शिक्षा

७. शिक्षा पूर्ण विवरण

८. आर्यसमाज में करने की प्रेरणा कैसे मिली !

९. क्याक्या प्रमुख कार्य किया……

१०. किन-किन पदों पर रहे ?

११. ग्रन्थों कार्यों आदि का पद प्रमुख परिचय……

१२. आर्यसमाज आप को क्यों पसन्द है ?

१३. विशेष ज्ञातव्य

कहानी —गजानन्द आर्य

दो फूल साथ फूले

० ० ० ०

मृत्युशय्या पर पड़े हुए वृद्ध पिता ने रमेश और सुरेश को अपने पास आने का संकेत किया। पिता की ओर टकटकी लगाये पुत्रों ने मन्द स्वर में बोलते हुए पिता को सुना। कह रहे थे कि मैं जा रहा हूँ। अपनी साधना और कौशल से बनाये हुये दोनों कारखानों को एक-एक संभाल लेना। अपने चाचा का भी ख्याल रखना क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं। लड़की उसकी विवाह योग्य है। सजल नेत्रों से लड़कों ने सुना और पिता की आँखें बन्द हो गयीं।

स्टील का कारखाना बड़े पुत्र रमेश को मिला। अच्छा उत्पादन एवं अच्छी प्रतिभा वाला व्यवसाय था। सैंकड़ों कर्मचारियों को काम मिला हुआ था। हजारों का जीवन निर्वाह होता था। रमेश सभी इंजीनियरों और मैनेजरों से पूर्व परिचित था ही। उनके स्वभाव और कार्यक्षमता को भलीभांति जानता था किन्तु उसे अब सबको अपनी योजनानुसार चलाना था। कार्यालय संभालने के तुरन्त बाद ही एक परिपत्र द्वारा समस्त कर्मचारियों को सचेत कर दिया कि कोई भी कर्मचारी डायरेक्टर महोदय को अपने निजी काम के लिए परेशान न किया करे। अपनी शिकायतें एवं तकलीफें विभागीय अधिकारी को ही भेजी जावें। यद्यपि यह परिपत्र अनुशासन की दृष्टि से उपयुक्त लगता था किन्तु स्वतन्त्र वातावरण के अभ्यस्त कर्मचारियों का माथा ठनका और कुछ अनहोनी घटना के लक्षणों से आशंकित हो गये। परीक्षण के तौर पर कुछ उत्साही एवं विद्रोही श्रमिकों ने परिपत्र के आदेश की अवहेलना करने की कोशिश की। एक श्रमिक ने कार्यालय की ओर जाते हुए डायरेक्टर साहब को सम्बोधित करते हुये अपनी बीमार पत्नी के इलाज वास्ते कुछ अग्रिम सहायता की माँग रखी तो साहब बड़ी बुरी तरह झल्लाये। बिना कुछ सुने कारखाने से गेट आउट का आर्डिनेंस लागू कर दिया बेचारे पर। इसी तरह की एक और घटना हो गई कि एक क्लर्क ने अपने लड़के को परीक्षा दिलाने ले जाने के लिए दो दिन का अवकाश माँगा जो कि विभागीय अधिकारियों द्वारा ठुकरा दिया गया था, किन्तु वहाँ भी उस क्लर्क को निराश होना पड़ा। ग्लानिवश उस क्लर्क ने वहाँ से त्यागपत्र दे देना ही अच्छा समझा। इस तरह की अर्जियाँ प्रतिदिन आतीं और संचालक महोदय द्वारा अस्वीकृत हो जातीं। पराकाष्ठा तो उस दिन हुई जिस दिन एक दरबान का छोटा बालक अचानक गुजर गया था और लड़के के अन्तिम संस्कार में जाने को उत्सुक कुछ श्रमिकों को रोक दिया गया था। क्रोधित कर्मचारीगण उस दिन कोई दुर्घटना भी कर देते किन्तु पुराने एवं आज्ञाकारी अधिकारियों द्वारा बीच-बचाव करने से मामला शान्त हुआ।

सुरेश ने पिताजी का दिया हुआ चीनी का कारखाना संभाल लिया था। स्टील कारखाने की अपेक्षा कुछ पिछड़ा हुआ था। सुरेश ने पुराने रिकार्ड देखे। वरिष्ट अधिकारियों के साथ बैठकर मंत्रणायें की। स्थिति का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने की आवश्यकता है। एक परिपत्र द्वारा समस्त कार्यकर्त्ताओं, श्रमिकों आदि के साथ एक सभा करने का आयोजन हुआ। सभा में प्रधान वक्ता सुरेश जी ही थे। सुरेश जी ने अपना भाषण 'मित्रो' के सम्बोधन से आरम्भ करते हुए कहा कि यह कारखाना आप हम सबकी जीविका का साधन है। कारखाने की उन्नति और अवनति का प्रभाव हम सब पर पड़ता है। कारखाने में काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति पूरी मशीनरी में एक पुर्जे के समान है। मशीन का एक बोल्ट ढीला होने से सारा काम ठप्प हो जाता है। यही दशा हम सब की है। जो जिस क्षेत्र में लगा हुआ है वहाँ उसका महत्वपूर्ण स्थान है। अतः अपनी महत्ता को समझते हुए कारखाने के प्रत्येक कार्यकर्त्ता से निवेदन है कि वे पूरी सच्चाई व ईमानदारी से इस संस्थान का रक्षण व पोषण करे। आपकी व्यक्तिगत तकलीफें जो कोई भी हों मुझसे मिलकर कहें। कारखाने के विषय की कोई बात कहनी हो वह उचित तरीके से यथायोग्य अधिकारी को भेजी जावे। मैं चाहता हूँ मेरे कारखाने से सम्बन्धित व्यक्ति का शारीरिक, पारिवारिक और सामाजिक महत्व अनूठा हो। जहाँ तक आप सबके बच्चों की शिक्षा और परिवार के स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था का प्रश्न है उसे हम कारखाने की ओर से हल कर देना चाहते हैं। कारखाने की आय का कुछ अंश आप लोगों के हित में लगाने का मेरा विचार है। आशा है आप सब मेरी भावनाओं को समझते हुए मेरे विचारों से सहमत होंगे। करतल ध्वनि से आकाश गूंज उठा। निराश एवं अकर्मण्य पड़े मजदूरों में चेतनता की लहर दौड़ गई। कार्यक्षमता बढ़ने लगी। लोगों का स्तर बढ़ने लगा। सुरेश जी कार्यालय में "डायरेक्टर महोदय" और अवकाश के क्षणों में 'भाई साहब" कहलाये जाने लगे।

रमेश को अपने कार्यालय में ही अपने चाचा जी का ध्यान हो आया। टेलीफोन करके चाचा जी को बुला लिया गया। चाचा जी को रमेश के कमरे में घुसने के लिए कोई विजिटिंग कार्ड की आवश्यकता नहीं पड़ी यही उनकी विशिष्टता की पहचान थी। रमेश ने अपने मैनेजर से बातें करते हुए चाचा जी को एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। चाचा जी को पिताजी के अन्तिम शब्द बतलाते हुए रमेश ने कहा कि चाचा जी आपकी सहायता के लिए मैं तैयार हूँ। बहन का सम्बन्ध कीजिए। लड़का योग्य होना चाहिए। धनी परिवार देखने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि अपने बूते का ही घर ढूँढना चाहिए। बातचीत पक्की हो जाने पर मुझे बता देना जितना जो होगा यहाँ से मिल जायेगा। मैनेजर भी पास बैठे हैं मैं यदि न मिलूं तो इनको कह दीजियेगा।

चाचा जी को अपने भतीजे की बातचीत का यह ढग अच्छा नहीं लगा। 'बहुत अच्छा' कहते हुये उठकर चले आये। घर आये तो देखा सुरेश आया हुआ है। यथायोग्य अभिवादन करने के पश्चात सुरेश कहने लगा—चाचा जी एक लड़का देख कर आया हूँ बहन के लिए। लड़का सुन्दर है, शिक्षित है और सम्पन्न परिवार है। मैंने तो सोच लिया है कि लड़का सब तरह से योग्य है। पहले आप और चाची जी देखकर मेरा अनुमोदन कर दीजिये बाकी बातें फिर होंगी। चाचा जी इसी प्रसंग को सुनकर आये थे और वही चर्चा घर पर मिली। किन्तु दोनों चर्चाओं में जमीन

आसमान का अन्तर था। रमेश की बातों में जहाँ हीनता, दीनता उभर रही थी वहाँ सुरेश में आत्मीयता झलक रही थी। प्रसन्नचित्त हो चाचा ने पूछा कि सुरेश लड़के की सम्पन्नता तुमने अपने मापदण्ड से मापी है या मेरे मापदण्ड से। सुरेश ने पूछा अपने मापदण्ड अलग कब से हुए चाचा जी! आप जानते हैं अपना एक परिवार है, एक ही आदर्श और परम्परा है। विवाहों की फिजूलखर्ची व प्रदर्शन में पिताजी का कितना विरोध रहता था यह हम सबको मालूम है तो फिर अपना स्तर अलग-अलग क्यों हो जायेगा। आज आपके पास आय के साधन कम हैं और मेरे पास कुछ अच्छे हैं। कल को इसका उल्टा भी हो सकता है तो फिर अपनी बहनों के लिए ये बात नहीं आनी चाहिएँ। आपको पिता का दायित्व निभाना है तो मुझे भाई का निभाना है। आप चिन्ता न करें सारी व्यवस्था मैं सम्भालूंगा। आपको तो सिर्फ स्वीकृति देनी है। चाचा जी एक शिकायत आपसे है। उस दिन चाची जी हमारे घर आई थीं तो कह रहीं थीं कि टिंकु मिंकु को पास के एक घटिया स्कूल में भरती इसलिये कर दिया है कि दूर स्कूल में जाने के साधन नहीं। मुझे बड़ी शर्म लगी यह बात सुन कर। आपको मालूम है कि बबलू प्रतिदिन कार से स्कूल जाता है यदि उसी कार से टिंकु मिंकु भी चले जाया करें तो क्या मेरा कोई नुकसान हो जायेगा या गाड़ी घिस जायेगी। ऐसी छोटी बातें आप दिमाग में लाते ही क्यों हैं। कल से टिंकू मिंकू भी बबलू वाले स्कूल में जाया करेंगे। चाचा जी आत्म विभोर हो गये, सुरेश की बातों से। प्रेम पूर्वक विदा लेते हुए चाची जी को अच्छी चाय पिलाने की दाद दी।

रमेश बाबू के कारखाने का वातावरण बदलता पर बिगड़ता जा रहा था। अच्छे अच्छे व योग्य कर्मचारी निकलकर जाने लगे। झगड़ालु व नेता टाइप वेतन भोगियों की बन आई। मजदूर यूनियन बन गई। आफिस टाइम से पहले और बाद में डोर मीटिंगें होने लगीं। मुर्दाबाद के नारे लगने लगे। धीरे काम करने की नीति अपनाई जाने लगी। कारखाने की दीवारें तरह तरह के व्यंग चित्रों और नारों से चित्रित होने लगी। मालिक मजदूर का सम्बन्ध शोषक शोषित का कहा जाने लगा। उत्पादन तो घटना था ही माल की क्वालिटी भी खराब आने लग गई। ग्राहकों का सन्तोषजनक व्यवहार मिलना बन्द हो गया। रमेश बाबू को आता देख मजदूरों के बच्चे अपशब्द कहने से नहीं चूकते। एक रात को सुरेश के पास फोन आया कि मुन्ना सख्त बीमार है, मेरे पास कोई ड्राइवर नहीं है। डाक्टर को लेकर जल्दी आओ। सुरेश स्वयं डाक्टर को लेकर पहुँचा। बच्चे की हालत दयनीय थी। औषधि लाने के लिए इतने बड़े उद्योगपति के पास कोई स्टाफ नहीं आया देख सुरेश बाबू को काफी आश्चर्यमिश्रित दुःख हुआ। सब व्यवस्था सुरेश बाबू को अपने आदमियों से करनी पड़ी और लड़का बच गया।

सुरेश बाबू ने जो लड़का विवाह योग्य देखा था वह चाचा जी को ठीक समझ में आया किन्तु अपनी कमजोर आर्थिक अवस्था के कारण इतना बड़ा सम्बन्ध करने में हिचकिचाहट हो रही थी। लड़का लड़की ने भी एक दूसरे को देखकर मौन स्वीकृति दे दी थी। अब सुरेश को और किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं थी। बड़े भाई रमेश जी को सम्बन्ध कर देने की सूचना अवश्य दे दी गई। विवाह खूब धूमधाम से कारखाने के प्रांगण में सम्पन्न हुआ। कारखाने के कर्मचारियों ने बड़ उत्साह से वैवाहिक कार्यों में सहयोग दिया। बरातीगण सद्व्यवहार व सम्मान पाकर गद्गद् होकर रह गये। लड़की को एवं दामाद को जो कुछ दिया गया पता नहीं वह कहाँ

से और किस ओर से था पर सब कुछ सराहनीय था। रमेश बाबू अपनी कुछ उलझनों के कारण विवाह में सम्मिलित नहीं हो पाये। रिश्तेदारों में इस बात की चर्चा भी हुई किन्तु सुरेश जी ने यथोचित उत्तर देकर स्थिति को संभाल लिया।

कारखाने के कार्यालय से एक दिन शाम को बाहर जाते हुये कुछ श्रमिकों ने घेर लिया। सुरेश ने हंसते हुए पूछा कि घेराव किया जा रहा है क्या ? ऐसी बात नहीं भाई साहब ! आपके पास एक निवेदन करने आये हैं। हम कर्मचारियों ने एक यूनियन बनाने का निश्चय किया है जिसका उद्‌घाटन आपसे कराना चाहते हैं। अरे ! बड़ा अजीब बात आप लोगों से सुन रहा हूँ। यूनियन का उद्‌घाटन इसी फैक्ट्री के मालिक से। यूनियनों का उद्‌घाटन तो अब तक राजनीति के नेतागण करते आ रहे हैं।

भाई साहब ! हमारी यूनियन उन नेताओं के विचार की नहीं होगी। हमारी वह यूनियन रचनात्मक कार्यों के लिए होगी। विध्वंसात्मक कार्यों के लिए नहीं। उस यूनियन का मुख्य उद्देश्य हमारे आपस की गलत फहमियों का निराकरण करने का होगा। उस यूनियन के अन्तर्गत हम प्रौढ़ शिक्षा समिति, संगठन समिति और असहाय मजदूरों के लिए सहायक समिति का निर्माण करेंगे। अपनी अपनी आय का अंश दान करके एक स्थायी कोष बनाने की हमारी योजना है। ऐसे शुभ कार्य के लिए हमें जिस महानुभाव के आशीर्वाद की आवश्यकता है वैसा महानुभाव आपसे बढ़कर कोई हमारी दृष्टि में है ही नहीं। अतः कृपा करके स्वीकृति दीजिये ताकि हम अपना कार्यक्रम निश्चित कर सकें।

निश्चित समय और कार्यक्रम के अनुसार यूनियन का उद्‌घाटन सुरेश जी द्वारा हुआ। लोगों में इस तरह की यूनियन की तरह तरह की प्रतिक्रिया हुई। रचनात्मक प्रवृत्ति वालों के लिये यह एक आदर्श आयोजन था तो तोड़फोड़ नीति वालों के लिए एक जी हजूरी का नाटक।

रमेश जी के यहाँ तो यूनियन पहले से बनी हुई थी। "ओर जुल्म के चक्कर में हड़ताल हमारा नारा है" के आदर्श वाली वह यूनियन दिन प्रतिदिन संघर्षरत रहने लगी। लगातार संकटों के गुजरने के कारण कारखाने की आर्थिक व्यवस्था बिगड़ती जा रही थी। मासिक वेतन समय पर दिये जाने में असुविधा होने लगी। प्रोवीडेंट फण्ड सरकारी खजाने में जमा देने में महीनों का विलम्ब होने लगा। कर्मचारियों ने इस तरह की कमजोरियों को अपना हथियार बना लिया। अन्त में अवस्था बिगड़ते-बिगड़ते लॉक आउट की घोषणा कर दी गई। कारखाने का काम ज्यों का त्यों ठप्प हो गया। रुपयों का आदान प्रदान अनियमित हो जाने से महाजनी साख प्रभावित होने लगी। रमेश जी बहुत बड़े संकट में फँस गए। नगर में अफवाह दिवाले निकलने तक की होने लगी। तब सुरेश जी से चुपचाप बैठा नहीं रहा गया। भाई साहब के पास पहुँच कर स्थिति का अध्ययन किया। अपनी धनराशि देकर पावने वालों का भुगतान किया। कारखाने के मजदूरों को बातचीत के लिए आमन्त्रित किया। कर्मचारीगण भी तंग आये हुए थे वे किसी भी शर्त पर काम पर आ जाने को उद्यत थे। सुरेश बाबू की ओर से समझौते का आमन्त्रण पा जाने पर तो मानो उनको सब कुछ मिल गया। यूनियन के सेक्रेटरी ने सफेद कागज पर हस्ताक्षर करके सुरेश जी को थमाया। एक पक्ष की ओर से जब इतनी उदारता दिखाई जा रही थी

तो दूसरा पक्ष भी काफी उदार बन गया। उचित शर्तों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जाने के बाद रमेश बाबू जिन्दाबाद, सुरेश बाबू जिन्दावाद के नारों के साथ क.र-खाना चालू हुआ।

रमेश बाबू का कारखाना क्या खुला मानों हजारों व्यक्तियों को जीवन दान मिल गया। अमीर गरीब सभी में एक ही चर्चा थी कि सुरेश बाबू न होते तो पता नहीं क्या दुर्गति होती। नगर के इतिहास में इस तरह की यह पहली घटना थी। नगर के गणमान्य व्यक्तियों ने इस अनुपम कार्य के लिए सुरेश जी का सार्वजनिक अभिनन्दन करने का निश्चय किया। सुरेश बाबू को इस तरह की प्रसिद्धि में यद्यपि कोई रुचि न थी किन्तु सब ओर से आ रहे अनुरोध को टाल भी न सके। निश्चित तिथि पर अभिनन्दन समारोह का आरम्भ हुआ। इतनी भीड़ हुई मानो सारा नगर उमड़ पड़ा हो। सभापति ने सभा कार्य आरम्भ करते हुए सर्वप्रथम विभिन्न संस्थाओं से आये हुए प्रतिनिधियों द्वारा माल्य प्रदान कराया। अपनी ओर से प्रशंसायुक्त भाषण के पश्चात सभापति जी ने सुरेश जी से अनुरोध किया कि कृपया हमें बतायें कि इनमें इतनी उच्च भावना व सरलता के आने का राज क्या है ? सुरेश जी ने विनीत भाव से सभी उपस्थितजनों का आभार मानते हुए संक्षेप में अपना कथन समाप्त करते हुए बताया कि कालेज की परीक्षा के पश्चात् भाई रमेश जी और मैं हरिद्वार की ओर घूमने गये थे। वहीं एक संन्यासी से भेंट हुई थी। संन्यासी ने हम दोनों से वार्तालाप करते हुए जो उपदेश हमें दिया था वह ज्यों का त्यों मुझे याद है और उसी के अनुकूल आचरण करने की मैंने कोशिश की है। महात्मा जी ने कहा था "सबको अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

भाइयो ! हमारी दुर्गति एवं सामाजिक अव्यवस्था का कारण यदि कोई एक है तो वह हमारे धर्म के ठेकेदार हैं। धर्म के इन ठेकेदारों ने हमेशा ही आत्मा, परमात्मा, मोक्ष और स्वर्ग के चक्कर में भोली जनता को फँसाए रखा है। इस लोक की चिन्ता न करके सदैव परलोक-सुधार के उपदेश ही मिलते रहे हैं। आज के युग को सुन्दर बनाने के लिए समाज को स्वस्थ और सुसंस्कृत करने के लिए कोई ठोस योजना हमें इनसे नहीं मिली है। अतः हमको यह निर्णय लेना है कि हम अपना आदर्श समाज बनायें। धर्म कर्म के झूठे आडम्बर को उतार फेंके। मुझे ऐसी कोई संस्था या नेता ध्यान में नहीं आता जिसने समाज की व्यवस्था के लिए कोई नियम बनाकर दिया है। जिन्हें हम युग निर्माता कहते हैं उनकी कलम से भी युग निर्माण का कोई अनूठा सूत्र पढ़ने में नहीं आया। समाज में व्याप्त असन्तोष और असमानता का निदान हमें किसी से नहीं मिला। अतः हमें अपना रास्ता अपने आप बनाना होगा। पुरानी मान्यताओं और भाग्यवाद से संघर्ष करना होगा।

नगर के कतिपय समाज सुधारकों की एक गोष्ठी का आयोजन श्री कर्मप्रिय जी ने किया और उद्घाटन भाषण देकर सभी आमन्त्रित सज्जनों को अपने अपने विचार प्रस्तुत करने की प्रार्थना की। गोष्ठी में वयोवृद्ध श्री धर्मप्रिय जी भी सम्मिलित थे। कर्मप्रिय जी के विचारों से प्रायः सभी सज्जन सहमत थे। धर्मप्रिय जी को कुछ विपक्ष में कहना था अतः में सबसे अंत में बोलने के लिए वे राजी हुए।

माननीय सज्जनो ! श्री कर्मप्रिय जी ने जो कहा उसका मैं अनुमोदन करता

हुआ एक प्रश्न का उत्तर जानना चाहता हूँ कि एक व्यापारी अपनी सामर्थ्य से धन कमाता है। ईश्वर भक्त और परोपकारी की श्रेणी में भी गिना जाता है। देश में बच्चों के दूध पाउडर का अभाव है। बीमार और निर्धन बच्चों को पाउडर दूध उचित दामों में नहीं मिल रहा है। सेठजी ने अपनी गोदाम दूध के डब्बों से भरी हुई है। और अधिक दामों के लोभ में सेठ साहब माल नहीं बेचना चाहते। अब इस सेठजी को जमाखोरी के जुर्म में सरकार तो पकड़ सकती है पर समाज का कौन सा नियम सेठजी को अधार्मिक घोषित कर सकता है? कृपा करके कोई बताये। आनन्द जी का सीधा-सा प्रश्न था।

भाई साहब जी ने जो प्रश्न रखा उसका उत्तर कोई दे सकेगा, मुझे आशा नहीं। इस तरह का एक प्रश्न मेरा भी है। हमारे नगर के सेठ श्री धनपति जी की लड़की की शादी गत वर्ष यहाँ जो हुई थी उसमें लाखों रुपयों का व्यय टीका, दहेज और प्रदर्शन में हुआ। अब उनके पारिवारिक भाई की लड़की को यथायोग्य वर इसलिए नहीं मिल रहा कि धनपति के स्तर पर विवाह करने की उस भाई की हिम्मत नहीं। विचारशील बन्धुगण मुझे बतायें कि इस असमानता का निदान क्या है? धनपति के भाई को धनपति के कारण दण्ड मिल रहा है पर धनपति को कोई दोषी घोषित कैसे करे। विनय जी अपनी बात कहकर बैठ गए।

प्रश्नों का दौर चल रहा है इसमें मेरा भी एक प्रश्न जोड़ दिया जावे। किसान खेत में हल चलाता है। रात दिन की खून-पसीने की कमाई से घर में अनाज आता है भंडार भर जाते हैं - देश में अकाल पड़ता है, भुखमरी की आशंका है। मनमाने भाव पर किसान अनाज बेचता है किन्तु साधारण वर्ग खरीद नहीं पाता। समाज का कौन सा कानून किसान पर लागू किया जावे कि वह स्वतः अपना वह भंडार भूखी जनता को उचित दामों पर बच देवें। सुरेशजी का प्रश्न भी प्रश्नवाचक बनकर खड़ा हो गया।

विनोद जी ने अपनी व्यथा सुनाते हुए कहा कि मेरा लड़का ११वीं फाइनल का छात्र है। स्कूल में अध्यापक वर्ग जो पढ़ाते हैं वह सबको विदित है। ट्यूशन से पढ़ाने की मेरी सामर्थ्य नहीं। समाज की कौन सी प्रेरणा मेरे काम आवेगी। एक और भी समस्या मेरे साथ है। घर के पास ही दूध डिपो है। बड़ी लड़की दूध के नम्बर के लिए लाइन के बीच में खड़ी है। दो चार हट्टे कट्टे लड़के देरी से आकर भी लाइन के बीच में फँसकर दूध ले जाते हैं। लड़की का नम्बर आने तक दूध समाप्त हो जाता है। लड़कों की उस ताकत से हमारा घर प्रभावित होता है वह क्यों? बहुत विलम्ब हो गया था धर्मप्रिय जी कहने लगे, बन्धुओ! ऐसा लगता है कि आपके इन सारे प्रश्नों का उत्तर मुझे देना है। आप सबकी समस्या विचारणीय है। लगभग सबके प्रश्नों में एक वर्ग शोषक है तो दूसरा शोषित। किन्तु शोषक वर्ग को ठीक रास्ते पर लाने के लिए समाज की ओर से कोई विधान नहीं है, ऐसी आप लोगों की मान्यता है: जहाँ तक मेरी मान्यता है मैं समझता हूँ हमारे ऋषि-मुनियों और सच्चे नेताओं ने जीवन का ऐसा कोई पहलू अछूता नहीं छोड़ा जिसका समाधान न निकाला हो। चोरी करना, झूठ बोलना, विश्वासघात करना आदि कर्म पापकर्म हैं इसको सभी श्रेष्ठ पुरुष कहते आये हैं किन्तु फिर भी यह सब होता है। इसमें दोष आप किसका कहेंगे। पाप से बचने का आदेश या निर्देश हमारे पूर्वजों ने दिया था।

उसको यदि हम न मानें तो उनकी ओर से कोई दण्ड देने वाला कैसे आवेगा। ठीक उसी तरह आप सबकी समस्या का हल भी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने एक नियम द्वारा किया था। नियम को मानना या न मानना हम सबका दायित्व है। व्यक्ति अपनी सुख समृद्धि के लिये पुरुषार्थ करने के लिए स्वतन्त्र है। किन्तु जब उसकी सुख समृद्धि से कोई एक वर्ग, समाज या देश प्रभावित होता है संकट में पड़ता है तब उस व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना आवश्यक है। स्वामी जी के इस नियम को दोहराने से पहले मैं आप सबसे अनुरोध करूँगा कि समाज के उत्थान के लिए आप जो करें स्तुत्य है, किन्तु बिना सोचे समझे अपने धार्मिक वर्ग को दोषी घोषित न करें। ऋषि ने लिखा था—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

◆

"कर्म"

पलट दे कर्म से अपने, विधाता के लिखे अक्षर।
स्वशक्ति के प्रदर्शन में, न मिलता भाग्य को अवसर।

करेंगे कर्म की पूजा, बनाकर फूल काँटों को।
नहीं आराम करना है, हमारे दोनों हाथों को।

है साहस मित्र जो अपना, तो कैसा भाग्य का चक्कर।
स्वशक्ति के प्रदर्शन में, न मिलता भाग्य को अवसर।

लहू ललकारता हमको, नहीं आपत्ति से डरना।
हमारी आन कहती है, कमर कसकर खड़े रहना।

मिलेंगे लक्ष्य से अपने, कफन को बाँधकर सर पर।
स्वशक्ति के प्रदर्शन में, न मिलता भाग्य को अवसर।

शपथ ले लें स्वयं मन में, है जीवन कर्म करने का।
प्रतीक्षा कर रही पल पल, है मंजिल पाँव बढ़ने का।

जो अपने आपका साथी उसी का साथ दे ईश्वर।
स्वशक्ति के प्रदर्शन में, न मिलता भाग्य को अवसर।

नहीं परिणाम की चिन्ता, पराजय से न घबड़ाना।
है असफलता, सफलता की, प्रथम सीढ़ी बढ़े जाना।

अमर होता वही जग में, जो लेता मौत से टक्कर।
पलट दें कर्म से अपने, विधाता के लिखे अक्षर।।

—रामसिंह

—डा० भवानीलाल भारतीय

वेदाध्ययन में स्वामी दयानन्द का योगदान

मानव जाति का सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध साहित्य वेद है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य मात्र के हितार्थ परमात्मा की ओर से दिया गया था। यद्यपि वेद के काल का निर्णय पश्चिमी और भारतीय विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से किया है तथापि वे किसी सर्व सम्मत निर्णय पर नहीं पहुँच पाये हैं। ऐसा होना सम्भव भी नहीं है क्योंकि वेद के रचना काल का निर्णय करने वाले लोग, इस देश में प्रचलित उस परम्परा की सर्वथा उपेक्षा ही कर जाते हैं, जिसके अनुसार इस दैवी ज्ञान को ऋषियों के माध्यम से मनुष्य जाति को प्रदान किया गया। वस्तुतः प्राचीन आर्यमतानुसार जिन ऋषियों के नाम वेद मंत्रों के साथ अंकित उपलब्ध होते हैं वे तत् तत् मन्त्र में विद्यमान रहस्यों के द्रष्टा ही थे न कि उनके रचयिता। वेदों की अन्तःसाक्षी से भी उनका ईश्वर कर्तृत्व भली भाँति सिद्ध होता है। ऋग् यजु तथा अथर्ववेद में पाया जाने वाला पुरुष सूक्त यह स्पष्ट घोषणा करता है कि उसी यजनीय-पूजनीय पुरुष परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तथा छन्दवेद (अथर्ववेद) की उत्पत्ति हुई।

कालान्तर में लिखे गये वैदिक वाङ्मय से भी वेदों के अपौरुषेयत्व की ही पुष्टि होती है। विश्व प्रपंच का दार्शनिक दृष्टि से ऊहापोह करने वाले षड्दर्शनों ने भी वेदों को किसी पुरुष विशेष द्वारा रचित न मानकर उनकी दैवी उत्पत्ति को ही मान्यता प्रदान की। वेदान्त दर्शन के रचयिता वादरायण के शब्दों में—

'शास्त्र योनित्वात्'

अर्थात् ऋग्वेदादि शास्त्रों का कर्त्ता ब्रह्म ही है। आचार्य शकर ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा—"ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपवृहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थविद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य यौनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्यऋग्वेदादि लक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति। 'अर्थात् ऋग्वेदादि जो चार वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, सूर्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाशक हैं, उनका बनाने वाला सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव, सर्वज्ञ गुणयुक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा सम्भव नहीं है।

इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन में भी "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" इस सूत्र से वेद के ईश्वरीय होने का प्रतिपादन किया है। कहना नहीं होगा कि इसी प्रकार न्याय और मीमांसा, स्मृति और धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण सभी एक स्वर से वेद की अलौकिकता की घोषणा कर रहे हैं।

पुराकाल से ही वेद के अर्थों को समझने तथा उनकी जीवनोपयोगी शिक्षाओं का प्रचार करने के प्रयत्न किये जाते रहे हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को वेदों का प्राचीनतम भाष्य कह सकते हैं जिनमें मन्त्र प्रतीकों को रखकर उनकी व्याख्या की गई है। इस प्रसंग में आचार्य दयानन्द के निम्न वाक्य स्मरणीय हैं—ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति, नैव वेदाख्यानीति। कुतः इषेत्वोर्जेत्वेति इत्यादीनि मन्त्र प्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां व्याख्यानकरणात् अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदों में गणना नहीं हो सकती, क्योंकि "इषेत्वोर्जे' इस प्रकार से उनमें मंत्रों के प्रतीक भर भर कर वेदों का व्याख्यान किया गया है। ब्राह्मणों के अतिरिक्त निरुक्त नामक वेदांग की तो रचना-ही वद के अर्थो के स्पष्टीकरण की दृष्टि से हुई। उसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति तथा वेदोक्त देवतावाद का स्पष्टीकरण किया गया है।

कालान्तर में वेदों की विस्तृत व्याख्याओं की जब आवश्यकता अनुभव हुई तो तो विभिन्न भाष्यकारों ने पृथक्-पृथक् वदिक संहिताओं पर अपने विस्तृत भाष्य लिखे। इन भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी, वैंकटमाधव, उद्गीथ, आत्मानन्द आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, परन्तु जिस एक ही व्यक्ति ने अपने तत्त्वावधान में चारों वेद संहिताओं तथा उन पर उपलब्ध विभिन्न शाखाओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का सर्वांगीण भाष्य प्रस्तुत किया वह विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य का महामंत्री आचार्य सायण था। यह सत्य है कि मध्यकालीन विभिन्न पौराणिक धारणाओं से बंधे होने के कारण सायण वेदार्थ के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाये। एक ओर वे परम्परानुमोदित मत को स्वीकार करते हुए वेद को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं तो दूसरी ओर वे उसमें विभिन्न ऋषियों, राजाओं तथा अन्य लोगों का इतिहास भी ढूंढ निकालते हैं। सायण के अनुसार वेदों की रचना यज्ञ के लिए ही हुई है, इसलिये वे प्रत्येक मंत्र को किसी न किसी याज्ञिक क्रिया में विनियुक्त करना आवश्यक समझते हैं। इस प्रकार की विभिन्न तर्क शून्य तथा असंगत बातों को वेदों के मत्थे मढ़ देने से सायण के द्वारा वेदों के गौरव की कथमपि वृद्धि नहीं हुई। अतः हमें प्रो० बलदेव उपाध्याय की यह सम्मति नितान्त एकांगी प्रतीत होती है, जब वें सायण के भाष्य को "The only sure and consistent guide in the understanding of the mantras of the Vedas." (वेद मंत्रों के समझने में एक मात्र निश्चित तथा व्यवस्थित प्रणाली कहते हैं।

सायण के परवर्ती वेद-भाष्यकारों ने न्यूनाधिक रूप से उसी प्रणाली का अनुकरण किया। वस्तुतः उव्वट, महीधर आदि के वेदभाष्यों से वेद की गौरव वृद्धि होने की अपेक्षा उसकी महत्ता का ह्रास ही हुआ है। १९ वीं शताब्दी में जब यूरोपीय विद्वानों को संस्कृत साहित्य का परिचय मिला तो उसके शीर्षस्थ ग्रन्थ को देखकर उनका आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक ही था। शीघ्र ही पश्चिमी विद्वानों का एक वृहद् समुदाय वेदार्थ विवेचन, वेद विषयक टीका टिप्पणी, पश्चिमी भाषाओं में वेदानुवाद तथा वेद विषयक अन्य चर्चा-आलोचना में संलग्न हुआ। प्रसिद्ध जर्मन वेदज्ञ मैक्समूलर ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साहाय्य से ऋग्वेद का सम्पादन किया। गवर्नमेंन्ट संस्कृत कालेज काशी के प्रिन्सिपल टी० एच० ग्रिफ़िथ ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का छन्दोबद्ध अनुवाद किया। वेद पर परिश्रम करने वाले अन्य पाश्चात्य विद्वानों में मैकडानल, कीथ, आल्डेनबर्ग, ह्विटनी, ब्लूमफील्ड आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

परन्तु यह धारणा सत्य नहीं है कि पश्चिमी विद्वानों ने केवल विद्या व्यसन के लिये ही वेदाध्ययन में अपनी रुचि और प्रवृत्ति दिखाई थी। मैक्समूलर ने तो यह स्पष्ट स्वीकार किया था कि अन्य धर्मों के अध्ययन के पश्चात् ही हम अपने धर्म (ईसाइयत) की महत्ता को और अधिक अनुभव करने लगेगें क्योंकि जिसने धैर्य और ईमानदारी के साथ अन्य धर्मों की परीक्षा नहीं की, वह यह नहीं जान सकता कि ईसाइयत वास्तव में क्या है और सन्तपॉल की भाँति सत्यतापूर्वक घोषित कर सकता है कि मैं बाइबिल को पाकर लज्जित नहीं हूँ। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० भगवद्दत्त ने पश्चिमी विद्वानों के वेदाध्ययन के पीछे निहित प्रवृत्ति का अत्यन्त रोचक उद्घाटन अपने एक लघु ग्रन्थ Western Indologists : A study in motives. में किया है।

जिस समय वेद को लेकर भारत तथा अन्य देशों में नाना भ्रान्त धारणाओं का बोलबाला था, जब भारतीय पण्डितमण्डली के लिये वेदमंत्रों की उपयोगिता, जन्म, मरण, विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के समय पठनमात्र की ही थी, वेदों में निहित तत्त्वज्ञान के प्रति सर्वथा अनजान ही थे तथा यूरोपीय वेदज्ञ तुलनात्मक देवगाथावाद तथा विकासवाद जैसे नवाविष्कृत वादों के द्वारा ही वेदों की ऐतिहासिक व्याख्या करने में संलग्न थे, उस समय ऋषि दयानन्द सरस्वती जसे एक प्रतिभाशाली वेदज्ञ का आविर्भाव हुआ जिसने वेदाध्ययन की परिपाटी में तो आमूलचूल परिवर्तन किया ही, वेद के प्रति सम्पूर्ण मानवता का दृष्टिकोण ही बदल दिया। स्वामी दयानन्द वर्तमान युग के सबसे महान् वेदाचार्य थे। उन्होंने वेदों को न केवल अपने धर्मान्दोलन का ही आधार बनाया अपितु यह भी स्पष्ट रूप से घोषित किया कि प्राचीन भारतीय चिन्तन तथा विचारधारा का मूल उत्स भी वेद ही है। उनकी समस्त मान्यतायें वेदमूलक थीं। वेदों को उन्होंने समस्त सत्य विद्याओं का पुस्तक तो घोषित किया ही, प्रत्येक वैदिक धर्मी आर्य के लिए वद का पढ़ना, पढ़ाना तथा सुनना सुनाना परम धर्म भी बताया। वेद का आधार लेकर भारतीय समाज में धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रान्ति करने वाले स्वामी दयानन्द के लिए यह और भी आवश्यक था कि वे वेद के वास्तविक स्वरूप तथा अर्थ को लोगों के समक्ष प्रस्तुत करे। क्योंकि पर्याप्त समय से वेदों का नाम तो लिया जता रहा किन्तु शताब्दियों से उसका अध्ययन मनन और अनुशीलन विलुप्तप्राय: हो चुका था। फलत: वेद का प्रमाणवाद शास्त्रों के अध्येता पण्डितों और विद्वानों के वाणी विलास के रूप में तो चर्चित रहा, किन्तु जीवन में उसकी वास्तविक महत्ता तथा उपयोगिता लुप्त हो गई।

यद्यपि वेदों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित भाष्य टीका, व्याख्या आदि ग्रन्थ स्वामी दयानन्द के काल में भी उपस्थित थे, किन्तु वैदिक ज्ञान की प्रोज्ज्वल पावनता, प्रकर्षता तथा उदात्तता को स्पष्ट करने में नितान्त असमर्थ सिद्ध हुए। इन्हीं कारणों से स्वामी दयानन्द ने यह आवश्यक समझा कि अत्यन्त पुराकाल में पल्लवित वेदार्थ विषयक सिद्धान्तों का आधार लेकर ही वेदों पर पुन: भाष्य लिखा जाय। असमय में ही परलोकवासी हो जाने के कारण वे चारों वेदों पर पूर्ण भाष्य नहीं लिख सके। उन्होंने यजुर्वेद भाष्य के अतिरिक्त ऋग्वेद पर आंशिक भाष्य लिखा (सप्तम मण्डल के ६१ वें सूक्त के द्वितीय मंत्र तक) चतुर्वेद विषय-सूचि—स्वामी जी ने वेदभाष्य लेखन से पूर्व चारों वेदों का गम्भीर अध्ययन, मनन और आलोड़न करके

चारों संहिताओं के समस्त मंत्रों का विषय निर्धारित किया। यद्यपि स्वामी जी के ऋग्वेद तथा यजुर्वेद भाष्य में तथा इस विषय सूची में निर्दिष्ट मंत्र गत विषयों में यत्र तत्र अन्तर दृष्टिगोचर होता है तथापि सूचीपत्रस्थ विषयों को भी पक्षान्तर के रूप में प्रमाण माना जा सकता है। ऋग्वेद के शेषांश तथा साम एवं अथर्व के मंत्रों का विषय निर्धारण करने में इस सूची का महत्व निर्विवाद है। पर्याप्त समय तक अप्रकाशित रहे इस महत्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ का प्रकाशन परोपकारिणी सभा ने १९७१ ई० में किया। ग्रन्थ का आलेख स्वामी जी द्वारा संशोधित है। इस ग्रन्थ की प्रैस कापी मैंने तैयार की थी। भविष्य के वेदभाष्यकर्ता को इस विषय सूची के आधार पर भाष्य रचना के कार्य में निश्चय ही सहायता मिलेगी।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका—स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य लेखन के पहले यह आवश्यक समझा कि वेद विषयक कतिपय जटिल समस्याओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार प्रस्तुत करते हुए वेदार्थ विषयक अपनी दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए वेदभाष्य की भूमिका लिखनी चाहिए। यद्यपि यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं फिर भी दयानन्द के वेदभाष्य को समझने के लिए एक कुंजी है, इसलिए इसका स्वतंत्र रूप से परिचय देना आवश्यक है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की रचना करते समय स्वामी दयानन्द के समक्ष आचार्य सायण विरचित वेद संहिताओं के भाष्यों की भूमिकाएँ विद्यमान थीं। मूलतः स्वामीजी ने भी अपनी भूमिका संस्कृत में ही लिखी है। इस ग्रन्थ में लेखक ने अत्यन्त युक्ति एवं तर्कपूर्ण ढंग से वेदविषयक विभिन्न वादों की आलोचना की है। उनका यह विवेचन न तो सायण की भांति पूर्णतया मीमांसा दर्शन पर ही आधारित हैं और न अपने समकालीन कतिपय पाश्चात्य वेदविदों की भाँति वे ऐतिहासिक तथा विशुद्ध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि ही लेकर चले हैं।

भूमिका में वेदोत्पत्ति, वेद नित्यत्व विचार, वेद संज्ञा विचार, ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विचार, वेदाधिकार निरूपण, भाष्यकरण शंका समाधान आदि चालीस विषयों का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। यत्र तत्र वेदों के मध्यकालीन एवं अर्वाचीन भाष्यकारों की धारणाओं का भी प्रसंगोपत्ति खंडन किया गया है। ग्रन्थारम्भ में अपनी वेदभाष्य प्रणाली की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है:—

आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीति सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा॥

अर्थात् इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं लिखा गया है, परन्तु जो ब्रह्मा से लेकर व्यास पर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उनकी जो व्याख्या रीति है, उससे युक्त ही यह वेद भाष्य बनाया गया है।

स्वामीजी की यह धारणा थी कि उनके इस वेद भाष्य से वेदविषयक उन सभी भ्रमों का निवारण हो जायेगा जो वेददूषक टीकाओं और भाष्यों के कारण आधुनिक काल में उत्पन्न हो गये हैं। अतः उन्होंने लिखा है:—

येनाधुनिकभाष्यैर्यैं टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषा सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थवर्णना॥

दयानन्द कृत वेदभाष्य की कतिपय विशेषताओं का सप्रमाण उल्लेख किया

जाना आवश्यक है। स्वामीजी की यह ध्रुव मान्यता थी कि वेद ईश्वर का नित्य ज्ञान है जो सृष्टि के आदिकाल में मानव जाति के हितार्थ अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक ऋषियों के माध्यम से व्यक्त होता है।

स्वामी दयानन्द का यह विचार नितान्त कल्पना-प्रसूत नहीं था। अपितु उन्होंने अपने इस मन्तव्य की सिद्धि के लिए भारत के शास्त्रीय वाङ्मय से शतशः प्रमाण भी उद्धृत किये हैं। 'वेद नित्यत्व' विषय के अन्तर्गत भूमिका में उन्होने अनेक दर्शन सूत्रों के प्रमाण देकर वेदों की नित्यता तथा उनका ईश्वरकर्तृत्व सिद्ध किया है। यद्यपि अनेक विचारकों की सम्मति में वेदों को ईश्वरोक्त ज्ञान घोषित करना दयानन्द की एक भावुक अपील मात्र थी, जिसके द्वारा उन्होंने विघटनशील हिन्दू समाज को उसकी आस्था के एकमात्र केन्द्र बिन्दु वेदों के आधार पर संगठित करने का प्रयास किया। परन्तु भारतीय आर्य जाति की सुचिन्तित विचार प्रणाली से परिचित प्रत्येक व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि वेद के अपौरुषेयत्व और ईश्वर कर्तृत्व को स्वीकार कर दयानन्द ने कुछ भी नूतन उद्भावना नहीं की है। दार्शनिक तत्त्व चिन्तन की दृष्टि से स्वामी दयानन्द के विचारों से नितान्त दूर स्वामी शंकराचार्य ने भी ब्रह्म सूत्रों का भाष्य करते हुए ऋग्वेदादि शास्त्रों को अनेक विद्याओं का मूल उपादान स्वतः प्रमाण, सर्वार्थ द्योतक तथा सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा प्रसूत उत्पन्न स्वीकार किया है।

स्वामीजी प्रचलित मान्यता के अनुसार न तो यही मानते हैं कि आरम्भ में वेद की एक ही संहिता थी और महर्षि व्यास ने उसका चतुर्विध विभाजन कर वेद चतुष्टय की कल्पना की और न वे यही स्वीकार करते हैं कि मन्त्र संहिता की भाँति ब्राह्मण भाग को भी वेद संज्ञा से अभिहित किया जाय। उनकी दृष्टि में मन्त्र संहिता ही वेद है। फलतः उन्हें ही स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त मानना चाहिए। ऐतरेय, शतपथ आदि विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थ तो ऐतरेय महीदास, याज्ञवल्क्य आदि विभिन्न ऋषि मुनियों द्वारा प्रणीत है। भूमिका के वेद संज्ञाप्रकरण के अन्तर्गत इस विषय का विस्तारपूर्वक ऊहापोह किया गया हैं। इस प्रसंग में उन्होंने 'मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' की प्रचलित मान्यता के प्रति अपनी असहमति व्यक्त की है।

वेदों में किन-किन विषयों का निरूपण हुआ है, इसे लेकर प्राचीन एवं अर्वाचीन आचार्यों में पर्याप्त मतभेद रहा है। यदि निरुक्त में उल्लिखित कौत्स नाम के किसी आचार्य ने मन्त्रों को सर्वथा अनर्थक अर्थहीन बताया तो आचार्य जैमिनी तथा अन्य मीमांसकों के 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वात्, कहकर वेद मन्त्रों का एक मात्र प्रयोजन कर्मकांड निरूपण स्वीकार किया। स्वामी दयानन्द वेदो को केवल कर्मकाण्ड प्रतिपादक नहीं मानते। उनके अनुसार मानव के सम्पूर्ण इहलौकिक और पारलौकिक प्रयोजनीय विषय वेदों में निरूपित हुए हैं। भूमिका के वेद विषय विचार प्रकरण के अन्तर्गत वे लिखते हैं:—'अथ चत्वारो वेद विषयाः सन्ति विज्ञानकर्मोपासना ज्ञानकांड भेदात्। तत्रादिमो विज्ञान विषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति। तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्यपदार्थेषु साक्षाद्लोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरः उभयो मुख्योऽस्ति। कुतः ? अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्ति, ईश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्।'

अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कठोपनिषद् के 'सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति' आदि वाक्यों के प्रमाण भी दिये हैं। वेदान्त के 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र को इस प्रसंग में

में उद्धृत करते हुए वे लिखते हैं:—'तदैव ब्रह्म सर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति। क्वचित् साक्षात् क्वचित् परम्परया च। अतः परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्मैवास्ति।'

इस संबन्ध में यह लिखना भी असमीचीन न होगा कि स्वामी दयानन्द वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद की विचारधारा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। वे न तो मध्यकालीन भाष्यकारों की भांति जड़ पदार्थों में कोई विशिष्ट अभिमानी देवता की सत्ता स्वीकार करते हैं और न पाश्चात्य वेदज्ञों की भाँति वेद मन्त्रों में अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, आकाश आदि प्राकृतिक पदार्थों को ही उपास्य मानते हैं। वस्तुतः वैदिक एकेश्वरवाद को स्वामी दयानन्द ने एक नवीन और समर्थ अर्थवत्ता प्रदान की है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि स्वामीजी वेद के कर्मकांडपरक अर्थों को अस्वीकार करते हैं। वे यह मानते हैं कि मन्त्रों का क्रियाकांडपरक अर्थ भी होता है और उसे ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मण, मीमांसा तथा श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों में लिखा है। अतः वे पिष्टपेषणवत् फलतः अनार्ष ग्रन्थवत् अपने भाष्य की कर्मकांड परक व्याख्या नहीं करते। उनका कथन है—"अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते। परन्त्वेतैर्वेद मन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्र यत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः? कर्मकांडानुष्ठानस्यतरेयशतपथ ब्राह्मण पूर्वमीमांसा श्रौतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्। पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तैश्चेति। तस्माद्युक्तिसिद्धो वेदादि प्रमाणानुकूलो मंत्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योऽग्योऽस्ति।

मन्त्र का पारमार्थिक और व्यावहारिक दो प्रकार का अर्थ होता है, यह स्वामी जी की सुनिश्चित धारणा थी। परन्तु किसी भी मन्त्र में ईश्वर विषयक अर्थ का त्याग नहीं हो सकता यह लिखकर उन्होंने वेदों के आध्यात्मिक अर्थ करने की प्रणाली को एक ठोस आधार प्रदान किया। इस प्रसंग में वे लिखते हैं—"अथात्र यस्य यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिक व्यावहारिकयोर्द्वयोरर्थयोः श्लेषालंकारादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति, तस्य तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्यते। परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति।"

इसी विवेचन के आधार पर हमें स्वामी दयानन्द के यौगिकवाद को समझने का भी यत्न करना चाहिए। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र 'अग्निमीड़े पुरोहितं' में प्रयुक्त 'अग्नि' शब्द का जब स्वामीजी ने ईश्वरपरक अर्थ किया तो संस्कृत के बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित चौंक पड़े। गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के स्थानापन्न प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न तथा गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, काशी के प्रिन्सिपल श्री ग्रिफिथ जैसे विद्वानों को यह सर्वथा आपत्तिजनक प्रतीत हुआ कि अग्नि का सामान्य आग से अतिरिक्त भी कुछ अर्थ हो सकता है। 'भ्रान्ति निवारण' शीर्षक पुस्तक लिख कर स्वामी जी ने इन आपत्तिकर्ता विद्वानों की शंकाओं का युक्तियुक्त समाधान किया और साथ ही यह भी सिद्ध किया कि वैदिक पदों का उनके द्वारा किया गया त्रिविध प्राकरणिक अर्थ सर्वथा युक्ति सिद्ध तथा वेद की प्राचीन व्याख्याओं के अनुकूल है।

यौगिकवाद की एक अनिवार्य फलश्रुति यह निकलती है कि वेद मन्त्रों के इस प्रकार निरुक्त प्रतिपादित पद्धति के अनुसार अर्थ किये जाएँ तो एक ही मन्त्र के

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधियाज्ञिक इस प्रकार त्रिविध अर्थ हो सकते हैं। स्वयं स्वामीजी ने ऋग्वेद के कतिपय प्रारम्भिक मन्त्रों का जो नमूने का भाष्य लिख कर प्रकाशित किया उसमें प्रत्येकमन्त्र के दो दो अर्थ देने का प्रयास किया गया है। कर्मकांड विधायक आधियाज्ञिक अर्थ देना उन्होंने पिष्टपेषणवत् व्यर्थ होने से अनावश्यक ही समझा।

स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने वेद मन्त्रों में किसी लौकिक इतिहास की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। फलतः वे वेदों में किसी जाति विशेष या व्यक्ति विशेष का ऐतिहासिक वृतान्त नहीं मानते। जब वेद को अनादि ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार कर लिया जाता है तो उसमें विभिन्न व्यक्तियों, जातियों, नगरों, पर्वतों, नदियों आदि का उल्लेख मानना असंगत ही होगा। तथापि मन्त्रों में ऐसे नाम आते हैं जो कालान्तर में व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त होने के कारण वेद में इतिहास का आभास देने लगे। वेदार्थ की यौगिक प्रक्रिया के अनुसार इन शब्दों का व्यक्तिपरक अर्थ नहीं किया जाता। मनु ने इस सम्बन्ध में जो लिखा है वह नितान्त समीचीन ही है कि वेद प्रयुक्त कतिपय नामों के अनुकरण पर ही कालान्तर में विशिष्ट व्यक्तियों को तत् तत् नामों से अभिहित किया जाने लगा। महाभारत, विष्णुपुराण तथा मीमांसा शास्त्र के आचार्य कुमारिल भट्ट भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। वेद में इतिहास की प्रतीति का समाधान आचार्य जैमिनी ने मीमांसा में किया है। उन्होंने 'परन्तु श्रुति सामान्य मात्रम्' इस सूत्र के द्वारा यह मत व्यक्त किया है कि श्रुति में कहे गये जो नाम किसी व्यक्ति विशेष के प्रतीत होते हैं, उनका सर्व सामान्य अर्थ ही लिया जाना चाहिए।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की एक अन्य विशेषता उसका विज्ञान प्रतिपादक होना भी है. वेदों के सम्बन्ध में उनकी एक महत्वपूर्ण मान्यता यह थी कि वे वेदों को जहां पराविद्या के मूल होने के कारण अध्यात्म शास्त्र का पुरस्कर्ता मानते थे, वहां उन्हें वेदों में भौतिक विद्याओं का अस्तित्व भी स्वीकार्य था। अपने इस मन्तव्य को पुष्ट करने के लिए उन्होंने अपनी भाष्य भूमिका में कतिपय प्रकरण लिखे हैं। उदाहरणार्थ स्वामीजी ने वेद मन्त्रों के आधार पर सृष्टि विद्या, पृथिव्यादि लोक भ्रमण, धारणाकर्षण विषय, गणित विद्या, नौविमानादि विद्या, तार विद्या, वैद्यक शास्त्र आदि को स्पष्ट किया है। स्वामी जी के वैदिक विज्ञान विषयक मूल अभिप्राय को न समझने के कारण अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैल गईं। वस्तुतः जब स्वामी जी ने वेदों को समस्त सत्य विद्याओं का निधान कहा था तब उनका अभिप्राय यह नहीं था कि वेद में आधुनिक विज्ञान के आविष्कार अपने यथातथ्य रूप में विद्यमान हैं, अपितु उनका भाव तो इतना मात्र ही था कि विज्ञान के मूल सिद्धान्त अपने बीज रूप में वेद मंत्रों में वर्णित हुए हैं और विभिन्न शास्त्रज्ञ महर्षियों तथा भौतिक विद्याओं के पारगामी मनीषियों ने उन वेद प्रतिपादित मौलिक सिद्धांतों के आधार पर ही भौतिक तथा प्राकृतिक विज्ञान के विभिन्न रहस्यों का उद्घाटन किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में विज्ञान की सत्ता का निरूपण कर स्वामी जी ने वेदाध्ययन के एक नये आयाम का ही उद्घाटन किया है, जिस पर बहुविध शोध तथा अनुसंधान अपेक्षित है। इस प्रसंग में योगिवर्य अरविन्द के निम्न शब्दों का उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है जिनमें उन्होंने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि

स्वामी दयानन्द का वेद में विज्ञान का अस्तित्व स्वीकार करना किंचित् भी आश्चर्य-कारक नहीं है । अपितु उन्होंने तो यहां तक कहा है कि वेदों में विज्ञान के कुछ ऐसे भी तथ्य पाये जाते हैं जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक अभी तक जान भी नहीं पाये हैं। उनका वह कथन इस प्रकार है:—

"There is nothing fantastic in Dayanand's idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion- I will even add my own conviction that the Veda contains the other truth of science, the modern world does not at all possess and in that case Dayanand has rather understated than overstated the depth and range of the Vedic Wisdom.'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य वेद के अध्ययन में एक दिशा का निर्देश करता है, जो वेद के तात्विक अर्थ तक पहुंचने में हमारी सहायता तो करती ही है जिसके आधार पर भारतीय धर्म तथा संस्कृति का पुन:निर्माण भी किया जा सकता है। यह उस याज्ञिक पक्ष का पूर्णतः प्रत्याख्यान तो नहीं करती, जिसके अनुसार वेद मंत्रों का एक प्रयोजन कर्मकाण्ड का नियमन और संचालन माना गया था किन्तु स्वामी दयानन्द प्रतिपादित वेदार्थ शैली वेदोक्त यज्ञ क्रिया को ही एक नवीन सारगर्भित अर्थवत्ता प्रदान करती है जिसके अनुसार यज्ञकर्म किन्हीं रूढ़, जटिल एवं निरर्थक क्रियाओं की समष्टि मात्र ही न रहकर विश्व ब्रह्माण्ड का सुचारु रूप से संचालन करने वाले ईश्वरीय नियमों एवं नैसर्गिक विधानों के प्रतीक बन जाते हैं। यज्ञ प्रक्रिया की इस प्रकार प्रतीकात्मक तथा आध्यात्मिक व्याख्या करने के कारण स्वामीजी ने 'यज्ञ' के नाम पर प्रचलित पशुहिंसा तथा वेद मन्त्रों में याज्ञिक हिंसा के तथाकथित विधान को सर्वथा अस्वीकार कर दिया था।

यहाँ यह कह देना भी अनुचित नहीं होगा कि वेद के मध्यकालीन भाष्यकारों की भांति स्वामी दयानन्द सामाजिक अनुदारता, जन्मगत जाति के महत्व को स्वीकार करने तथा इसके परिणाम स्वरूप वेदाध्ययन का अधिकार द्विज मात्र को ही प्रदान करने के पक्षपाती नहीं थे। इसके विपरीत उनके वेदाध्ययन—अधिकार-निरूपण में पर्याप्त उदारता दृष्टिगोचर होती है। यजुर्वेद के 'यथेमां वाचं कल्याणी' मंत्र को उद्धृत करते हुए उन्होंने मनुष्य मात्र का अधिकार परमात्मा की कल्याणी वाणी वेद भारती को पढ़ने पढ़ाने का स्वीकार किया है। रोमांरोलां ने उस वैचा-रिक उदारता की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए ठीक ही लिखा है—

"It was in truth an epoch making date in India, when a Brahman not only acknowledged that all human beings have a rignt to know the Vedas, whose study had been previously prohibited by the the Orthodox Brahmans, but insisted that their study and propa-ganda was the duty of every Arya.'i

इस प्रकार स्वामी दयानन्द के वेदार्थ विषयक दृष्टकोण को हम निष्कर्ष रूप में इस प्रकार उपस्थित कर सकते हैं—

(१) वेद अपौरुषेय होने से ईश्वर का नित्य ज्ञान हैं।

(२) वेद के समस्त पद यौगिक हैं रूढ़ नहीं।

(३) वद में किसी देश, जाति और व्यक्ति का इतिवृत्त नहीं है।

(४) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

(५) वेद में समस्त पदार्थ-विज्ञान सूत्र रूप में वर्णित है।

(६) सम्पूर्ण वेद का तात्पर्य अध्यात्म में है।

(७) वेद में अग्नि, वायु, इन्द्र आदि समस्त देवतावाचक पद उपासना-प्रकरण में परमेश्वर के वाचक होते हैं, अन्यत्र भौतिक पदार्थों के।

(८) युक्ति और प्रमाण के अनुसार वेद का याज्ञिक अर्थ भी होता है।

(९) वेदों की वाक्य रचना बुद्धिपूर्वक हुई है।

(१०) वेदों में भौतिक जड़ पदार्थों से याचना, अश्लीलता, वर्गद्वेष, पशुहिंसा आदि अनर्थकारी बातों का उल्लेख नहीं है।

(११) वेद स्वतः प्रमाण हैं, अतः अन्य समस्त वैदिक और लौकिक साहित्य वेदानुकूल होने पर ही प्रामाणिक माना जा सकता है।

(१२) वेद की व्याख्या के लिए वेदांगों, उपवेदों, दर्शनों, ब्राह्मणों और उपनिषद् आदि ग्रन्थों की सहायता ली जा सकती है, परन्तु कोई भी मन्त्र व्याख्या इन ग्रंथों के विपरीत होने से अमान्य नहीं हो सकती, जब तक वह स्वयं वेद से विपरीत न हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने वेद विषयक अपनी धारणाओं के द्वारा वेदाध्ययन के क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति का सूत्रपात किया है। यहां यह देखना भी आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द के वेद विषयक विचारों का वेद के परवर्ती अध्येताओं ने किस प्रकार स्वागत किया तथा उन्हें किस सीमा तक स्वीकार किया गया। सर्वप्रथम हम पाण्डिचेरी के साधक योगी अरविन्द के मत का उल्लेख करेंगे, जिन्होंने स्वामीजी की वेदभाष्य प्रणाली पर अपनी स्पष्ट सम्मति प्रदान करते हुए उनके वेद भाष्य को सायण की तुलना में श्रेष्ठ और वरिष्ठ ठहराया है। वैदिक मैगजीन में प्रकाशित अपने एक विस्तृत लेख में उन्होंने सायण भाष्य की त्रुटियों और सीमितताओं का ही उल्लेख नहीं किया, विशद विवेचन के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर भी पहुँचे कि जहाँ तक वद की पूर्ण और अन्तिम व्याख्या का संबंध है, वह चाहे कुछ भी हो, यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि दयानन्द ही वेदार्थ विषयक दृष्टि के प्रथम अन्वेषक थे।

श्री अरविंद ने स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य-प्रणाली का प्रशस्तिपाठ ही नहीं किया, उन्होंने स्वयं भी आध्यात्मिक दृष्टि को प्रधानता देते हुए वेद के कुछ अंशों का भाष्य किया। उनका वेद रहस्य ऐसी ही वेद व्याख्या है जिसकी वेदार्थ शैली स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य पद्धति से बहुत कुछ मिलती है। वेद रहस्य की विस्तृत भूमिका में श्री अरविंद ने भी दयानन्द की ही भांति सायण की वेदार्थ की यज्ञ प्रक्रियानुसारिणी एकांतिक शैली की कटु आलोचना की है। वेद के विषय में श्री अरविन्द की विचारधारा का ही अनुसरण करने वाले श्री टी० वी० कपाली शास्त्री ने भी ऋग्वेद के कुछ अंश का भाष्य किया है जिस पर स्वामी दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली का निश्चित प्रभाव है।

निरुक्तालोचन, ऐतरेयालोचन, त्रयी परिचय आदि प्रसिद्ध वैदिक ग्रंथों के लेखक तथा स्वामी दयानन्द के ही समकालीन बंगाली विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी (१८४६-१९११) भी स्वामीजी की वेदभाष्य शैली से पर्याप्त प्रभावित हुये थे। उन्होंने अपने ऐतरेयालोचन में शूद्रों के वेदाधिकार की घोषणा करते हुए स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट यजुर्वेद के उसी मन्त्र को उद्धृत किया है जिसमें परमात्मा की कल्याणी वाणी को मनुष्य मात्र के हितार्थ प्रचारणीय बताया गया है। सामश्रमी जी द्वारा लिखित अन्य वैदिक ग्रन्थ भी स्वामी जी की विचारधारा से प्रभावित हैं। स्वामी दयानन्द की ही भाँति सामश्रमी जी ने भी वेदों में विज्ञान की सत्ता स्वीकार की है।

वेद मंत्रों में निहित रहस्य पर नूतन वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन करने वाले पं० मधुसूदन ओझा की वेदार्थ शैली भी अध्यात्म प्रधान मन्त्रार्थ शैली है। यद्यपि म० म० पं० मधुसूदन ओझा तथा उनके शिष्यद्वय म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तथा स्व० पं० मोतीलाल शास्त्री का वेदार्थ चिन्तन ऊहा तथा कल्पना पर ही अधिक आश्रित प्रतीत होता है तथापि यह निश्चित है कि मधुसूदन शैली के विद्वानों ने वेदभाष्य की परम्परागत मध्यकालीन याज्ञिक शैली को छोड़कर वेदों की जो आध्यात्मिक व्याख्या की है, निश्चय ही उसके मूल में स्वामी दयानन्द की वेदार्थ प्रणाली का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पं० मधुसूदन ओझा द्वारा आविष्कृत वेदार्थ प्रणाली को ही स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने पल्लवित किया। उन्होंने यह स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है कि वेदार्थ की परम्परा में सुदीर्घकाल के पश्चात् स्वामी दयानन्द ने पुनः ब्रह्मवाद पक्ष की स्थापना की। पश्चिमी विद्वान् हठपूर्वक इस प्रणाली से पराङ्मुख रहे और समस्त ब्राह्म ग्रन्थों का स्पष्ट साक्ष्य होते हुए भी उन्होंने अध्यात्म किंवा ब्रह्मवाद सिद्धान्त को पूज्य दृष्टि से नहीं देखा। वेदों के मर्मज्ञ विद्वान डा० फतेहसिंह भी अपने वैदिक दर्शन तथा The Vedic Ftymology के लिये स्पष्टतः स्वामी दयानन्द के वेदार्थ विषयक विचारों के ऋणी हैं।

रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य स्वामी भगवदाचार्य ने अपने साम संस्कार भाष्य की भूमिका तथा ब्रह्मसूत्र वैदिक भाष्य में वेदाधिकार का विवेचन करते हुये मनुष्य मात्र के लिए जो वेद के पठन पाठन का अधिकार स्वीकार किया है, वह प्रत्यक्षतया स्वामी दयानन्द के एतद्विषयक विचारों का ही प्रभाव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानन्द की वेद भाष्य प्रणाली ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सभी आधुनिक वेद व्याख्याकारों को प्रभावित किया है। न केवल एतद्देशीय, अपितु पाश्चात्य वैदिक विद्वान् भी स्वामी दयानन्द की वेदार्थ विषयक देन को स्वीकार करते हुए वेद विषयक उनके बृहत् साधनापूर्ण अनुष्ठान को श्लाघा की दृष्टि से देखते हैं। आधुनिक विश्वविद्यालयों में जो नवीन शैली का अनुसंधान हो रहा है, उससे भी स्वामी दयानन्द का वेदार्थ के प्रति क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के विशदीकरण में सहायता मिली है। डा० सुधीरकुमार गुप्त ने अपने शोधग्रन्थ वेदभाष्य प्रणाली को देन में स्वामी दयान्द की देन व स्वामी जी की वेदभाष्य पद्धति की महत्ता और उसके प्रभावों का सम्यक् आकलन किया है। वेदार्थ चिन्तन के क्षेत्र में याज्ञिक प्रभाव को न्यून कर वेद मन्त्रों में निहित सत्य की व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठा तथा उसके शाश्वत महत्व की घोषणा स्वामी दयानन्द की वैदिक साहित्य को महती देन है।

आलोचनाओं का एक प्रत्युत्तर

प्रस्तुत लेख दिसम्बर में छपे श्री सत्यपाल शास्त्री के लेख का उत्तर है। लेख हम अविकल छाप रहे है। इससे सम्पादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। दोनों पक्ष पाठकों के समक्ष आयें और वे सत्य का निर्णय स्वयं करें, इसी भावना से यह छाप रहे हैं। इसके प्रत्युत्तर में भी सभ्य भाषा में लिखे लेखों का हम स्वागत करेंगे।

—सम्पादक

'जन-ज्ञान' मासिक पत्रिका के दिसम्बर १९७५ के अक में श्री सत्यपाल शास्त्री का एक लेख प्रकाशित हुआ है। शीर्षक है: श्री रजनीश: व्यक्तित्व और कृतित्व की शव परीक्षा।" शास्त्री जी की दृष्टि में श्री रजनीश अध्यात्म तथा धर्म का व्यवसाय करने वाले, एक अति कुशल तथा चतुर दुकानदार हैं। आइये विचार करें कि शास्त्री जी का दृष्टिकोण कितना तर्क युक्त तथा वैज्ञानिक है।

' रजनीश शायद वह सब-कुछ न हों, जो उनके शिष्यों तथा भक्तों ने उन्हें प्रस्तुत किया है। परंतु वह थोथा चना भी नहीं हैं। उनका व्यक्तित्व निश्चित ही ज्ञान की गरिमा से अलंकृत है और यह ज्ञान केवल पांडित्य नहीं है। यद्यपि पंडितों की इस देश में कमी नहीं है। शास्त्रों के अध्येता और भाष्यकार भी कम नहीं है। निश्चय ही रजनीश यह सब तो हैं नहीं। परन्तु इनसे कहीं अधिक ही हैं। इसे मैं इस प्रकार प्रस्थापित करना चाहूंगा।

भारत अध्यात्म, चेतना-उपलब्ध व्यक्तियों के मामले में धनी देश रहा है। वैसे तो उनकी गणना कठिन है। लेकिन जाने माने महापुरुषों का उल्लेख किया जा सकता है। परंतु वे सब अपनी उपलब्धियों तक एक ही मार्ग से पहुँचे हों, ऐसा तो नहीं है। अनेक मार्गों से वे गए हैं। हां, पहुंचे अवश्य एक जगह ही हैं। और अगर हम विस्तार में जाएँ तो पता लगेगा कि साधना विधियां भी इस देश में अनेकानेक विकसित हुई हैं। ये विधियां एक दूसरे की पूरक भी रही हैं और काटती भी रही है। मसलन योग और तंत्र एक दूसरे के विरोध में हैं। लेकिन पहुँचते दोनों ही परम उपलब्धि पर हैं। इस लिहाज से अन्ततः विरोधी नहीं भी ठहरते हैं।

इस बुनियादी भेद तथा एकता को समझे बिना रजनीश को समझने में कठिनाई होगी। श्री शास्त्री की यही तो कठिनाई है। लगता है उनका विचार यह है कि समाधि का मार्ग केवल "यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा ध्यान" से होकर ही जाता है। पर क्या भारत की परम्परा यही कहती है? भक्ति का भी माध्यम अत्यन्त व्यापक और लोक प्रिय रहा है। उसमें तो यम, नियम आदि पर जोर नहीं है। श्री रामकृष्ण परमहँस इस मार्ग के परम पोषक थे और अपने एक शिष्य अद्भुतानंद (जिसका नाम पहले लाटू था और जो एक सम्पन्न बंगाली परिवार में बचपन से घरेलू कर्मचारी था) के लिए कहा करते थे कि उसे परम उपलब्धि के लिए ज्ञान मार्ग के कीचड़ से होकर नहीं निकलना पड़ा। अपनी

भक्तिमयी भावदशा के कारण वह हनुमान-कूद से एक छलांग में ही भवसागर पार कर गया।

और भी अनेक मार्गों का उल्लेख भारत की साधना परम्परा में मिलता है। तंत्र भी उनमें से एक है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि तंत्र अपनी अनेक शाखायें, उपशाखाएँ रही होंगी। रजनीश उन सबको तथा अन्य सभी मार्गों को मानते हैं। इतना ही नहीं; पृथ्वी में जितने भी धर्म और साधना मार्ग निर्मित हुए हैं, उन सबको वे न सिर्फ मानते हैं बल्कि उनके रहस्यों को, उनकी एक-एक पर्त हटा हटाकर हमारे सामने रखते हैं। यह अपने आप में एक ऊँचे आध्यात्मिक स्तर का महत्वपूर्ण और बुनियादी काम है।

धर्मों तथा साधना मार्गों में ठगबाजी, पाखंड आदि नहीं रहे हैं। यह कोई भी नहीं कह सकता, रजनीश भी नहीं कहते। शायद तंत्र में इसकी सबसे अधिक गुंजाइश है। प्रमाण भी अनेक हैं कि तंत्र साधना में विकृतियों और अनाचारों का अंत नहीं था। परंतु उसकी लोकप्रियता भी निर्विवाद रही है। वैसे विकृतियाँ किस धर्म या साधना मार्ग में नहीं रही हैं ? प्राय: सभी धर्म साधारण श्रमशील जनता के भयंकर शोषण का माध्यम रहे हैं। तभी तो मार्क्स ने धर्म को जनता के लिए अफीम कहा है। किन्तु मार्क्स दर्शन के पैदा होने के १०० वर्ष के अन्दर ही भारी मात्रा में प्रमाण मिले हैं कि मार्क्सवाद का भी जनता के शोषण के लिए व्यापक दुरुपयोग हो सकता है। अत: किसी भी विचार व्यवस्था का विरोध इसलिए नहीं किया जा सकता कि उसका दुरुपयोग हुआ है। हर विचार व्यवस्था, धर्म अथवा साधना का कहीं पहुँचाने का दावा उसके सदुपयोग में है, दुरुपयोग में कदापि नहीं।

तंत्र साधना के लिए भी यही सच है। पर इसमें कोई शक नहीं कि यह मार्ग जितना 'सहज' है उतना ही विकट भी है। अथवा ऐसा कहना अधिक उपयुक्त है कि हमने इसे ऐसा विकट बना दिया है। आश्चर्य है कि योग साधना मार्ग में जो चीजें घोर बाधक हैं, वह तंत्र साधना में परम सहायक हैं। उनमें भी काम 'सेक्स' का स्थान विशिष्ट है। इसे धैर्य पूर्वक समझने की आवश्यकता है। गाली-गलौज से न तो इसका महत्व कम होगा न हम यही सिद्ध कर पाएँगे कि यह कोरा पाखंड रहा है और है। सेक्स का महत्व रजनीश तंत्र साधना की दृष्टि से विशेष मानते हैं। तंत्र अद्वैत सिद्धि का मार्ग है। अद्वैत के लिए अपवित्र कुछ भी नहीं है। सेक्स भी अपवित्र नहीं है। बल्कि परम पवित्र है। यही कारण है कि भारत में शिवालयों का अन्त नहीं है। वहाँ मूर्तियाँ नहीं, बल्कि योनि और लिंग के पाषाण प्रतिरूप प्रतिष्ठित हैं।

हमारे समाज का व्यवस्थापक वर्ग नितांत ढोंगी और पोंगापंथी है। उसने सेक्स को बुरा तथा अपवित्र कहकर परोक्ष में ढकेल दिया है और फिर अपने घोर अनैतिक मार्ग से प्राप्त की हुई सम्पन्नता और सुविधाओं की सहायता से, परदे के पीछे जी भर कर भोग में गले तक डूबा रहता है। इसलिए जब रजनीश इसका पर्दा-फाश करते हैं, तब हम तिलमिला उठते हैं और उन पर इस बात का आरोप लगाते हैं कि वह समाज में कामुकता फैला रहे हैं। पर रजनीश साहित्य में कहीं भी सेक्स पर टिकने के लिए नहीं कहा गया है। बराबर इसी बात पर जोर है कि सेक्स को स्वीकार करके उसके बाहर जाओ, उससे ऊपर उठो। उसे व्यर्थ नकारो नहीं, क्योंकि वह है। और आँखें बन्द करने से वह मिट नहीं जायेगा। नकारने से हम झूठ को

प्रश्रय अवश्य देंगे। और फिर दमन निर्माण होंगे, विकृतियाँ आयेंगी और हमारा अन्तर्मन तनाव और अशांति से भर जायेगा, भर गया है। यह एक ठोस सत्य है। यह विक्षिप्तता का मार्ग है और छल का मार्ग भी है। क्योंकि, अगर हमारे पास शोषण के माध्यम से एकत्रित किए साधन हैं तो, हम बाहर पवित्रता का मुखौटा रखेंगे और परदे के पीछे सेक्स को लेकर मनमानी करेंगे। इस प्रक्रिया के साथ नारीत्व की गरिमा का घोर अपमान भी जुड़ा हुआ है। मुखौटों का यह मिथ्याचार ही पाप है। मैं पूछना चाहूँगा "सेक्स नैसर्गिक है" इस स्वीकृति में क्या कोई पाप छिपा है?

श्री शास्त्री ने 'संभोग से समाधि की ओर', रजनीश की बहुचर्चित पुस्तक से चुनकर जो उद्धरण प्रस्तुत किए हैं वह कामुकता के पोषक या कामुकतावादी होने के बजाय स्पष्टत: उससे विपरीत हैं। रजनीश तो उसमें कामुकता से बाहर निकलने का सार्थक मार्ग बताते हैं। उनका निरन्तर आग्रह है कि सेक्स के परे जो सहज समाधि की अवस्था है और जिसके बिना मनुष्य की गति नहीं है, उसमें जाओ। रजनीश का यह कहना अवश्य है कि यदि हम जागरूक हों तो सेक्स भी समाधि में ले जा सकता है। ले ही जायगा यह उनका कहना नहीं है। ले जा सकता है, इतने पर ही जोर है। यह अन्तर इसलिए है कि हमारी चेतनागत भाव दशा पर ही परिणाम निर्भर करेगा। सेक्स में काम का एक क्षण ऐसा आता है जब अतीत और भविष्य नहीं रहते। केवल एक आयाम रहित वर्तमान का क्षण ठहर जाता है। रजनीश कहते हैं यह भी समाधि का द्वार बन सकता है। अनेकों साधकों के लिए पहले यह द्वार बन चुका है। यह मार्ग निश्चय ही सही है और वैज्ञानिक है, और सहज भी। परन्तु यह तो इसमें प्रवेश किये बिना नहीं जाना जा सकता। पर इतना तो निश्चित है कि इसे दुराचार का प्रचार मानना भारी भूल होगी। और रजनीश के प्रति अन्याय भी होगा।

वैसे जब भारत में तंत्र साधना इतनी व्यापक रही है तब निश्चय ही इसके माध्यम से अनेक सिद्ध पुरुष हुए होंगे। अत: इस सम्बन्ध में रजनीश की प्रस्थापनाएँ भ्रांतिपूर्ण कदापि नहीं कही जा सकती। उचित यही है कि हम इस बारे में निर्णय पहुँचने की जल्दी न करें। कोई मन गढ़न्त बात तो कही नहीं गई है। हां जो शास्त्री जी को मालूम नहीं हो वह झूठ ही होगा ऐसा आग्रह रखना एक तरह से अपने दम्भ का ही प्रदर्श नहै।

हम यह भी न भूलें कि विज्ञान की आधुनिकतम खोजें भी हमें अद्वैत की ओर ले जा रही हैं। विज्ञान स्वयं मानने लगा है कि सारा ब्रह्मांड ऊर्जा का ही खेल है। सेक्स भी ऊर्जा का ही खेल है। यह ऊर्जा जब वासना के माध्यम से गुजरती है को सेक्स कहलाती है। उसे वहाँ से मोड़कर किसी और काम में भी लगाया जा सकता है. लगाना ही होगा। इससे परम प्रज्ञा का द्वार भी खोला जा सकता है। यदि वह उस ओर प्रवाहित की जा सके तो। रजनीश यही करने को कहते हैं। इसका रास्ता भी बताते हैं। परन्तु इसमें प्रवेश करके ही इसकी परख हो सकती है। यदि हम उसमें नहीं जाना चाहते तो न जाएँ, पर बिना अनुभव लिए रजनीश की निन्दा में पड़ना भी उचित नहीं है।

वैसे यह भी स्पष्ट है कि जब तक सेक्स के माध्यम से बहने वाली ऊर्जा को हम परामर्श का द्वार खोलने की ओर प्रेरित नहीं करते हैं तब तक उसके प्रति

प्राकृत रूप से सहज रहना ही श्रेयस्कर है। सहज न होने से भयंकर विकृतियाँ पैदा होती हैं। सारे विश्व में आज यही विकृति व्याप्त है। सेक्स के प्रति निन्दा या विरोध का जीवन जी कर कोई भी समाज स्वस्थ नहीं हो सकता। यम, नियम, प्राणायाम आदि की दुहाई देकर भी हम आज की विक्षिप्तता से निकल नहीं पा रहे हैं। बल्कि उसमें और डूबते जा रहे हैं! इसी संदर्भ में फ्रायड की निष्पत्तियों की सराहना रजनीश ने की है। फ्रायड रजनीश को सम्पूर्णतया मान्य नहीं है। रजनीश सेक्स को भगवतसत्ता का अंश मानते हैं। फ्रायड आध्यात्मिक तथा धार्मिक अनुभूतियों को भी सेक्स से निकला हुआ मानते हैं। रजनीश और फ्रायड में यह बुनियादी अन्तर है। अतः फ्रायड का हवाला देकर रजनीश की निन्दा भी असंगत है।

रजनीश ने गांधी की यत्र-तत्र कटु आलोचना की है। यह निश्चय ही रजनीश का अविचार ही नहीं, अनधिकार चेष्टा भी है। रजनीश जो कार्य कर रहे हैं उसके लिए यह नितान्त अनावश्यक ही नहीं, हानिप्रद भी है। दोनों के क्षेत्र भिन्न हैं। गाँधी ने दलित वर्गों में नारायण का साक्षात्कार पाया था। उनसे अलग वह अपनी गति नहीं मानते थे। चाहते भी नहीं थे। उनकी सेवा के लिए बार-बार वह हरिजनों में जन्म लेने को तैयार थे। यह भी परम उपलब्धि ही है। यहाँ दलितों के साथ गाँधी का करुणा का सम्बन्ध है। गाँधी शोषकों के प्रति भी सर्वथा निर्वैर थे। उन्हें वे या तो हृदय परिवर्तन से जीतना चाहते थे अथवा सत्याग्रह की प्रक्रिया से, जिसमें संघर्ष का भी समावेश है। यही सच्चा सर्वोदय है। सत्याग्रह के बिना सर्वोदय अर्थहीन है। यह अलग बात है कि विनोबा ने उसे सत्याग्रह रहित करके निर्वीर्य और निर्जीव बना दिया है। लेकिन दुर्भाग्य से रजनीश भी उसे (सत्याग्रह को) ग्रहण नहीं कर सके। बल्कि वह विशिष्ट वाद के पोषक बन गए हैं। अतः यहां रजनीश का अध्यात्म विशिष्ट वर्गों की ओर मुड़ जाता है। साफ दिखाई देता है करोड़ों दलितों की आहों और आँसुओं को रोकने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं है। यह पहलू निश्चित रूप से विचारणीय है लेकिन इससे भी रजनीश का अपना मौलिक महत्व जो है वह कम नहीं होता। अतः उन्हें पाखण्डी घोषित करना हर प्रकार से अनुचित होगा।

वैसे श्री शास्त्री ने स्वयं भी गाँधी को नहीं बख्शा है। हमारी समाज का सेक्स विरोधी व्यवस्थापक वर्ग नग्नता तक को भी नहीं झेल पाता। यद्यपि भारत में ही अनेकों जातियां ऐसी हैं जो अर्धनग्न या नग्न अवस्था में ही प्रायः रहती हैं। वे सेक्स के बारे में भी सहज आचरण करते हैं और हमारे तथाकथित सभ्य और शिक्षित समाज से कहीं कम दमन, विकृति तथा विक्षिप्तता के शिकार हैं। उनकी नग्नता नितान्त सरल और निर्मल है। पर हम सभ्य लोग इनके प्रति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। वैसे फैशन परस्ती में हमारा सम्पन्न वर्ग अपनी स्त्रियों को जिस विकृत तथा उत्तेजक नग्नता का प्रदर्शक बनाता है वह झूठी संस्कृति और सभ्यता के सम्मोहन के आवरण में हमें सम्पूर्णतया ग्राह्य है। पर गाँधी यदि अपने साथ की महिलाओं में तथा अपने में भी सहज-सरल नग्नता का प्रयोग करते हैं तो वह भी शास्त्री जी की दृष्टि में और सरदार पटेल की भाषा में 'अधर्म' है। आश्चर्य है कि इन संकीर्ण धार्मिकों के लिए सहज तथा नैसर्गिक नग्नता 'अधर्म' है पर हमारी सभ्य तथा सुशिक्षित कुलांगनाओं की चेष्टित नग्नता जो उनके अत्यन्त झीने तथा पारदर्शक

परिधानों के अभ्यन्तर से अपनी शारीरिकता को चारों ओर बिखेरती चलती है वह 'धर्म' है। गाँधी तो प्रयोगशील व्यक्ति थे। अनेकों तरह के प्रयोगों के साथ वह सहज नग्नता का प्रयोग भी चलाने लगे थे ताकि आगे चलकर देशवासियों को इस माने में भी नैसर्गिक होने की सलाह दे सकें। इस प्रयोग से उनके ब्रह्मचर्य की कसौटी होने में भी कोई हर्ज नहीं था। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में परम उपलब्धि के लिए एक दिन ब्रह्मचर्य का साधन भी अनिवार्य है। मार्ग अथवा माध्यम का तो अन्तर हो सकता है पर लक्ष्य तो एक ही है।

श्री शास्त्री ने रजनीश के आश्रम की नग्नता का भी उल्लेख किया है। पर क्या वह कामुकता के विस्तार के लिए है ? पहली बात तो यह है कि वैसी नग्नता वहाँ है नहीं, जिसका उल्लेख किया गया है। सहजता ही वहाँ अवश्य होगी। रजनीश की ध्यान शैलियाँ भी जरा भिन्न हैं :—

इसकी प्राथमिक क्रियायें मूलतः साधक—साधिकाओं के भीतर संचित दमनों से मुक्ति पाने के लिए हैं यहाँ नग्नता की अनिवार्यता। नहीं है। पर हाँ निषेध भी नहीं है। इसे उस रूप से पेश करना जैसा श्री शास्त्री ने किया है, असत्य फैलाने-जैसा है।

श्री शास्त्री कहीं कहीं रजनीश को वैसे भी नहीं समझ पाए हैं। उन्होंने एक उदाहरण दिया है कि रजनीश जी का तो कहना है कि पत्थर परमात्मा हो सकता है! क्योंकि पत्थर और परमात्मा में गुण का अन्तर नहीं मात्रा का अन्तर है। यदि इस वाक्य का अर्थ जैसा शास्त्री जी ने अपने लेख में समझाने का प्रयत्न किया है वैसा ही समझे हैं तो उनकी समझ की दाद देनी होगी। रजनीश की अभिव्यक्ति की यही तो गरिमा है। इस छोटे से वाक्य में उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। यह अद्वैतकी गहरी दृष्टि है। शास्त्रीजी इसे न पकड़ पाये हों यह स्वाभाविक है। रजनीश ने कहीं और बहुत काव्यात्मक शैली में कहा है कि 'पत्थर सोया हुआ परमात्मा है और परमात्मा जागा हुआ पत्थर है। "विज्ञान भी आज इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि पत्थर में भी जीवन है, अनुभूति है। तो रजनीश ने क्या गलत कहा कि पत्थर और परमात्मा में गुण का अन्तर नहीं, मात्रा का अन्तर है। हमारी अपनी क्षुद्र समझ की सीमायें ही ब्रह्माण्ड की सीमायें हैं क्या ?

मुझे साफ दिखाई देता है कि रजनीश की वैज्ञानिक आध्यात्मिकता के आधार पर वर्तमान विकृत व्यवस्था में समाज की नव रचना का कार्य संभव नहीं है। रजनीश पूंजीवादी व्यवस्था के पोषक हैं। समाजवाद के पाखण्ड से निश्चय ही पूँजीवाद कहीं अधिक संगत है। तथाकथित मिश्रित अर्थव्यवस्था भी कुछ नेताओं के अहंकार का प्रदर्शन मात्र है। सचमुच ही यह बहुत थोड़ें से बुद्धिजीवियों का षड़यन्त्र है। पूंजीवादी व्यवस्था उससे तथा झूठे समाजवाद से तो अच्छी है। लेकिन जीवन मूल्यों के नाते इसे स्वयं में कल्याणकारी नहीं कहा जा सकता। समाज की विविध विकृतियों का दायित्व मुख्यतया इसी पूँजीवादी व्यवस्था पर आता है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था तथा झूठे समाजवाद ने उसे और कुत्सित कर दिया है। इस दृष्टिकोण से विचार करें तो रजनीश द्वारा पूँजीवाद का पोषण संगत लगता है, हमारी परिस्थितियों के सन्दर्भ में। लेकिन वैसे तो किसी भी दृष्टि से इसे उचित नहीं कहा जा सकता। और यह परम तथ्य है कि सेक्स के क्षेत्र में प्रायः सारी विकृतियाँ पूँजीवाद

की देन हैं। सेक्स का विराट राक्षसी कलेवर भी जिसमें रूप-सज्जा श्रृंगार सब शामिल हैं, वहीं से निकला है। अतः पूँजीवाद को रखकर रजनीश की आध्यात्मिकता पर अमल नहीं हो सकता। ऐसे अमल की कोशिश से सेक्स का स्वरूप और विकृत हो जाएगा।

वैसे रजनीश निसर्गवादी सिद्ध होते हैं। पर उन्होंने गाँधी की जिन शब्दों में भर्त्सना की है और पश्चिम के आक्रमणवाद की प्रशंसा की है उससे उनका निसर्गवाद कट जाता है। गाँधी पूर्णतया निसर्गवादी थे। वह सामाजिक जीवन में सभी क्षेत्रों में इसी की प्रधानता रखना चाहते थे। इसलिए गाँधी का सर्वोदय पूँजीवाद का पोषक नहीं था। उनका पूर्णतया विरोध था। पर उसे वह हिंसा के जरिये से नहीं बदलना चाहते थे। सत्याग्रह के नये शस्त्र को वह सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाना चाहते थे। इसमें हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया तथा ट्रस्टी शिप की परिकल्पना संलग्न हैं। पर अन्त में सत्याग्रह मुख्य था। यह पूरा का पूरा दर्शन निसर्गवाद से जुड़ा हुआ था। पर खेद है, रजनीश ने इस सब की निन्दा की है। जब कि निन्दा का कोई कारण नहीं है। सम्भवतः अद्वैत के तल से वह (रजनीश) इस तरह उलझ गये हैं कि द्वैत के तल के लिए कल्याण की सुसंगति अद्वैत के साथ नहीं बैठा पाते हैं। निश्चय ही यह दुःखपूर्ण आश्चर्य की बात है। पर इससे रजनीश का महत्व पूर्णतया नष्ट नहीं होता। फिर सर्वांगीण-सम्पूर्णता की अपेक्षा किसी से क्यों रखी जाय?

अन्त में यह कहना उचित होगा कि रजनीश का कल्याणकारी पक्ष यथेष्ट सबल है। श्री शास्त्री ने मूल्यांकन करते समय उसकी हर तरह से उपेक्षा की है। इस अन्याय के कारण उनकी आलोचना वस्तुपरक नहीं हो पाई है। ○

आर्यसमाज सभी मत वादों और मनुष्य मनुष्य के मध्य खड़ी दीवारें समाप्त करना चाहता है। सत्य को समझने के लिए सभी सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ें — —सम्पाक

वन्दना के स्वर
वन्दना के स्वर
वन्दना के स्वर
मूल्य १५) : जन ज्ञान साप्ताहिक
के सदस्य बनें और
मुफ्त मंगाएं —संपादक

आगे बढ़ता देश हमारा

रेल यात्रा अधिक आरामदे
और रफ्तार भी तेज

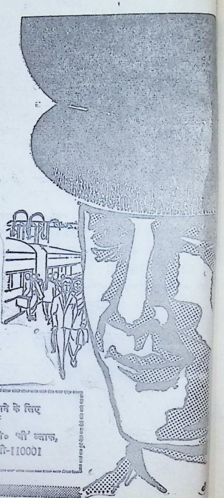

भारतीय रेलें प्रतिदिन 10,000 से अधिक गाड़ियां चलाती हैं। इनमें लम्बी दूरी की यात्रा करने वाले दूसरे दर्जे के यात्रियों की सुविधा के लिए 2,570 शायिका डिब्बे होते हैं। और, सभी जगह, रेल गाड़ियां समय पर चल रही हैं। माल गाड़ियां प्रतिदिन 5.5 लाख टन जरूरी वस्तुएं ला-ले-जा रही हैं।

आप भी रेल सेवा के सुधार में सहायता दे सकते हैं। बेटिकट यात्रा और रेलों के जुड़नारों की चोरी रोकिए।

दृढ़ संकल्प और कड़ी मेहनत से हम और बढ़ेंगे

भारतीय रेल पुस्तिका मुफ्त पाने के लिए
कृपया इस पते पर लिखें
वितरण प्रबन्धक, डी० ए० वी० पी० 'बी' ब्लाक,
कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110001

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार को
औषधियाँ प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।
सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

आँखों के अनेक रोगों के लिए
संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी सुरमा

च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन
शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।
शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी [सहारनपुर]
शाखा कार्यालय—चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम

डिलाईट

वर्षा ... व और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट की अलमारियां और फरनाचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत, टिकाऊ और पक्क र्गा में उपलब्ध हैं। दुकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सब का शाभा बढ़ाता है।

आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें औरआनन्द पावें।

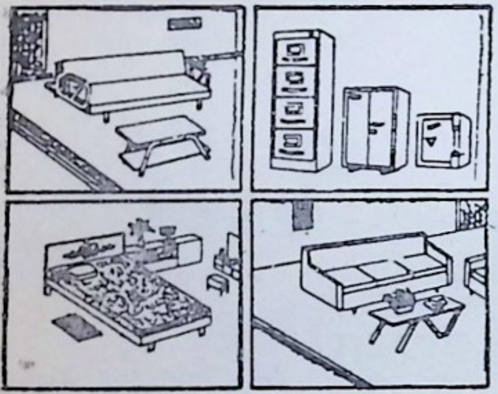

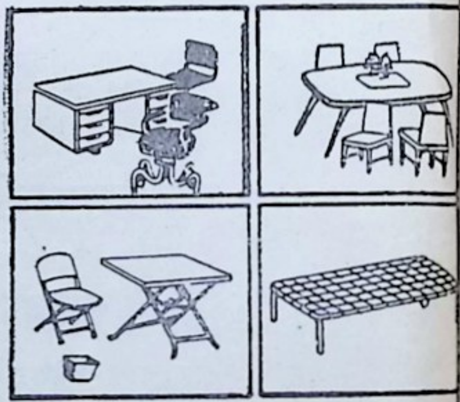

डिलाईट सेफ वर्क्स
कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१. काटेज स्टोर २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जैन सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३० मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)
१०. आदर्श इलैक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैकाओली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

क्या आप
अपने
परिवार
में
प्रभु की
अमर
वाणी
वेद
नहीं
लाएंगे
?

अधिक से अधिक सत्यार्थ-प्रकाश बाँटें

मूल्य : २००) सैकड़ा । २५०) सैकड़ा ।
३००) सैकड़ा । ४५०) सैकड़ा ।

आर्यसमाज शताब्दी के उपलक्ष्य में

सत्यार्थ-प्रकाश

[लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर मंगाएं]

१. प्रचार संस्करण	२३×३६=१६ साइज़	३००) सैंकड़ा
२. राज संस्करण	बढ़िया साइज सजिल्द	३५०) सैंकड़ा
३. उपहार संस्करण	सर्वश्रेष्ठ कागज पर बढ़िया कपड़े की जिल्द	४५०) कड़ासैं
४. शताब्दी संस्करण	१०×१५ इन्च साइज बढ़िया कपड़े की जिल्द	३१)
५. शताब्दी उपहार अनुपम संस्कण	सबसे बढ़िया आर्ट पेपर पर १०० वर्ष में प्रथम बार छपा	६१)

इन रेटों पर कोई संस्था यह ग्रंथ नहीं दे सकती

नई……नई……बिल्कुल नयी

सशक्त भाव भरी श्रद्धापूर्ण भाषायुक्त

महर्षि दयानन्द की जीवनी

१६ चित्र	:	पृष्ठ २१२
तिरंगा बढ़िया कवर	:	मूल्य १)५० : १००)सैंकड़ा।

शीघ्रता कीजिए

भारी संख्या में मंगाकर बांटे

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

—स्व० महात्मा प्रभु आश्रित जी

यज्ञ के दो पंख

ओ३म् विश्वानि देव सविर्दुतरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुवः ॥

यजु ३०-३ ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअपसरसस्तावा नाम ।

इदं स न ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् । ताभ्यः स्वाहा ॥

यजु १८-४२

प्यारे महानुभावो ! यह सब जगत् यज्ञ का साधन है अर्थात् यज्ञ में ही प्रतीक रूप से सम्पूर्ण जगत् भेंट होता है, तब यज्ञ बनता है ।

संसार क्या है ? संसार दो प्रकार का है, जड़ और चेतन । चेतन जगत में मनुष्य और पशु और जड़ जगत् में जल, जंगल, धातु और वनस्पति शामिल हैं ।

पूर्ण यज्ञ केवल मानव ही कर सकता है

अब देखिए ! यज्ञ में घृत, दुग्ध, मधु आदि पदार्थ तो पशुओं के प्रतिनिधि हैं। समिधा जंगल की, अन्न, फल, मेवा, औषधि आदि वनस्पति की—यह चीजें तो भेंट हुई जड़ अग्नि देवताओं की ।

यज्ञ की दूसरी अग्नि है चेतन देव—जिनकी भेंट होती है, दक्षिणा और दान, स्वर्ण, रजत, ताम्र धातु आदि रूप में । चेतन देवों में जीव और परमात्मा हैं । अतः पूर्ण यज्ञ केवल मानव ही कर सकता है अन्य प्राणी नहीं । यज्ञ में जीव यजमान है और वेद ज्ञाता पुरोहित (ऋत्विज) परमात्मा के प्रतिनिधि रूप में विद्यमान होता है । मानो यज्ञ ही एक ऐसा प्रतीक है जिसमें सारा जगत् और जगदीश्वर सम्मिलित होते हैं ।

यज्ञ की पूर्णाहुति कब समझनी चाहिए :—

कुण्ड की अग्नि का यज्ञ तो हो गया । इसकी पूर्णाहुति होगी चेतन अग्नि में आहुति देने से । उस आहुति का नाम है दक्षिणा और दान ।

दक्षिणा और दान का रूप तथा फल :—

इनका रूप क्या है और फल क्या है ? यज्ञ गौ है और दक्षिणा उसको ले जाने वाली अथवा बाँधने वाली रज्जू है । रज्जू जिधर चाहे गौ को ले जाये, पूर्व में, पश्चिम में, उत्तर में, दक्षिण में अथवा अपने ही घर बांध रखे । बिना रज्जू गौ भाग जाती है । ऐसे दक्षिणा और यज्ञ का सम्बन्ध है । शास्त्रकारों ने कहा है :—

दक्षिणा वै यज्ञानां पुरो गवी ।

अर्थात् दक्षिणा यज्ञ को आगे-आगे ले जाती है ।

वेद क्या कहता है :—

इसी ऋग्वेद के जिसका यज्ञ किया गया है, दसवें मण्डल का सूक्त १०७ दक्षिणा का ही है। इस सूक्त में दक्षिणा का फल बताया है :—

(१) दक्षिणा अन्धकार से मुक्त कराने वाली ज्योति है।
(२) दक्षिणा दिव्य पूर्ति करने वाली है।
(३) दक्षिणावान् की समाज में उत्तम स्थिति होती है।
(४) दक्षिणावान् ही समाज का वास्तविक नेता होता है।
(५) दक्षिणा से भौतिक सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है।
(६) दक्षिणावान् का गृहस्थ सुखमय होता है।
(७) दक्षिणावान् की लोग सब प्रकार की सेवा शुश्रुषा करते हैं।
(८) सर्व साधारण की आयु शरीर समाप्ति के साथ समाप्त हो जाती है परन्तु दक्षिणावान् पुरुषों की आयु उसके बाद भी रहती है, वह अपना नाम पीछे भी छोड़ जाते हैं।
(९) जिस कामना से यज्ञ शुरू किया जाता है उसी कामना की पूर्ति इस यज्ञ से होती है। यदि धन संग्रह के लिए यज्ञ किया गया हो तो धन प्राप्ति होगी और यदि दिव्य भावना की पूर्ति के लिये, शिक्षा आदि की हर प्रकार वृद्धि के लिए यज्ञ सम्पादन हुआ हो तो उसी की पूर्ति होगी। यज्ञ का नाम इष्ट कामधुक् है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है :—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो ऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥

गीता ३-१०

अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने प्रजा को रचकर सृष्टि के आदि में कहा कि ऐ जीवो ! इस यज्ञ से तुम बढ़ो। इससे तुम्हारी सर्व प्रकार की शुभ इच्छाएँ पूर्ण होंगी।

यज्ञ की दक्षिणा न देने से क्या होता है वह भी सुन लीजिये :—

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है :

यज्ञोऽदक्षिणोरिष्यति। तस्मादाहुः दातव्यैव यज्ञे दक्षिणा।

अर्थात् दक्षिणा के बिना यज्ञ का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो जाता है अथवा यों समझिये :—

१. दक्षिणा के बिना यज्ञ सूख जाता है जैसे गौ तो बड़ी बलवान् हो परन्तु दूध सूख गया हो। अब खायेगी, देगी कुछ नहीं।
२. भावना रहित यज्ञ संन्यास रोग है। जितना भी खाए फिर भी अन्दर से सूखता ही जाता है।
३. दूसरे की हिंसा अथवा हानि के लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह कुष्ठ रोग के समान है।
४. अपने यज्ञ में जो हिंसा की जाए, वह आकाश बेल के सामान है जो बड़े वृक्ष को सुखा देती है।
५. दीन को दान, लंगर भोजन के बिना यज्ञ, आँख में पीलिया पाण्डु रोग के समान है।

दक्षिणा के बाद दान की बारी है :—

दक्षिण से तो देव पूजा होती है। यह दो प्रकार की है एक द्रव्य रूप से, दूसरा

आत्म कल्याण रूप से और भोजन अन्नदान से संगतिकरण होता है।

यज्ञ का तीसरा अंग है दान :—

जो दीन पराधीनों के बन्धन काटता है। दान=दा+न, दा का अर्थ है तोड़ना 'न' का अर्थ है बन्धन अर्थात् बन्धन का तोड़ना। दान कई प्रकार का है। दान की बड़ी महिमा है अनेक चीजों का दान होता है। मनुष्य के कार्यों में यह एक (अमानत रखी हुई) पूँजी का काम करता है। आप देखते हैं कि संसार में कितने धनी हैं, कोई अरबपति, कोई करोड़पति, कोई लखपति। धन की प्राप्ति तो धन के दान से होती है। कितने दान का कितना फल होता है? यह उत्तर यथार्थ रूप से गिनकर बताना तो मानव की बुद्धि से बाहर है, असंभव है। प्रभु कर्मफल दाता भी है और सर्वान्तिर्यामी और सर्वज्ञ भी। यथार्थ ज्ञान, दान, भाव उचित और अनुचित को वही जानते हैं। हाँ! जो अनुमान क्षेत्रों और वनस्पतियों द्वारा हो सकता है वही समझाया जा सकता है। वह भी सुनने वाला बड़े ध्यान और एकाग्र चित्त होकर यदि सुने! देखने में आता है कि कई अनाज ऐसे हैं जो एक दाना बोने से ५०-६० दाने हो जाते हैं परन्तु उनका मूल्य अधिक मिलता है। एक दाना वह है जो सैकड़ों दाने कर देता है परन्तु उसका मूल्य कम है और शान [शोभा] भी कम है। जैसे गेहूँ का एक दाना का ५०-६० हो जाता है और पक्की ज्वार, बाजरा, चने के एक-एक दाने से सैकड़ों दाने हो जाते हैं, ऐसे ही फल की एक गुठली बोने से सहस्रों दाने हो जाते हैं और कईयों के जैसे बेर, आम, खजूर, जामुन तो सहस्रों हो जाते हैं और संतरा, सेब, अनार आदि के सैकड़ों, फिर वट, पीपल आदि तो लाखों फल और बीज देने वाले हैं।

अब यों समझिये कि जो मनुष्य दान देता है (जरा अधिक सावधान होकर सुनें और पढ़ें)।

१. सद् वस्तु का दान और दाता देता भी सद् पात्र में और सद् बुद्धि से देता है, उसे तो फल मिलता है बटकी तरह,
२. और जो ममुष्य देता तो सद् वस्तु का दान है और देता भी सद् पात्र में, परन्तु देता राजसिक बुद्धि से है तो उसे फल मिलता है आम, बेर, आदि की तरह।
३. और जो मनुष्य देता तो सद् वस्तु का दान है, सद् पात्र भी है, परन्तु तामसिक बुद्धि से देता है तो उसे अनाज की तरह फल मिलता है।
४. अब सावधानी से समझने वाली बात यह है कि इनमें सद् वस्तु की हैसियत और सद् पात्र की स्थिति अथवा दरजा जैसा होता है उसी के अनुसार फल मिलता है और बुद्धि के सद्भावों में (१) बल निर्बलता (२) अपनी इच्छा से दिया अथवा दूसरे की प्रेरणा से अथवा (३) शिष्टाचार मर्यादा के भाव से दिया, इसे प्रभु ही यथार्थता अन्तर्यामी रूप से जान सकते हैं, इसीलिए अनाजों में गेहूँ, ज्वार, मक्की, बाजरा, चने कहें और फलों में आम, बेर, जामुन कहें।

अब प्रश्न होता है कि सद्वस्तु, राजसिक बुद्धि, तामसिक बुद्धि, सद् पात्र यह क्या हैं? क्रमशः सुनियेः—

(१) सद् वस्तु वह है जो सत्य और न्याय से संग्रह की गई हो।
(२) रज बुद्धि का अर्थ है यश के भाव से देना।
(३) तम बुद्धि का अर्थ है अपने व्यवहार बढ़ाने, प्रसिद्ध करने अपना अथवा विश्वास जमाने के लिये व्यावहारिक बुद्धि से देना।

(४) सद् पात्र—जैसे भूमि उत्तम निकृष्ट अथवा साधारण और विशेष होती है ऐसे ही सद् पात्र भी उत्तम मध्यम और अधम कोटि के भी होते हैं। जैसे बीज उत्तम मूल्यवान और श्रेष्ठ प्रकार का होता है ऐसे सद्वस्तु उत्तम, मध्यम, मूल्यवान् अथवा घटिया मूल्य वाली, आवश्यकताओं को पूरा करने अथवा बढ़ा देने वाली होती है।

यह तो कहा सद्वस्तु का सद्पात्र में सत्व, रज तम भाव वुद्धि से दान देना अब दूसरा सुनिये :—

१. वस्तु तो सत् है, देता भी सद् बुद्धि से है परन्तु देता है उसे जो पात्र नहीं। उसका फल क्या होगा ?
२. यदि बुद्धि की भावना इतनी दृढ़ और सत्य है कि पात्र को सुपात्र बनाने के लिये दी गई है तब तो पात्र सुधर जायेगा।
३. यदि दी गई है निर्वल भावों से अथवा शिष्टाचार से तो हानिकारक होगी अपने और संसार के लिये।

अब तीसरा प्रकार भी सुनिये। पहले तो सद् वस्तु का सत् पात्र और कुपात्र को देना सुना अब अशुद्ध वस्तु का सुनिये। यदि अशुद्ध वस्तु सद् बुद्धि से और सत् पात्र में दी जाए तो फल क्या होगा ?

(१) यदि सत् पात्र अग्नि समान है तो अशुद्ध को भी शुद्ध कर देगा। इस दान का फल दाता को सद् बुद्धि के रूप में मिलेगा, धन वस्तु के रूप में नहीं क्योंकि वस्तु उसकी अपनी नहीं थी।

(२) पहली सूरत वाला दान सत् बुद्धि से सत् पात्र में सत् वस्तु को देना ऐसा है मानो प्रभु तक जड़ मूल तक रसाई करना है। इसका फल वंशों तक चला जायेगा। परन्तु जैसे वायु तथा जल के बड़े वेग से वट वृक्ष भी मूल से उखड़ परे जा पड़ता है ऐसे कभी किसी काल में ब्रह्म वेत्ता का अनादर, उसे दुःखी करने से, उसकी हिंसा अथवा हत्या करने से तत्काल उस फल की समाप्ति हो जायेगी। सुतराम जिस विधि, हेतु, कारण अथवा उपाय से जो वस्तु प्राप्त होती है उसके सर्वथा विपरीत कारण बनने पर उसका विनाश अथवा समाप्ति भी हो जाती है।

उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई होगी !

मैं समझता हूँ ऐसी बातें सुनने पर आप में से सबकी अथवा किसी न किसी की यह उत्कट इच्छा अवश्य पैदा हो गई होगी कि वह सद् पात्र कौन-कौन होगा जिसे सद् बुद्धि पूर्ण श्रद्धा से देने पर शीघ्र और उत्तम ही नहीं अपितु सहस्रों गुणा फिर स्थाई फल देने वाला होता है और ऐसा फल कैसे देता है ?

१. सद् पात्र प्रभु स्वयं हैं।
२. उनसे नीचे प्रभु भक्त ब्रह्म निष्ठ जिसने प्रभु को अपने हृदय में २४ घण्टे बिठाया हुआ है।
३. उससे नीचे जो ब्रह्म दान देकर प्रजा को सन्मार्ग पर ले जाता है और पाप वृत्ति से छुड़ाता है।
४. उससे नीचे गुरु, जो ब्रह्म विद्या का दान, ब्रह्म प्राप्ति का दान देता है।
५, उससे नीचे अतिथि जो वेद प्रचार करता और बिना सूचना छापा मारता है. गृहस्थियों के अवगुणों, त्रुटियों को देखकर प्रेम से समझाता है।
६. उससे नीचे वह संस्थायें जो विद्या से देश को उन्नत करतीं और शिष्टाचार

सिखाती, देश व जाति के नाम को उज्जवल बनाती हैं।

७. इससे नीचे याजक लोग जो यज्ञ द्वारा वेद का प्रचार और संसार का कल्याण करते और कराते हैं।

८. उनसे नीचे सत्संग के स्थान, मन्दिर आदि जहाँ असन्तोष सन्तप्त दुःखी और भूले भटके लोगों को कुछ विश्वास मिलता और धर्म कर्म में रुचि होती और पाप पुण्य का ज्ञान होता है।

९. उससे नीचे स्वाध्याय के पुस्तकालय जहाँ निर्धन साधारण स्थिति के लोग जिनको स्वाध्याय में रुचि है, ज्ञान है परन्तु सामर्थ्य नहीं, वहाँ अपने ज्ञान बुद्धि का लाभ लेते हैं और वह अनुसंधान विद्यार्थी जो संसार अथवा देश जाति के लिये अनेक प्रकार की खोज के लिए लगे रहते हैं।

१०. उससे नीचे बेरोजगारी को दूर करने के लिये शिल्पशालाएँ इत्यादि—जिनके द्वारा आत्मा में प्रकाश और धर्म का विकास हो, शरीर की रक्षा भी साथ-साथ हो। यह क्रमशः सद् पात्र हैं।

सहस्रों गुणा और स्थाई फल कैसे मिलता है?

जैसे एक पाव भोजन खाया हुआ रक्त बनकर शरीर की अनेक नाड़ियों में संचार करता है, वह पाव भर भोजन फैल जाता है। वह तब फैलता है जब आत्मा से जीवित शरीर में दिया जाता है। ऐसे ही जो ब्रह्म निष्ठ सत् पात्र व्यक्ति जो एक प्रकार से ब्रह्माण्ड में आत्मा समान है उस एक तक एक के लिये देता है उसकी नाड़ियाँ मानो एक के साथ शून्य ०००००० के समान हैं। जितनी शून्य हैं यदि अकेली हों उनका कोई मूल्य नहीं। यदि वह एक साथ लग जावे तो जितनी शून्य हों उतनी गुणा शक्ति बढ़ जाती है जैसे १०, १००, १०००, १००००, बनते हैं।

देवो वो द्रविणादः पूर्णां विवष्ट्यासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्व मादिद्वो देव ओहते।

ऋ० ७-१६-११

हे मनुष्यो! (वा) तुम्हारा (देवाः) देव इष्ट, भक्ति पात्र परमेश्वर (द्रविणोदा) सब प्रकार के द्रव्यों को देने हारा है। इसलिये (पूर्ण) भरी हुई (आसिचम्) स्रुवा को (विवष्ट) वह कामना करे और स्वीकार करे (व) और (उतसिञ्चध्वं) खूब ऊपर से आहुति भर कर डालो (व) और (उप पृणध्वं) उसको पुनः भरो (आदित) तब शीघ्र ही (वः) तुम्हारे लिये (देवः) वह दिव्य गुण ईश्वर (ओहते) अभिलाषित फल देगा।

जो ईश्वर सब कुछ देता है उसके नाम पर कंजूसी से दान न देकर खुले हाथ दान करना चाहिये। पात्र में दान देने से फल भी शीघ्र प्राप्त होता है।

शत हस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह॥

अथर्व० ३, २४-५॥

(शत हस्त) हे सौ हाथों वाले मनुष्य! [समाहर] तू इकट्ठा कर और (सहस्र हस्त) हे हजारों हाथों वाले! [संकर[तू दान कर, बखेर। इस तरह [कृतस्य] अपने किये हुए की [कार्यस्यच] और किये जाने वाले की [स्फाति] बढ़ती को, फसल को [इह] तू इस संसार में [समावह] ठीक प्रकार से प्राप्त कर।

अर्थात् सौ हाथों से इकट्ठा करो और हजार हाथों से बखेर दो इस मन्त्र में

दान की आवश्यकता और माहात्म्य बताया गया है।

कदाचन स्वरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूयऽन्इनु ते दानं देवस्य पृच्यते।।

यजु० ३-३४

हे इन्द्र ! आप कभी भी हिंसक या मृतवत [सा] गौ के समान दूध न देने हारे नहीं हैं, प्रत्युत दान शील पुरुष को और भी देते हो। हे मघवन ! तुझ देव का दान बराबर ही समीप प्राप्त होता ही रहता है अर्थात् प्रभु दाता को बार-बार समीप आकर फल देते हैं।

शरीर में एक आत्मा है। जैसे आत्मा के पेट में पाव भर भोजन दिया जाता है तो रक्त आदि बनकर शरीर की सब नाड़ियों में पहुँचता है, ऐसे ही ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा का पेट है। सारा ब्रह्माण्ड उसका शरीर है। परमेश्वर स्वयं उस ब्रह्माण्ड का आत्मा है जब हम उस परमेश्वर के लिये देते हैं तो ब्रह्मनिष्ठ रूपी पेट में दिया जाता है और वहाँ से वह शरीर के अर्थात् ब्रह्माण्ड के अवयवों में पहुँच जाता है जैसे शरीर के अन्दर ७२, ७२, १०, २०१ नाड़ियाँ हैं ऐसे ब्रह्माण्ड में अनेकों प्राणी हैं।

दान तो बहुत लोग करते हैं। भय, लज्जा से भी करते हैं और कर्त्तव्य जान कर भी करने वाले हैं परन्तु उन सबमें से वह दानी धीर और गम्भीर समझा जाता है जो दान के मूल तत्व को जानता है। मूल तत्व है गुप्त दान।

गुप्त दान का माहात्म्य

[१] गुप्त दान का बड़ा माहात्म्य है परन्तु यह भी दो प्रकार का होता है। एक जिसे दिया जाये उसे पता रहे अन्य किसी को पता न लगे। दूसरा वह गुप्त दान है जो जिसे दिया जाए उसे भी पता न लगे किसने दिया है।

[२] फिर उनमें भी दानी का भाव दो प्रकार का होता है। एक दानी तो ऐसा है कि उसे अपना किया हुआ दान अपने मन में याद रहता है और यह भी याद रहता है कि कहाँ-कहाँ कितना-कितना दान दिया। बस इतना है कि वह मुख से प्रगट नहीं करता। दूसरा दानी वह है जो मन में भी कभी स्मृति नहीं लाता।

[३] फिर इस भाव में भी दो प्रकार की इच्छा होती है एक तो कर्त्तव्य रूप से बिना फल की इच्छा के और दूसरी होती है कि मुझे ऐसा-ऐसा गुप्त फल मिले।

[४] और फिर इस गुप्त भाव दान के भी दो प्रकार हैं एक तो कभी-कभी आवश्यकतानुसार दान करना, दूसरा सदाव्रत के निरन्तर दान गुप्त करना जैसे शौच पेशाब अनिवार्य होता है।

[५] और दान कई प्रकार का है, अन्नदान, वस्त्र दान, जल दान, फल मेवा दूध तथा अन्य-अन्य खाद्य पदार्थ, गाय, घोड़ा, सोना, चाँदी अन्य धातु, भूमि आदि और लकड़ी का दान।

[६] फिर पात्र, सत् पात्र और बिना भेद के पात्र, कुपात्र, सत् पात्रों में भी किस-किस श्रेणी वालों को मिला। जैसे यज्ञ और लंगर, अन्न क्षेत्र का दान यद्यपि प्रगट रूप है तदपि वह भी गुप्त रूप बन जाता है क्योंकि बिना भेद बन जाता है।

[७] इन गुप्त दानों का फल दो प्रकार से गुप्त मिलता है। एक तो किसी राजा, रईस, जागीरदार बड़े धनी, अमीर के घर पैदा होना कि उसके गर्भ में आने से पहले ही उनके लिये सर्व सुख सामग्री उपस्थित होती है। उसके जन्म लेने पर वह बिना परिश्रम सब वस्तुओं का भोग करता है। और बड़ा होने पर उन सबका स्वामी

बन जाता है और उसे उसके व्यय करने का पूरा अधिकार होता है।

दूसरा मिलता है गुप्त दान से, अनखुट भण्डार, भूमि का गुप्त कोष।

१. स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोहा, सीसा, अभ्रक आदि धातु की खानें।

२. अथवा ऐसे अरण्य जिनमें चन्दन, अगर, तगर आदि देवदारु, गंदा बीरोजा पैदा करने वाले चीड़ के वृक्ष और अन्य-अन्य मूल्यवान् उद्भिज वन आदि जो सदा बनते रहते और अपने आप फैलते रहते हैं, कभी समाप्त होने को नहीं आते।

३. और पत्थर, पत्थरों की उपज, सीमेंट, बालू मिट्टी, कंकर रोड़ो।

४. अनेक प्रकार की मिट्टी, हरी, पीली, लाल, सिर धोने वाली, रेशमी वस्त्र धोने वाली मिट्टी के पर्वत।

५. खार, सोडा पैट्रोल, मिट्टी का तेल आदि-आदि ऐसे गुप्त कोष जो वर्षों तक आय के साधन बने रहे।

६. जलाशय से मोती मूंगे कोड़िया, शंख आदि अनेक प्रकार की वस्तुयें। "आगे क्या-क्या गिनाएँ इनकी गहन गति का, किसी को कोयला की खान, किसी को पत्थर सोना चांदी" किस-किस वस्तु के दान से और किस-किस पात्र का फल मिलता है? प्रभु जाने…। इतना अनुमान लगता है कि सब धातुओं और उपरोक्त वस्तुओं के बनाने में नक्षत्रों (ज्योतिमंडल) की सहायता होती है। कई नक्षत्र ऐसे हैं जो आग्नेय हैं, कई जलीय, कई वायवी और कई पार्थिव हैं…। यह नीलम और हीरे आदि इन्हीं नक्षत्रों के प्रताप से बनते हैं। सब जगह यह धातु नहीं होते। पृथ्वी के विशेष-विशेष विभागों में प्रभू ने विशेष चीजें रखी हैं जैसे उत्तराखण्ड की भूमि में एक आध्यात्मिक चुम्बक का प्रभाव है वहां जिन नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है वह आध्यात्मिक होता है। कहीं दैवी कहीं भौतिक पड़ता है। इन नक्षत्रों में और सूर्य और चन्द्रमा में तीनों प्रकार की शक्तियाँ हैं, हां यज्ञ के सम्बन्ध में तो कहा जा सकता है कि अमुक नक्षत्र में यज्ञ करने से वर्षा होती है अमुक नक्षत्र में सन्तान की वृद्धि होती है। अमुक में धन वृद्धि आदि अथवा पशु वृद्धि अथवा दान और नाम वृद्धि होती है जैसा कि ज्योतिष शास्त्र के आधार पर विद्वान कहते हैं। यज्ञ विद्या का सम्बन्ध अनेक विद्याओं से है। यज्ञ विद्या का ज्ञाता इसे जान सकता है। हम साधारण व्यक्ति उनका लिखा ही बता सकते हैं।

परमात्मा करे! हम यज्ञ, तप, दान के वास्तविक स्वरूप को जानने के योग्य बन आचरण कर सकें ताकि हमारा जीवन, मानव जीवन सफल हो जावे।

वेद भगवान ने तो बताया है—

भूज्यू सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम।

यज्ञ एक पक्षी है जिसके सुन्दर दो पंख हैं। एक है दक्षिणा और दूसरा है दान। इन्हीं दोनों पंखों से यज्ञ रूपी पक्षी उड़ान कर सकता और हमें प्रकाश युक्त लोकों में पहुँचा सकता है। दक्षिणा हो और दान न हो अथवा दान हो दक्षिणा न हो तो यज्ञ लंगड़ा है, उड़ नहीं सकता अर्थात् जिस यज्ञ में दक्षिणा और दान नहीं दी जाती वह यज्ञ सफल नहीं हो सकता।

दक्षिणा का फल—

दक्षिणा और दान का द्रव्य रूप तो आप जानते ही हैं और जान भी गये। इस दक्षिणा दान का फल यह है कि यज्ञ कराने वाले विद्वानों और दीन कंगालों को लाभ तो तुरन्त इस लोक में मिल जाता है और यजमान को कुछ इस लोक में और सारा परलोक में मिलता है।

परन्तु आध्यात्मिक दक्षिणा का फल यजमान को तुरन्त इसी जन्म में

मिल जाता है और जन्मान्तर तक चला जाता है। परिभू [जामिन] और साधन बना रहता है।

आध्यात्मिक दक्षिणा क्या है ?

यजमान अपने ही कल्याण आत्मिकोन्नति के लिए ऐसे व्रत की प्रतिज्ञा करता है जिसके पालन करने से और उन्नत होने से समाज अथवा जाति देश का अपने आप भला होता रहता है। उन व्रतों का नाम यम है।

यम पांच हैं

पातंजली महाराज ने योग दर्शन में लिखा है—

अहिंसा सत्य ऽस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहः यमाः

अर्थात् यम पांच हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

अहिंसा और सत्य का सर्वथा पालन तो देव, संन्यासी, ब्राह्मण और योगी कर कर सकते हैं क्योंकि सत्य का जानना कठिन है और अहिंसा का पालना कठिन है। साधारण लोगों के लिए तो केवल मात्र सत्य बोलना भी कठिन होता है। जाननेमें तो बड़े-बड़े विद्वानों का भी सिर चकरा जाता है। राग द्वेष पक्षपात से रहित फिर विवेकी मनुष्य ही जान सकता है कि किस समय में क्या करना सत्य है।

महात्मा गांधी लिखते हैं कि अहिंसा का जानना तो सुगम है परन्तु पालन करना अति कठिन है हाँ सत्य और अहिंसा का अंश-अंश जाना भी जा सकता है और पाला भी जा सकता है, गृहस्थी और व्यावहारिक मनुष्य के लिये अपरिग्रह और पूर्ण ब्रह्मचर्य भी कठिन सा ही है। मानव अकेला हो, उस पर कोई उत्तरदायित्त्व न हो तो उसे बहुत सुगम है। शेष रह जाता है अस्तेय :—

अस्तेय इसकी पालना गृहस्थी और व्यावहारिक मनुष्य के लिये बहुत आवश्यक है। इसके बिना गृहस्थी की व्यावहारिक कमाई पवित्र कभी नहीं गिनी जा सकती। औरसब पवित्रताओं में बड़ी पवित्रता अर्थ की शास्त्रकारों ने कही है। इस व्रत के न पालन करने से ही संसार में दरिद्र और निर्धनता है।

अस्तेय के अर्थ हैं चोरी न करना :—

चोरी चार प्रकार की है :—

आहार में चोरी, व्यवहार में चोरी।
विचार में चोरी, आचार में चोरी ॥

केवल व्यावहारिक मनुष्य चोरी करते हों, ऐसा नहीं है। कई बड़े-बड़े विद्वान् साधु महात्मा भी इस पाप से नहीं बच सके। महात्मा गांधी तो कहते हैं कि ऐसा कोई नहीं कह सकता कि चोरी करने वाला सत्य को जान सकता है अथवा प्रेम धर्म का पालन कर सकता है। जाने अनजाने हम सभी लोग स्वल्पाधिक इस दोष के दोषी ठहरेंगे।

वह दोष [चोरी] उन्नीस प्रकार का है :—

१—दूसरे की वस्तु बिना पूछे उठा लेना तो प्रत्यक्ष चोरी है परन्तु—

२—बालक माता के बिना पूछे अपने घर से पैसा उठाये अथवा रोटी उठाये, यह दोनों बराबर की चोरी हैं।

३—माता अथवा पिता बच्चों से छिपाकर खा लेवें यह चोरी है।

४—अपने घर, आश्रम, चार दिवारी में पड़ी अथवा बोई, अथवा रक्खी वस्तु को, जो है तो सबके लिये, परन्तु किसी के अधिकार में दे रखी है, उसे भी बिना अधिकार के ले लेना चोरी है।

५—बिना जरूरत कोई वस्तु खा लेना अथवा ओढ़ लेना पहन लेना; ले लेना जो किसी दूसरे के काम आ सकती हो, यह भी चोरी है।

६—मार्ग में लावारिस पड़ी चीज उठा लेना अथवा किसी क्षेत्र से, वाटिका से, चना, मटर, गन्ना, शाक, पुष्प, फल को उखाड़ लेना यह सब चोरी है।

७—गृहस्थी अपने-अपने परिवार, अपने शान मान अपने भावी जन्म के लिए दान आदि के लिये अधिकाधिक संग्रह करता है उसका लोभ बढ़ता है, यह तृष्णा लोभ उससे चोरी कराता है और साधु विरक्त अपने शारीरिक सुख के लिए लोभ करता है यही उसकी चोरी बन जाती है।

८—टैक्स, चुंगी कर, रेल भाड़ा आदि बचाना चोरी है। कम तोलना, कम नापना श्रमी, का काम से जी चुराना यह सब चोरी है।

९—घूंस लेना, धरोहर तथा ऋण न अदा करना चोरी है।

१०—वकीलों और डाक्टरों की कमाई अधिकांश चोरी में गिनी गई है। वकील जो झूठा मुकद्दमा लेता है अपने लोभ के लिये चोरी करता है। डाक्टर लोभ में फीस लेता और दवाई अधिक देता है।

अब मानसिक चोरी भी सुनिये ! जो आत्मा का पतन करने वाली है।

मानसिक चोरी—महात्मा गांधी के शब्दों में :—

११—मन से हमने किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा की अथवा उस पर झूठी दृष्टि डाली कि किसी प्रकार हमको बिना मांगे मिल जावे अथवा संकेत से अथवा अन्य किसी विधि से अथवा संकल्प से कहकर या कहलवाकर या प्रभाव डालकर आचरण करना मानसिक चोरी है जैसे बच्चे किसी के पास अच्छी वस्तु को देखकर मन ही मन में ललचाते हैं अथवा आंख चुराकर देखते, कभी एक ओर कभी दूसरी ओर स्वार्थ को मन में छिपाये खड़े होते कि किसी प्रकार अपने आप वह दे देवे।

१२—उपवास करने वाला अथवा रोजादार मुसलमान किसी को खाता देखकर, खाता नहीं परन्तु अन्दर-अन्दर स्वाद ले रहा है, यह भी चोरी है।

१३—जो भविष्य में प्राप्त होने वाली वस्तुओं के आकाशी भवन अथव दुर्ग निर्माण करता रहता है अथवा संग्रह करके भविष्य में धन के लोभ से दूसरों को पराधीन अथवा भूखा बनाता है। क्षुधा शान्त करने के स्थान पर क्षुधा तीव्र करता है, वह भी चोर ही है। परिणाम यह होगा कि अपना घर लुटा बैठेगा अथवा बाल बच्चों को अथवा दूसरों को भूखा मारेगा। यह लोभ मूल कारण है चोरी का।

१४—एक और विचार की चोरी इससे भी सूक्ष्म है जिसमें धन का लोभ तो नहीं परन्तु मान और नाम की प्रतिष्ठा धेय है। यह एक विष है जो उत्तमविचार अपने मन में तो उत्पन्न न हुआ हो, अपने बुद्धि बल से अथवा मानसिक शक्ति से अथवा अन्तर्ध्यान अवस्था से तो प्राप्त नहीं हुआ हो, तो भी जो अहंकार वश अपने को उस विचार का प्रथम कर्ता बताता है, दूसरे के विचारों को अपने नाम से प्रकट और सिद्ध करता है वह चोरी करता है। यह चोरी अनेक विद्वानों ने भी संसार के इतिहास में की हैं और अब भी जारी है क्योंकि जैसे गृहस्थियों की सम्पत्ति पदार्थ और भूमि आदि है ऐसे विद्वानों की सम्पत्ति उनका आविष्कार, उनका अपने अन्दर ऊँचा विचार, अनुभव गम्य ज्ञान है। गृहस्थी की चोरी-चोरी है। विद्वान के आविष्कार और वस्तु को विचार की चोरी भी चोरी है।

इसलिये अस्तेय व्रत का पालन करने वाले को बहुत नम्र, बहुत विचारशील, बहुत सावधान और बहुत सादगी से रहना चाहिए। वह सिनेमा नहीं देख सकता,

सिगरेट मद्यपान नहीं कर सकता। अपने सुख, यश तथा आराम के लिये बढ़िया से बढ़िया मूल्यवान भेष धारण नहीं कर सकता। उसकी सब वस्तुएँ, खान पान की, पहरान की, मोटर, नौकर, भृत्य आदि तक भी उसके जीवन निर्वाह और व्रत निमित्त ही होते हैं। उदाहरणार्थ—ग्रीष्म ऋतु है, आप कार्यालय का कार्य कर रहे हैं और एक कुली पंखा खींच रहा है यह सब उसका जीवन निर्वाह व्रत है और यदि आप निद्रा कर रहे हैं और कुली पंखा खींच रहा हो तो यह पाप है। हां माता पिता सो रहे हैं, शान्त हैं अथवा वृद्ध हैं और पुत्र अपने आप पंखा कर रहा है, दबा रहा है, तो यह सेवा भक्ति है और वही पुत्र अपने माता पिता को आराम विश्राम देने के लिये कुली नियुक्त कर देता है और आप भी आराम करता है तो यह पाप है और यदि आप भी कार्य कर रहा है अपने और माता पिता के जीवन निर्वाह के लिये और माता पिता असमर्थ और रोगी हैं तब किसी सेवादार को धन देकर सेवा कराता है तो पाप नहीं। काम के अर्थ काम लिया जावे सेवार्थ सेवा ली जावे तो वह सब काम में दाखिल है आराम यश के लिये न हो।

एक व्यावहारिक मनुष्य को व्रत का एक अंग प्रथम पालकर देखना चाहिये जब उसमें दृढ़ हो जाय तो दूसरे अंग का पालन करे। इसी प्रकार व्रत सम्पूर्ण को यदि अपने जीवन काल में पूरा कर लिया जावे तो यह जन्म भी सफल है और आगामी जन्म भी उत्तम से उत्तम मिलेगा। परमात्मन् देव हम सबमें ऐसी शक्ति और मति देवें कि उस व्रतपति प्रभु के व्रत को धारण कर सकें।

१५—जो कृपण है वह तो देश का, जाति का समाज का, परिवार का चोर है ही परन्तु जो अपनी आय का पूरा दशांश नहीं निकालता, वह भी चोरी करता है।

१६—जो देवताओं को आहुति दिये बिना अन्न खाता है, वह देवताओं का चोर है।

१७—जो बली वैश्व देव यज्ञ नहीं करता वह कुत्ता, काका और कीड़ी का चोर है।

१८—जो धनी भृत्य, सेवकों आदि द्वारा धनोपार्जन करता है, यदि वह भूखे मरते हैं, उनके शरीर, रोग तथा पढ़ाई के खर्च पूरे नहीं होते, तो वह भी चोरी करता है।

१९—किसान [कृषिकार] जो बलदों को पूरा चारा नहीं देता, कम देता है तो वह भी चोरी करता है।

५

संसार में जितना भी प्रकाश प्राप्त होता है वह सब सूर्य [सवितः] देव की किरणों द्वारा मिलता है। उसी तरह प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि में जो प्रेरणा, प्रकाश प्राप्त होता है वह सब प्रभु सवितः देव से मिलती है।

जैसे सूर्य का प्रकाश हर क्षण आता है ऐसे ही मनुष्य की बुद्धि में भी प्रभु सवितः देव की प्रेरणा हर क्षण चलती है परन्तुः—

१. वह लोग जो प्रभु से विमुख हैं वह तमोगुणी कहलाते हैं, वह प्रेरणा को समझ नहीं सकते जैसे नेत्रहीन सूर्य के प्रकाश को नहीं देख सकता।

२. जो रजोगुणी है—अर्थात् जो प्रभु स्मरण करते हैं, यज्ञ, जप गायत्री द्वारा प्रभु की आराधना करते हैं परन्तु काम, क्रोध, लोभ ग्रस्त रहते हैं, वह प्रभु प्रेरणा पाकर खो बैठते हैं।

३. जो काम, क्रोध, लोभ को वश में करते और गायत्री, जप और यज्ञ द्वारा प्रभु की उपासना करते है उनकी सात्विक वृत्ति होती है और नाना प्रकार की प्रेरणायें

प्र भु की मिली हुई को समझ सकते हैं क्योंकि यज्ञ, गायत्री और बुद्धि का देवता सवितः है ।

[बृहस्पति ज्ञान विद्याका देवता है क्योंकि ज्ञान और विद्या बुद्धि में प्राप्त होती है इसलिये बृहस्पति को भी बुद्धि का देवता कहा परन्तु बुद्धि की जात का देवता सवितः है ऐसे यज्ञ की जात का देवता सवितः और क्रिया का देवता इन्द्र है]

३

महापुरुषों का आदर्श

यज्ञ दो प्रकार के हैं :—

१. नैत्यिक—साधारण यह नित्य कर्म है ।

२. नैमित्तिक—इसमें दर्श पूर्णमाशी, कामना सिद्धि तथा प्रायश्चिवत् के यज्ञ शामिल हैं ।

यज्ञ प्रत्येक गृहस्थी और वानप्रस्थी कर सकता है परन्तु !

विशेष यज्ञ

विशेष अधिकार और विशेष रूप से और विशेष नियमों के आधीन किये जाते हैं । उन यज्ञों में वही अधिकारी होता है जिसके पास अपने पशु, घृत, दुग्ध के लिए दान दक्षिणा के लिए, प्रजा सहायता और सेवा के लिए चांदी, सोना, अन्न, फल हो ।

३. यज्ञ में वरने योग्य ऋत्विज, यज्ञ विद्या और वेद विद्या के ज्ञाता हों, अहंकार, लोभ और हिंसा रहित वृत्ति, और जितेन्द्रिय और संयमी हों ।

४. वरा हुआ ऋत्विज यजमान का रूप बन सके ।

५. यज्ञ काल में यजमान के सब पापों का ऋत्विज भागीदार होता है ।

१. यज्ञ और गायत्री आराधना में जो काम, क्रोध, लोभ को जितना अपने वश में रखता है, उतना वह सात्विक वृत्ति वाला बनकर बुद्धि में प्रभु प्रेरणा को समझने के योग्य होता है ।

२. योग में तो काम जीतने से नाना प्रकार के तप की प्रेरणाएँ मिलती हैं जो आत्मा से सम्बन्ध रखती है ।

३. क्रोध जीतने पर ब्रह्म ज्ञान का अनुभव, लोभ के जीतने पर त्याग वैराग्य की प्रेरणाएँ मिलती हैं ।

४. यज्ञ, जप करने वाले को :—

काम जीतने पर मानसिक बल, संकल्प बल, संकल्प बल और क्रोध जीतने पर नाना प्रकार के यज्ञों की प्रेरणाएं और लोभ जीतने पर उत्तम और नाना ऐश्वर्य और बड़े भारी यज्ञ की प्रेरणाएँ मिलती हैं ।

४

सवितः देव सबका उत्पादक, पालक पोषक, रक्षक और नियामक है वह अपने उपासक को जो-जो प्रेरणाएँ बुद्धि में प्रदान करता है, उसके सात अर्थ है :—

१. जीवन प्रवाह को न टूटने देने वाला ।

२. गर्भ से छुड़ाने वाला ।

३. कच्चे को पका देने वाला ।

४. भून देने वाला ।

५. आनन्द में जो विघ्न बाधाएँ आती हैं, उनका नाश करने वाला।

६. सब सिद्धियों का देने वाला।

७. स—से सूक्ष्म, व—से शून्य, त—से रक्षा करने वाला अर्थात् [अपने भक्त की तो विशेष रूप से उसके शरणागत कर्म के बदले और साधारण जनता की कर्म फल के रूप में रक्षा करता है। सूक्ष्म से शून्य अवस्था में गुप्त रूप से रक्षा करने वाला जहां मानव की बुद्धि नहीं पहुँच सकती है, न अनुमान लगा सकती है, बिना आश्चर्य के ऐसे प्रभु सवितः देव की उपासना और शरण उपासक को क्यों प्राप्त नहीं होती। क्योंकि काम, क्रोध, लोभ की वृद्धि ही बाधक है।

काम—ऐसा लोटा है जिसके नीचे में छिद्र निकला हुआ है, वह समुन्द्र से भी भरा जाए तो सारे का सारा जल निकाल देता है, लोटे में धारण नहीं हो सकता।

क्रोध—ऐसी छलनी है, जिसमें सहस्रों छिद्र हैं, जल समुद्र से भरने पर भी तुरन्त बिना देर लगे सारे का सारा निकल जाता है।

लोभ—जालीदार छलनी है, भरा हुआ जल भी कुछ देर में निकल जाता है, इसलिये शास्त्रकारों और अनुभवी योगियों ने यही अनुभव किया है। मोह और अहंकार का नाम उाधा में क्यों नहीं आता? काम, क्रोध, लोभ तो वश में करने की वृत्तियाँ हैं, परन्तु मोह और अहंकार नहीं।

परमेश्वर की भक्ति नमस्कार से आरम्भ होती और समर्पण पर समाप्त होती है।

मोह इतना बढ़ाया जावे कि अपने पुत्र, शरीर, परिवार से बढ़ता-बढ़ता संसार के प्राणी मात्र तक पहुँच जावे और अहंकार में प्रभु के अर्पण हो जावे।

५

मोह और अहंकार का स्वरूप

मोह अन्दर से मूर्छित करता है और अहंकार बाहर से मूर्छित करता है इसलिए प्रभु सवितः देव की उपासना और शरण लेने से मोह तो प्रेम में बदलकर अन्दर सारे अन्तःकरण को आनन्दित और सचेत कर देता है और अहंकार अर्पण होने से बाहर की आँखें खुल जाती हैं और बाहर उसे हर जगह प्रभु की आत्मा ही आत्मा नजर आती है।

वह मनुष्य निकृष्ट है जो मनुष्य देह को पाकर कुछ नहीं देता। उपासक जो गायत्री माता की शरण लेता है। उसके हृदय में भूर्भुवः स्वः व्याहृति ज्यों-ज्यों व्याप्त होती जाती है वह निकृष्टता से उत्कृष्टता और श्रेष्ठता की ओर बढ़ने लगता है। पहली अवस्था उसकी त्याग की यह होती है कि मांगने वाला दर पर आता है तो उसे देने में खुशी मानता है। यह मनुष्य के भक्त बनने की पहली और अच्छी अवस्था है।

उससे अच्छी अवस्था यह होती है कि बिना माँगे भी अपने आप देने की इच्छा बनी रहती है इससे उत्तम और श्रेष्ठ अवस्था यह होती है कि वह अपना नियमानुकूल दशांश निकालकर दान करता और अपनी सम्पत्ति की रक्षा करता और बढ़ाता है। इससे श्रेष्ठतर अवस्था यह होती है कि अपने जीवन निर्वाह के लिए अपनी आमदनी से कुछ रखकर बाकी सारी सम्पत्ति प्रभु अर्पण करता है और नाना प्रकार के यज्ञों को करने में लग जाता है और श्रेष्टतम अवस्था इससे ऊपर वह होती है जो देवों की होती है उनका लेने और देने का स्टोर सारे का सारा प्रभु अर्पण होता है वह अपने को न

मालिक मानता है न नौकर, वह अपने आपको ट्रस्टी मानता है यह अवस्थाएं लोभ की वृत्तियों को त्यागने से प्राप्त होती हैं। संसार में कोई वस्तु या व्यक्ति, पद या पदार्थ हो, उसमें अच्छाई और बुराई दोनों होंगे। इसलिए उपासक की बुद्धि प्रभु प्रेरणा से अच्छाई को और अच्छे को वर्णन करती है और बुरे और बुराई को छोड़ती जाती है उपासक में प्रभुदेव अपने वरुण का रूप प्रवेश करते हैं और उसके बाद मनुष्य में आत्म-ज्योति ज्यों जगने लगती है, उसको अपना छोटे से छोटा दोष भी बड़ा नजर आने लगता है और अपना बड़ा गुण भी तुच्छ नजर आता है अपने से अधिक योग्य धर्मात्मा के लिये उसे अति प्रसन्नता होती है और अपने से छोटे के लिये सहानुभूति पदा हो जाती है।

६

गायत्री में भर्गः से आगे देव शब्द है। भक्त में जब आत्म ज्योति जगने लगती है तब उसका दृष्टिकोण मनुष्यों और पशुओं की वृत्ति से बदलकर दिव्य गुण वाला बन जाता है। देव का अर्थ है—प्रकाश, दान और सुख देने वाला। साधारण सुख तो संसार के सब पदार्थों में है और सब जीवों को मिलता है, परन्तु पूर्ण सुख तो पूर्ण ज्ञान में ही मिलता है और केवल मनुष्यों को ही मिल सकता है और पूर्ण सात्विक वृत्ति प्रभु सवितः देव पूर्ण रूप से उपासना के प्रसाद रूप में मिलती है।

अब हम पड़ताल करें हमारे शरीर, तन, मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, आत्मा, आंख, नाक, कान, जिह्वा, वाणी, हाथ, पांव, त्वचा और प्राण में से कौन से ऐसे भाग हैं जो प्रभु की उपासना में पूर्ण रूप से अर्पण हैं। यदि इनमें से कोई नहीं तो और हमारी क्या वस्तु उसकी उपासना में अर्पण है और वह कितनी, ताकि हम अपनी सात्विक, राजसिक और तामसिक वृत्ति का अनुमान लगा सकें कि हममें कौन सी वृत्ति अधिक है।

तामसिक वृत्ति वह है जो दूसरे का अथवा अपना अनिष्ट करती या चाहती है।

राजसिक वृत्ति वह है जो यश और नाम चाहती है, सुख चाहती है।

सात्विक वृत्ति वह है जो सबकी भलाई में निःस्वार्थ प्रभु अर्पण होती है।

७

प्रभु का नाम मंगल कारी है। प्रभु के भक्त का जब भक्ति में प्रवेश होने लगता है तो उसकी निशानी यह है कि उसके हृदय में दूसरों की भलाई की इच्छा पैदा होनी शुरू हो जाती है परन्तु वह भलाई नहीं कर सकता और जो करता भी है उस में उसका स्वार्थ छिपा रहता है। चाहे नाम का हो चाहे काम का—निष्काम भलाई से तो केवल इच्छा ही पैदा होती है और जब भक्ति भक्त में प्रवेश करती है तो भक्त दूसरों की तन, मन, धन से सरल स्वभाव से भलाई करने लग जाता है परन्तु भलाई अपने आप सोच नहीं सकता और जब भले काम करते-करते उस का यश फैल जाता है या फैलने लगता है तो लोगों की, दीन दुःखियों की आशीश और संत महात्माओं की प्रसन्नता और शिव संकल्प आकाश से परमाणु द्वारा उसकी बुद्धि में एक प्रकार का पवित्र सात्विक प्रकाश उत्पन्न हो जाता है या होने लगता है जिससे उसके दिमाग में हर समय या समय-समय पर संसार के हित-जनता के कल्याण की स्कीम सूझने लगती हैं।

शिवरात्रि

प्रीतम तेरे कोल वसदा, ढूंढन किथें जावनां !

आज शिवरात्री का पवित्र दिवस और पर्व है। अर्थ तो इसका कल्याणकारी रात्रि है। कल्याण का इच्छुक तो मनुष्य मात्र है चाहे वह कहीं का भी रहने वाला हो और किसी भी मत का हो। परन्तु इस पर्व को सभी नहीं मनायेंगे। जिन्हें आध्यात्मिक कल्याण (आत्म-कल्याण) की चाह है, वह मनावेंगे। भोग-वादी और नास्तिक लोग और अन्य मत वाले क्रिस्तान आदि जो इन बातों से अनभिज्ञ हैं शिव रात्री नहीं मनायेंगे।

परमेश्वर की पूजा सकल उत्तम सामग्री अथवा प्यारी वस्तु से करनी चाहिए। यज्ञ के लिए उत्तम सात्विक पदार्थ घृत है जो गौ से प्राप्त होता है। अग्निहोत्र को भी उसने आग की पूजा समझा। हिन्दुओं को उत्तम प्यारी वस्तु गौ है परन्तु उसने अज्ञान से गौ हत्या जारी कर दी और धर्म को बदनाम कर दिया।

भारत में हिन्दू जनता इस पर्व को बड़ी श्रद्धा से मनाती थी और मनाती है। यह पर्व हिन्दू जनता के लिए विशेष रूप से पूजा के लिए नियत है। आर्य हिन्दू जाति की शिखा का चिन्ह ही इसीलिए है कि योग द्वारा वह ब्रह्मरन्ध्र में मनोमय और विज्ञानमय कोष का साक्षात् करें।

जैसे दीपावली का त्योहार रात्रि को मनाते हैं लक्ष्मी पूजन के लिए, और शिवरात्रि मनाते हैं रात्रि को शिव पूजन के लिए लक्ष्मी तो शारीरिक सुख का साधन है और शिव पूजन आत्म कल्याण का साधन है परन्तु न तो दीपावली के लक्ष्मी पूजन से हिन्दु लोगों को लक्ष्मी मिली और न शिव पूजन से शान्ति और कल्याण की प्राप्ति हुई।

भ्रांति

उसका कारण भ्रान्ति अथवा भ्रान्त उपासना है। जहां भ्रान्ति होगी वहां शान्ति कभी नहीं होगी और जब तक भ्रान्ति रहेगी, तब तक अशान्ति रहेगी।

संशय

भ्रान्ति बुद्धि में उपजती है। बुद्धि में निश्चय और विश्वास को तोड़ने वाला संशयात्मक ज्ञान है। भ्रान्ति और संशय यह दो पिशाच देवता बुद्धि के शत्रु हैं। हैं तो दोनों बाधायें, संशय तो कुछ करने ही नहीं देता ऐसी दुविधा में डाल देता है कि मनुष्य कर्महीन हो जाता है और जो कभी करता भी है तो उसे बीच में छोड़ना पड़ता है। जरा शुरू किया बस संशय पड़ गया कि (१) ठीक होगा अथवा अशुद्ध कर रहा हूं (२) पूरा भी कर सकूंगा अथवा ऐसे टक्कर मार रहा हूं।

मिथ्या ज्ञान

भ्रान्ति काम करने तो देती है बल्कि लगन से डँटकर कराती है। क्योंकि भ्रान्ति भी एक ज्ञान है जो निश्चय तक पहुँचा देती है, परन्तु वह ज्ञान होता मिथ्या है। यथार्थ नहीं, इसलिये वह ऊपर की बजाय नीचे और पूर्व की बजाय पश्चिम में जा फेंकता है। सफल मनोरथ नहीं होने देता। जन्म-जन्मान्तर के चक्करों में घुमाता है इसलिये भयानक और पछतावा देने वाला होता है।

उदाहरण—जैसे एक मृग पिपासातुर होकर जंगल में दौड़ता है। जल की उसे खोज अधिक है, दूर से बालू मरीचिका को चमकता देख कर जल (आब) समझता है और छलांग पर छलांग लगाता जाता है अन्त में वह सुराब आब तो बन नहीं सकता। चाहे वह कितनी दौड़ दिल से लगाये, सुराब उस पर कैसे तरस खायेगा। और अन्त में मृग तो मर ही जायेगा।

२. किसी निर्धन को धन की खोज थी, प्रभात के प्रकाश में दूर से सीपी चमकती देखी और समझा चांदी है। दौड़ा ! भला सीपी उस पर कैसे दया करती बहुत सफर किया परन्तु सिवाय पछताने रोने से कुछ हाथ न आया।

३. धुंधली प्रभात में कोई वायु सेवन करने जा रहा है। रस्सी पड़ी देखी, और सर्प समझ कर भय हुआ और पीछे को लौट आया और वायु सेवन भी न कर सका।

४. रात्रि के समय एक ठूंठ का वृक्ष दिखाई पड़ा चोर समझ कर डर गया। रक्त भी शुष्क हो गया। यह हाल है भ्रान्ति देवता का।

मनोभूमि

योगाभ्यास में आरूढ़ होने के लिए अथवा इस मार्ग में दृढ़ लग्न होने के लिये मनोभूमि की तैयारी की जरूरत है बसंत ऋतु योगाभ्यास अथवा योग प्रवेश अथवा साधना के लिए उत्तम मानी जाती है। योग मे चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही ध्येय होता है परन्तु जब तक चित्त पहले एकाग्र न हो सके निरोध कैसे किया जा सकता है।

(शेष अगले अंक में पढ़िए)

अगले पृष्ठों में आप

आर्याभिविनय की व्याख्या पढ़ें

आगे बढ़ता देश हमारा
हमारे खेतों के लिए अधिक पानी
हमने कुल सिंचाई क्षमता बढ़ाकर 2.18 करोड़ हेक्टेयर कर दी है— यह लगभग 25 वर्ष पहले की अपेक्षा दूनी है।
शीघ्र ही 50 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की व्यवस्था की जाएगी।
दृढ़ संकल्प और कड़ी मेहनत से हम और बढ़ेंगे
सिंचाई पुस्तिका मुफ्त पाने के लिए इस पते पर लिखें : वितरण प्रबंधक, डी.ए.वी.पी. 'बी' ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110001

स्तुति विषय

ओ३म् पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ।।६।।

अष्टक १, अध्याय १, वर्ग ६, मन्त्र २
ऋग्वेद ———————————————
मंडल १, अनुवाक २, सूक्त ५, मंत्र २

पदच्छेद—पुरूऽतमं । पुरूणां । ईशानं । वार्य्याणाम् । इन्द्रं । सोमे । सचा । सुते ।

पदार्थ

पुरूतमं	दुष्ट स्वभाव वाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले परमेश्वर का
पुरूणाम्	आकाश से लेके पृथिवी पर्यन्त असंख्यात पदार्थों को
ईशानं	रचने में समर्थ परमेश्वर को
वार्य्याणां	अत्युत्तम
इन्द्रं	सकल श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर को
सोमे	उत्पत्ति स्थान
सचा	उस विद्या से प्राप्त होने योग्य पदार्थों के निमित्त कार्य हैं उनको (प्रीतिपूर्वक)
सुते	रस खींचने की क्रिया से प्राप्त वा

अन्वय—हे सखायो विद्वांसो वार्य्याणां पुरूतममीशानं पुरूणामिन्द्रमभि प्रगायत ये सुते सोमे सचाः सन्ति तान् सर्वोपकाराय यथायोग्यमभिप्रगायत।

भावार्थ—हे मित्र विद्वान् लोगो ! अत्यन्त उत्तम आकाश से लेके पृथिवी पर्यन्त असंख्यात पदार्थों को रचने में समर्थ दुष्टस्वभाव वाले जीवों को ग्लानि प्राप्त कराने वाले और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के अत्यन्त उत्तम आकाश से लेके पृथिवी पर्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के मध्य दुष्ट जीवों और जीव-मात्र को सुख-दुःख देने वाले पदार्थों के हेतु अच्छी प्रकार उपदेश करो और जो इस खेंचने की क्रिया से प्राप्त या उस विद्या से प्राप्त होने योग्य पदार्थों के निमित्त कार्य हैं उनको सबके उपकार के लिये यथायोग्य युक्त करो।

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन् ! आप 'पुरूतमम्' अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रु विनाशक हो, तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के 'ईशानम्' स्वामी और उत्पादक हो, 'वर्य्याणाम्' वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो और

'सोमे' उत्पत्ति स्थान संसार आप से **'सुते'** उत्पन्न होने से **'सचा'** प्रीतिपूवक **'इन्द्रम'** परमैश्वर्यवान् आपको **'अभिप्रगायत'** शब्द की अनुवृत्ति यहाँ ऋग्वेद १-१-९-१ से आई है वह मन्त्र यूँ है—**'आ त्वेता विषीदतेन्द्र प्रगायत। सखायः सोम वाहसः** (१-१-९-१ **ऋग्वेद**)। हृदय से परम प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का परमैश्वर्य बढ़ता जाये और परमानन्द को प्राप्त हों ॥९॥

स्वाध्याय—पुरूतमं पुरूणां=अत्युत्तमं परमेश्वरम्—अत्यन्त उत्तम परमेश्वर को परमात्मन् आप **'देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो** (ऋ० १-९४-१३) वह उत्तमों से भी अत्युत्तम हैं, देवों के महादेव हैं, उत्कृष्टतम हैं, सर्वशत्रु विनाशक है, सर्वरोग प्रशामक हैं भवसागर पारोद्धारक हैं।

कश्ती भँवर में छोड़ दूँ लंगर को तोड़ दूँ—और
ना-खुदा जिनका नहीं होता खुदा होता है।

ईशानं—रचने समर्थं परमेश्वरं—रचने में समर्थ ईश्वर को (महर्षि भाष्य) विश्वोत्पादक को, सूर्य-चन्द्र-तारागणादि के रचयिता, जगत् के स्वामी को

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजुर्वेद अध्याय २५, मन्त्र १९)

अर्थात्—(**यः**) जो (**प्राणतः**) प्राणवाले और (**निमिषतः**) अप्राणिरूप (**जगतः**) जगत् का (**महित्वा**) अपने अनन्त महिमा से (**एकइत्**) एक ही (**राजा**) विराजमान राजा (**बभूव**) है (**यः**) जो (**अस्य**) इस (**द्विपदः**) मनुष्यादि और (**चतुष्पदः**) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (**ईशे**) रचना करता है, हम उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (**हविषा**) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (**विधेम**) विशेष भक्ति करें।

वह एक ही सकलैश्वर्य का दाता है, महादानी है, दातार है। संसार के राजा-महाराजा सब उसके दर के भिखारी हैं। इसीलिये उसी से याचना करने का वेद भगवान् ने हमें आदेश दिया—

ओ३म् भूरिदा भूरि देहि नो मादभ्रं भूर्याभर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥

(ऋग्वेद मंडल ४, सूक्त ३२, मन्त्र २०)

अर्थात्—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त प्रभो! आप (**भूरिदा**) बहुत देने वाले, अटूट भण्डार खोल देने वाले हैं, आपके दान की, दात की, बख़्शीश की कोई सीमा नहीं, हमें (**भूरि देहि**) बहुत दो (**मा दभ्रम्**) थोड़ा नहीं, प्रभो! आप तो इन्द्रों के भी महेन्द्र हैं, धन-कुबेरों के भी महाकुबेर हैं; समस्त धनैश्वर्यों के स्वामी हैं। हमने जब आपके दर पर अलख जगा ली, जब आप के सामने झोली फैला दी, तो महा-दाता! हम थोड़ा क्यों माँगें? **सुपूरा स्यात्कुनदिका सुपूरो मूषकांजलिः। सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति**—**अर्थात्**—कुनदी जल्दी पूरी हो जाती है, मूषक की अंजलि शीघ्र भर भाती है, कापुरुष शीघ्र थोड़े से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। पिता हम तो आपसे भर पेट लेंगे बहुत लेंगे जिससे हमारी पूरी तरह संतुष्टि हो सके। किसी कंगले से वास्ता पड़ता तो थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाते। आप से तो अगणित धन की, असीम-

निःसीम सम्पत्ति की याचना करेंगे। हमें आपके भक्तों ने विश्वास दिला रखा है।

देंदा देहि लैंदे थकि पाहि, जुग जुगंतर खाही खाहि (जपुजी)

दाता देता जाता, देता जाता है; वह देता-देता नहीं थकता; परन्तु याचक भिखारी, ग्रहीता थक जाता है, हार जाता है, परिश्रान्त हो जाता है और वह बड़ी मिकदार में, इतनी बृहद् मात्रा में देता है कि भिखारी युगों-युगान्तरों तक खाता-खाता, उपभोग करता-करता थक जाता है, परम सन्तोष को प्राप्त हो जाता है, (**भूरि आभर**) प्रभो! बहुत लाओ हमारे लिए, क्योंकि आपके भण्डार अथाह हैं, कोष अटूट हैं। इसलिए हम थोड़े में सन्तुष्ट क्यों हों। कृपया बहुत सा लाओ न, असीम ऐश्वर्य-राशि प्रदान करो न! हमारी धृष्टता क्षमा हो, हमारे अनुरोध का कारण यह है (**इत् भूरिधा दित्ससि**) आपका स्वभाव ही बहुत देने का है। आपका शील-स्वभाव-व्रत ही यह है कि माँगने वाले याचक को क्षण-भर में निहाल कर देते हो, सन्तुष्ट कर देते हो। ऐसी स्थिति का निर्माण कर देते हो, ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हो कि आपके याचक को किसी अन्य द्वार को खटखटाने की आवश्यकता ही नहीं रहती; क्योंकि आप सर्वोत्तम धन 'सन्तोषधन' से माला-माल कर देते हो और—

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितस्तेतश्च धावताम्॥

(पंचतंत्र—मित्रसम्प्राप्ति दूसरा तंत्र श्लोक १६५)

अर्थात्—सन्तोषामृत से तृप्त शान्तचित्त महानुभावों को जो सुख प्राप्त होता है वह इधर-उधर भटकने वाले धन के लोभी पुरुषों को कहाँ?

ओ३म् भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्।
आ नो भजस्व राधसि॥

(ऋग्वेद मंडल ४, अनुवाक ३२, मंत्र २१)

अर्थात्—हे (**शूर**) महाबलवान् प्रभो! हे (**वृत्रहन्**) अज्ञानान्धकार विनाशक, पाप-पाखण्ड प्रशामकेश्वर! (**हि पुरुत्रा भूरिदाः**) निश्चय ही आप सदा, सर्वदा, सर्वत्र असीम देने वाले हो (**श्रुतः असि**) आप ऐसे सुने गए हैं, श्रुति-पथ से निश्चितरूपेण जाने गए हैं। पूर्वकाल में होनेवाले भक्तों ने, प्राचीन ऋषियों ने अपने अनुभवों के अनन्तर इस प्रकार की घोषणा कर रखी है जो परम्परा से हम तक पहुँची हुई है (**नः**) हमें (**राधसि**) धन में, विविध ऐश्वर्यों में (**आभजस्व**) सब ओर से भागी बनाओ, ताकि नाथ! '**वयं स्याम पतयो रयीणाम्**' हम विद्याधन, बलधन, सामर्थ्यधन, धैर्य-धन, सदाचार-धन, सुबुद्धि-धन, शान्ति-धन, सन्तोष-धन आदि अनेक प्रकार के धनों के स्वामी बन सकें। पिता ऐसी कृपा करो कि हमें प्राप्त होने वाले सब धन स्थायी हों, ताकि हम कभी भी निर्धन न हो सकें।

धन की बड़ी महिमा है। धन के बगैर कोई काम पूर्ण नहीं हो सकता। निर्धन की महत्त्वाकांक्षाएँ उसी तरह व्यर्थ हो जाती हैं जैसे विधवा स्त्री का यौवन। इसीलिये दुकान-दुकान से पैसा माँगने वाले 'सुथरेशाह' गाते फिरते हैं—

पैसा ही रंग रूप है पैसा ही माल है,
पैसा नहीं तो आदमी चर्खे की माल है।

महर्षि दयानन्द ने निम्न शब्दों में दुनियादारों की स्थिति का चित्रण किया है—

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्
यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते

इतना ही नहीं, अपितु

अर्थेन हि विमुक्तस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो इव ॥

अर्थात्—अल्पबुद्धि पुरुष जो धनहीन हो गया है, उसकी सभी क्रियाएँ उसी प्रकार शुष्क हो जाती हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में क्षुद्र नदियाँ । जिसके पास धन है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थास्स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥

अर्थात्—(संसार में) जिसके पास धन है, उसी के मित्र हैं, जिसके पास धन है, उसी के बन्धु-बान्धव हैं; (वास्तव में) जिसके पास धन है वही 'पुरुष' कहलाता है, और जिसके पास धन है वही पण्डित (समझा जाता) है—

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुणाधिकः ॥

अर्थात्— जिसके पल्ले माल है वही शूरवीर है, वही बुद्धिमान् है । पैसे वाला ही महाभाग्यशाली है और पैसे वाला ही अधिक गुणों वाला (समझा जाता) है

वार्य्याणाम्—**वराणां वरणीयानामत्यन्तोत्तमानां मध्ये स्वीकर्तुमर्हम्**—उत्तमोत्तम, वरणयोग्यों में भी 'वर'—श्रेष्ठ (महर्षि भाष्य)

प्रभो आप सबसे उत्तम हैं, उत्कृष्ट हैं वरण योग्य 'वर'—श्रेष्ठ हैं—

वैदिक विवाह में वर— दूल्हा छाती पर हाथ धरकर हौसले से कहता है—

वर्च्चोऽस्मि समानानामुद्यतामिव सूर्यः ।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति ॥ (पार० १, ३८)

अर्थात्—**(उद्यतां)** उदय होने वालों में **(सूर्य इव)** सूर्य की तरह मैं **(समानानां)** तुल्य जनों में **(वर्च्चोऽस्मि)** तेजस्वी हूँ । **(इमन्तम्)** मैं उस पर **(अभितिष्ठामि)** चढ़ बैठता हूँ **(यो मां कश्चित्)** जो मुझको कोई भी **(अभिदासति)** दबाना चाहता है ।

प्रभो ! आपके बराबर, आपके समान और सम-स्तर भी कोई नहीं तो आपसे बड़ा कोई कैसे हो सकता है । अतः यह निर्विवाद है कि आप विश्वभर के वरों में वरिष्ठ हैं, सर्वोत्तम वर हैं ।

ईशानं=**रचने समर्थं परमेश्वरं**— रचने में समर्थ ईश्वर को—(महर्षि भाष्य)

इंद्रं—**सकलैश्वर्यप्रदं परमेश्वरम्**— सकल श्रेष्ठ उत्तम जीवों को सकल ऐश्वर्य के देनेवाले परमेश्वर को—(महर्षि भाष्य)

सोमे सचा सुते—(**सोमे**=**सोतव्ये सर्वस्मिन् पदार्थे**— उत्पत्तिस्थान ।

सचा=**ये समवेताः पदार्थाः सन्ति**— प्रीतिपूर्वक (महर्षि भाष्य)

सुते=उत्पन्नेऽभिषव विद्ययाभिप्राप्ते—रस खींचने की क्रिया से प्राप्त (महर्षि भाष्य)

भक्त जनो ! परमेश्वर समस्त वरणीयों, कमनीयों, पूजार्हों में सर्वोत्कृष्ट है; सर्वोत्तम है, सर्वोपरि है । यह समस्त विश्व जगत् उसी ने रचा है । वह इसका एक-मात्र अवलम्ब है, परमाश्रय है । वही सकलैश्वर्यों का निर्माता है और सब को सदा सब कुछ देने वाला है । प्रभुप्रदत्त विश्व वैभव का यथावत् उपभोग करते हुए अहंकार मत करो, किसी प्रकार के घमण्ड में आकर फूलकर कुप्पा मत बन जाओ, प्रत्युत विनम्र होकर उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की चरण-शरण में झुक जाओ । भाई !
'धनवंता होइ किश्रा को गरबै, जब सभु किछु दीश्रा उसका दरबै—(सुखमनी२-१५)
'धनवंता होइ कर गरबावै, त्रिणि समानि कछु संगि न जावै—(सुखमनी २-१२)
याद रखो, जिसने यह द्रव्य धरोहर रूप में आपको सदुपयोग के लिये दिया है वही इसका रक्षण करने वाला है और सबकी यथोचित कामनाओं को पूर्ण करने वाला है—**उसका ही ले तू आश्रय, उसकी ही तू पकड़ शरण ॥** उस जगन्नियन्ता विश्वेश्वर को कदापि मत भूलो, सदा उसका गुणगान करते रहो; क्योंकि जहाँ वह सांसारिक सौख्य-सामग्रियों का देनेवाला है, वहाँ वही और केवल वही मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्षानन्द का देने वाला भी है ।

Oh devotee ! When thou art in the enjoyment of the plenty of nature's produce as a result of thy endeavours, do then resort to God, the almighty. The master of all power and pelf, the greatest protector and supporter among all the protectors and supporters of the creatures and the Lord and Dispenser of all choice gifts that come within the scope of human desires including the supreme bliss of final emancipation.

पवित्रा वृत्त

हे अत्यन्तोत्तम सुनते !
मोक्षस्वामी भुवनपते !
इंद्राजा को हम वरते !
श्रद्धा प्रेम स्तुति करते ! ९॥

दस

प्रार्थना विषय

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१०॥

अष्टक १, अध्याय ६, वर्ग १५, मन्त्र ५
ऋग्वेद——————————————
मण्डल १, अनुवाक १४, सूक्त ८८, मन्त्र ५

पदच्छेद—तम् । ईशानम् । जगतः । तस्थुषः । पतिम् । धियम्ऽजिन्वम् । अवसे । हूमहे । वयम् । पूषा नः । यथा । वेदसाम् । असत् वृधे । रक्षिता । पायुः । अदब्धः । स्वस्तये ।

पदार्थ

हे विद्वन् !

तम्	उस सृष्टि का प्रकाश करने
ईशानम्	समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करने हारे ईश्वर को
जगतः	जंगम और
तस्थुषः	स्थावरमात्र जगत् के
पतिम्	पालने हारे
धियम्	समस्त पदार्थों का चिन्तनकर्त्ता
जिन्वम्	सुखों से तृप्त करने
अवसे	रक्षा के लिये
हूमहे	आवाहन करते हैं वैसे तू भी कर
वयम्	हम
पूषा	पुष्टिकर्त्ता परमेश्वर
नः	हम लोगों को
यथा	जैसे
वेदसाम्	विद्यादि धनों की
असत्	होवे वैसे तू हो जैसे
वृधे	वृद्धि के लिये
रक्षिता	रक्षा करने वाला
पायुः	सब प्रकार से पालन करने वाला
अदब्धः	अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो
स्वस्तये	सुख के लिये

अन्वय—हे विद्वन् ! यथा पूषा नोऽस्माकं वेदसां वृधे यो रक्षिता स्वस्तयेऽदब्धः पूषा पायुरसत्तथा त्वं भव यथा वयमवसे तं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमीशानं परमात्मानं हूमहे तथैव त्वमप्याह्वय ।

भावार्थ—हे विद्वन् ! जैसे पुष्टि करने वाला परमेश्वर हम लोगों के विद्या आदि धनों की वृद्धि के लिए रक्षा करने वाला, सुख के लिए अहिंसक, सब प्रकार की पुष्टि का दाता और सब प्रकार से पालना करने वाला होवे, वैसे तू हो। जैसे हम रक्षा के लिए उस सृष्टि का प्रकाश करने वाले जंगम और स्थावरमात्र जगत् के पालने हारे, समस्त पदार्थों के चिंतन कर्त्ता, सुखों से तृप्त करने वाले, समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करने हारे ईश्वर को आह्वान करते हैं, वैसे तू भी कर।

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के "**ईशानम्**" रचने वाले हो। "**धियंजिन्वन्**" सर्व विद्यामय, विज्ञानस्वरूप, बुद्धि के प्रकाशित करने वाले, सबको तृप्त करने वाले, प्रीणनीयस्वरूप, "**पूषा**" सबके पोषक हो, उन आपका हम "**नः अवसे**" अपनी रक्षा के लिए "**हूमहे**" आह्वान करते हैं। "**यथा**" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "**अदब्धः रक्षिता**" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप "**स्वस्तये**" हमारी स्वस्थता के लिये "**पायुः**" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो। आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों॥१०॥

स्वाध्यायः—तं **ईशानम्** (**तं=सृष्टिविद्याप्रकाशकम्**)—उस सृष्टि विद्या का प्रकाश करने वाले, **ईशानम्**=सर्वस्याःसृष्टेर्विधारकम्—समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करने हारे ईश्वर को—महर्षि भाष्य)

वह प्रभु सारे चराचर जगत् (**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्** (यजु० ४०—१) यह स्थावर-जंगम संसार उस परमेश्वर का आवास है निवास स्थान है) का रचयिता, उत्पन्न कर्त्ता, स्रष्टा, निर्माता है। वही इसका स्वामी है। (**य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः**—(यजु० २५-११) दो पैर वाले मनुष्य आदियों और चार पैर वाले पशुओं के शरीरों की रचना करता है) वही जगत् का मेमार है, कारीगर है, शिल्पी है, मिस्त्री है और साथ ही है इसे नियम में, नियंत्रण में, मर्यादा में, व्यवस्था में रखने वाला (**स नो बन्धुर्जनिता स विधाता**—यजु० ३२-१०—वह भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कार्यों का पूर्ण करने वाला विधायक है। नियामक है। खेद का विषय है कि ज़माना ही बिगड़ गया है। आज विरले ही भ्राता सुखदायक सिद्ध होते हैं, जैसे पूज्य महात्मा हंसराज जी के ज्येष्ठ भ्राता श्री ला० मुलखराज भल्ला थे। आज के भाई प्रायः वेदमार्ग (स्नेह, वात्सल्य) को छोड़कर ईर्ष्यालु, द्वेषी, अहित-चिन्तक ही देखने में आते हैं। स्वर्गवासी महात्मा देवीचंद जी एम० ए० जिन दिनों डी० ए० वी० हाई स्कूल होशियारपुर में प्रधानाध्यापक थे, सातवीं कक्षा के एक विद्यार्थी के घर से पत्र आया कि तुम्हारा एक भाई पैदा हुआ है। महात्मा जी ने प्रथानुसार उसे बधाई दी। लड़के ने महात्मा जी का धन्यवाद करने के स्थान पर रोनी शक्ल बनाकर कहा—'महाराज ! आप बधाई देकर मेरे जख्मों पर नमक न छिड़किये। आप देख नहीं रहे कि अपने पिता की सारी सम्पत्ति का मैं ही अधिकारी था, आज से आधी का अधिकारी एक और आ गया है। मेरे तो रुपये के आठ आने रह गये हैं और आपको बधाई की सूझ रही है। परन्तु जगन्नियन्ता हमारे

लिए सुखदायी भ्राता है, कल्याणप्रद बन्धु है। **जगतस्तस्थुषस्पतिम्** —(जगतः= जंगमस्य—जंगम और; **तस्थुषः=स्थावरस्य**=स्थावरमात्र जगत् का; **पतिम्**= पालकम्—पालने हारे;—महर्षि भाष्य) वह परमात्मा चर—चलने वाले, अचर—न चलने वाले विश्व का मालिक है, पालक है, स्वामी है। वही अपनी सारी प्रजा के भरण-पोषण की चिन्ता, व्यवस्था, प्रबन्ध करने वाला है **धियम् जिन्वम्** (**धियम्**=सर्व-पदार्थ चिन्तकम्—सर्व पदार्थों का चिन्तन कर्त्ता, **जिन्वम्**=सर्वैः सुखैस्तर्पकम्—सुखों से तृप्त करने वाला (महर्षि भाष्य) वह बुद्धि को प्रकाशित करने वाला, सर्व-विद्यामय, विज्ञानस्वरूप, सबको तृप्त करने वाला, सन्तुष्ट करने वाला है— **सब सत्य-विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।** (आर्य समाज का नियम संख्या १) **अवसे हूमहे वयम्**—(**अवसे**=रक्षणाय—रक्षा के लिये; **हूमहे वयम्**=वयं स्पर्धामहे—हम आवाहन करते हैं—महर्षि भाष्य)

हम अपनी रक्षा के लिये, हिफ़ाजत के लिये, पाप-तापरूपी भयंकर राक्षसों से, चोरों, डाकुओं, तस्करों से अपने परित्राण के लिए उस सर्वरक्षक प्रजापति को आह्वान करते हैं, बुलाते हैं, अपनी टेर उसे सुनाते हैं।

प्रभु का तेज उग्र है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

(कठोपनिषद्)

अर्थात्—सूर्य का प्रकाश फीका पड़ जाता है; वहाँ यह चाँद, तारे और यह विद्युत् भी फीके हैं; फिर इस (भौतिक) अग्नि का तो कोई महत्त्व ही नहीं है। उसी के प्रकाश से समस्त प्रकाशक पदार्थ प्रकाशित होते हैं; यह सब विश्व उसी के प्रकाश से भासमान हो रहा है। परब्रह्म परमेश्वर ! आपकी सत्ता का, बल का शक्ति का हर स्थान पर आतंक छा रहा है जैसा कहा है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः॥ (कठोपनिषद्)

अर्थात्—ब्रह्म के भय से अग्नि में ताप, सूर्य में ज्योति, विद्युत् और वायु में तेज और शक्ति विद्यमान है। पाँचवां मृत्यु भी उसी के भय से—नियमानुसार—विश्व में सर्वत्र चक्कर काटता रहता है।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे—(**पूषा**—पुष्टिकर्त्ता परमेश्वरः—पुष्टि करने वाला परमेश्वर; **नो**=अस्माकम्—हम लोगों के; **यथा**—जैसे; **वेदसाम्**=विद्यादि धनानाम्=विद्यादि धनों की; **वृधे**=वृद्धये—वृद्धि के लिये—म० भाष्य)

वेद में प्रार्थना है—

ओ३म् बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानलुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि॥ (ऋ० ३-५३-१८)

अर्थात्—हे (इन्द्र) सर्वैश्वर्यवान् प्रभो ! (नः तनूषु बलं धेहि) हमारे शरीरों में बल धारण करो क्योंकि **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'** धर्म की साधना बलवान् तन अथवा स्वस्थ शरीर से ही सम्भव है। एक बीमार शरीर, कृश-विग्रह, खऊँ-खऊँ करने

वाला व्यक्ति धर्म की खाक साधना करेगा ? **"नः नलुत्स्"** हमारे साँढों, हमारे बैलों, हमारे घोड़ों, हमारी गौओं को बल दो **'बलं तोकाय तनयाय'** हमारे पुत्रों-पौत्रों को बल दो क्योंकि **'पुत्तों गण्ढ पवे संसार'** संसार का प्रचलन सन्तानों से ही होता है। **'जीवसे'** सुखपूर्वक जीने के लिये **'त्वं हि बलदा असि'** आप ही बल प्रदाता हैं। प्रभो! हमें सब प्रकार का बल प्रदान होगा तभी तो हम सुखी जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यह निश्चित बात है कि जिसका यह संसार बन जाय वही भावी जन्म सुधारने के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। आप सबके पोषक हैं; आपकी दिव्य प्रकृति, आपका शील आपका स्वभाव हमारी वृद्धि के लिये आकर्षक है, रुचिकर है, दिलचस्प है।

रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये — (**रक्षिता**=रक्षा करने वाला, **पायुः**=पालन-**कर्त्ता**—सब प्रकार से पालना करने वाला, **अदब्धः**=**अहिंसता**=अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो; **स्वस्तये**=**सुखाय** - सुख के लिये—महर्षिभाष्य) प्रभो! हमारी सारी विद्या, हमारे सम्पूर्ण ज्ञान और हमारी समूची संस्कृति की बढ़ोतरी के लिये, हमारी असत्य से रक्षा करने के लिए, हमारी भलाई के लिये, हमारे कल्याण के लिये

ओ३म् इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम् ॥
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणान् इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥

(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ४९, मन्त्र १०)

अर्थात्—सकलैश्वर्यवान् परमेश्वर द्यु-लोक, पृथिवीलोक, जलों (नदी-नालों, सागर आदि) पर्वतों, वृद्धिवालों, मेधावियों—सब का शासन कर्त्ता है। अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति (योग) और प्राप्त वस्तुओं के संरक्षण (क्षेम) के लिये वही इन्द्र प्रभु प्रार्थना करने के योग्य है।

हे सर्वोत्कृष्ट, सबके स्वामी परमात्मन्! आप ही चराचर जगत् के रचयिता हैं आप कृपा करके **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** प्रकाशित करने वाले हैं, प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं। आप ही समस्त विद्याओं और सम्पूर्ण ज्ञानों-विज्ञानों के आदि मूल हैं, उद्गम स्थान हैं; आप ही सबके रक्षक हैं। सबका सर्वदा कल्याण करना आपका शील-स्वभाव ही है। लोक-परलोक में अपने कल्याण के उद्देश्य से, अपनी रक्षार्थ, अपनी चतुर्मुखी उन्नति के अभिप्राय से हम आपका आह्वान करते हैं, आर्त्त स्वर से आपको पुकारते हैं। आप अपनी स्वाभाविक उदारता से और कृपा कटाक्ष से हमें सब प्रकार के कष्टों-क्लेशों, दुःखों-कष्टों, पापों-सन्तापों अथवा रोगों-व्याधियों और पापों के दुष्परिणामों से सदा सर्वदा बचाते रहिये। **'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव'।** (यजु० ३०-३) अर्थात् हे सब जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कराइये। आप निरालस सबकी रक्षा करने को सर्वदा उद्यत रहते हो, कृपया हमारी ये सब कामनाएँ पूर्ण कीजिये, प्रार्थनाएँ स्वीकार कीजिये। इसीलिये हम आपका आह्वान करते हैं ताकि हम हर प्रकार की उन्नति करके आनन्द के भागी बनें।

'पतिम्' Oh Overlord of all, Thou alone art **'ईशानम्'** The

maker and controller of the universe composed of 'जगतः' the animate and moving as well as 'तस्थुषः' inanimate and immovable beings. Thou art 'धियं जिन्वं' the Enlightener of our intellect, as the distinctive feature of Thy being is the continual possession of all true knowledge. Thy divine nature is charming to our understanding. 'वयम्' we 'हूमहे' invoke upon Thee 'तम्' that just Thou art 'अदब्धः' an ever-vigilant 'रक्षिता' protector 'वेदसाम्' of our learning, culture and all other types of possession and 'वृधे' their advancement, so mayest Thou condescend 'पायुः असत्' to be our Saviour from all harm 'स्वस्तये' that we may advance in help corporal, mental and spiritual, and that being thus under Thy protection we may ever be progressing in good works and attain Bliss-

गीतिका छन्द

हे दयामय चर अचर के, एक स्वामी आप हैं।
धीपते रक्षा करो, बस पूर्ण काव्य कलाप हैं।।
स्वस्ति उन्नति के लिए हों, दूर जो संताप हैं।
ज्ञान, धन, साधन मिलें, यदि ईश आप दुराप हैं।।१०।।

तात्पर्य—(**वयम्**) हम लोग (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिये (**तम्**) उस (**ईशानम् ईश्वर**) को जो (**जगतः तस्थुषः पतिम्**) जंगम और स्थावर का स्वामी (**धियम् जिन्वम्**) बुद्धि का प्रेरक है उसकी (**हूमहे**) हम प्रार्थना करते हैं वह (**पूषा**) पोषक ईश्वर (**नः**) हमारे (**वेदसाम्वृधे**) धनों की वृद्धि के लिये (**असत्**) होवे तथा (**अदब्धः**) किसी से न दबने वाला (**स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिये (**रक्षिता**) रक्षक और (**पायुः**) पालक (**असत्**) होवे।

(श्री स्वामी अच्युतानन्द जी रचित ऋग्वेद शतक मन्त्र ९३)

ग्यारह

स्तुति विषय

ओ३म् अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥११॥

अष्टक १, अध्याय २, वर्ग ७, मन्त्र १
ऋग्वेद———————————————
मंडल १, अनुवाक ५, सूक्त २२, मन्त्र १६

पदच्छेद—अतः। देवाः। अवन्तु। नः। यतः। विष्णुः विऽचक्रमे। पृथिव्याः। सप्त। धामभिः।

पदार्थ

अतः	इसी से
देवाः	विद्वान् लोग
अवन्तु	उक्त लोकों की विद्या को समझते वा प्राप्त करते हुए हमारी रक्षा करते रहें
नः	हम लोगों का
यतः	जिस नित्य कारण से
विष्णुः	चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर
विचक्रमे	रचता है
पृथिव्याः	पृथिवी से लेकर
सप्त	सात—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्यन्त लोकों को
धामभिः	जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ

अन्वय—अतः अस्मात्कारणात् देवाः विद्वांसोऽन्यादयो वा अवन्तु अवगमयन्ति प्रापयन्ति वा नः अस्मान् यतः यस्मात् अनादिकारणात् विष्णुः विवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् सपरमेश्वरः विचक्रमे विविधतया रचितवान् पृथिव्याः पृथिवीमारभ्य सप्त सप्त—१. पृथिवी, २. जल, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. विराट्, ६. परमाणु, ७. प्रकृति आख्यैः धामभिः दधति सर्वाणि वस्तूनि येषु तैः सह।

भावार्थ—जिस सदा वर्तमान नित्य कारण से चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर पृथिवी से लेकर सात अर्थात् पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्यन्त सब पदार्थों को धारण करने वाले लोकों को उनके साथ रचता है। उसी को विद्वान् लोग हम लोगों को उक्त लोकों की विद्या के समझाते वा प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते हैं।

व्याख्यान—हे **'देवाः'** विद्वानो ! **'विष्णु'** सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों के पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये

पृथिवी से लेकर '**सप्त**' सप्तविध '**धामभिः**' धाम अर्थात् ऊँचे-नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया, तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत वेद को भी बनाया। उन लोकों के साथ वर्तमान व्यापक ईश्वर ने '**यतः**' जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है। '**अतः**' (सामर्थ्यात्) उसी सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करो। हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो। कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को '**विचक्रमे**' विविध प्रकार से रचा है। उसकी नित्य भक्ति करो ॥११॥

स्वाध्याय—**देवाः**—(**देवाः**—**विद्वासः**—विद्वानो ! (महर्षि भाष्य) दिव्य शक्ति वालो ! दिव्य ज्ञान और दिव्य कर्म वालो ! सांसारिक, व्यावहारिक, आध्यात्मिक, पारमार्थिक आदि विषयों में पारंगत और विश्व भर को ज्ञान, विज्ञान, गणित, रेखागणित, ज्योतिष, व्याकरण, भूगोल, खगोल आदि विद्याओं की शिक्षा देने वाले दिव्य गुण सम्पन्न महापुरुषो !

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंश सम्भवम् ॥ (गीता १०-४१)

अर्थात्—भगवान् कृष्ण ने कहा—'हे अर्जुन ! जो भी विभूति युक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त और शक्तियुक्त, कान्तियुक्त वस्तु है, उस-उस को तू परमात्मा के तेज के अंश से उत्पन्न हुई जान, क्योंकि समस्त विभूतियों की महान् निधि, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का अटुट भण्डार, सारी शक्तियों का आदि स्रोत, अलौकिक कांतियों का उद्गम स्थान, सारे सौन्दर्य की असीम राशि, महान्तम आकर्षणों का कमनीय केन्द्र वह परम पिता परमात्मा ही है '**देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थाने भवतीति वा**' विद्वान् सज्जन निरक्षर, अपढ़, विद्या-विहीन मूर्खों के विद्या-ज्ञानाभाव को दूर करके उन्हें पण्डित बनाते हैं, शिष्यों की बुद्धि में निखार पैदा करते हैं, उन्हें विद्वानों की पंक्ति में बैठने और ज्ञानियों की श्रेणी में परिगणित किये जाने के योग्य बनाते हैं। जहाँ निबड़ अन्धकार व्याप्त हो रहा था, वहाँ ज्योति फैलाते हैं और ज्ञानालोक द्वारा समस्त तिमिर को दूर भगाते हैं। इसलिये इस मन्त्र में सबसे पूर्व उक्त गुण सम्पन्न महात्माओं को सम्बोधित किया गया है।

अवन्तु नः—(**अवन्तु**=**अवगमयन्ति प्रापयन्ति वा**—उक्त लोगों की विद्या को समझते वा प्राप्त करते हुए हमारी रक्षा करते रहें; **नः**=**अस्मान्**—हम लोगों की—महर्षि भाष्य) हे विद्वानो ! आप भी हमारी उसी प्रकार रक्षा करें। परन्तु रक्षा कैसे की जाय ? वेद विद्या के निरन्तर प्रचार और प्रसार द्वारा और उस प्रभु के सम्बन्ध में हमारे मन—मस्तिष्क के अन्दर प्रभु का ज्ञान दृढ़ रूप से अंकित करके।

अतः यतः--(**अतः**=**अस्मात् कारणात्**—इसी से; **यतः**=**यस्मात् अनादि कारणात्**—जिस सदा वर्तमान नित्य कारण से—महर्षि भाष्य) विश्वकर्मा प्रभु ने जिस शक्ति द्वारा जगत् को रचा, इसे धारण किया, उसीसे वह सदा हमारी रक्षा करता है।

विष्णुः विचक्रमे (**विष्णुः**=**येवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स परमेश्वरः**—चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर; **विचक्रमे**=**विविधतया रचितवान्**—विविध प्रकार से रचता है—महर्षि भाष्य)।

ओ३म् विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।। (ऋग्वेद १-२२-१९)

अर्थात्—'**विष्णोः**' सर्वव्यापक जगत्पति परमात्मा के '**कर्माणि**' कर्मों को '**पश्यत**' देखो (**यतः**) जिससे '**व्रतानि**' नियमों को '**पस्पशे**' मनुष्य प्राप्त होता है, '**इन्द्रस्य**' इन्द्रियों के स्वामी जीव का '**युज्यः**' वही योग्य '**सखा**' मित्र हैं। सारांश यह कि सांसारिक मित्र तो प्रायः स्वार्थ बन्धु होते हैं; मतलब के साथी होते हैं; अपना काम निकल जाने पर माथे पर आँखें रख लेते हैं। उन ही के सम्बन्ध में कहा भी है **यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः** (पंचतन्त्र) जिसके पास धन है या जिसका कोई अर्थ पूरा कर सकता है उसी के मित्र हैं और उसी के बन्धु-बांधव। धन समाप्त होते ही सब छोड़ जाते हैं; जैसे फलदार वृक्ष पर तो अनेक जातियों के सैंकड़ों पक्षी चहचहाते नजर आते हैं; अपनी मीठी-मीठी बोलियों से उक्त वृक्ष का आकर्षण बढ़ाते हैं पर फल समाप्त होते ही उस वृक्ष पर कोई पक्षी बीट करने भी नहीं आता। जगत् के रिश्ते-नाते, मित्र-बन्धु प्रायः ऐसे ही नजर आते हैं। 'पहाड़िये मित्र किसके, भात खाया और खिसके' वाली लोकोक्ति सत्य ही तो है। इस दुनिया के मित्रों का अनुभव करके ही श्री गुरु तेगबहादुर जी ने चेतावनी देते हुए कहा—

प्रीतम जानि लेहु मन माहीं ।
अपने सुख सिउ सब जग फाधिओ को काहू का नाहीं ।
घर की नारि बहुत हित जा सिउ सदा रहत उर लागी ।।
जब ही हंस तजी इह काइआ 'प्रेत-प्रेत' कर भागी ।
इह जग को बिउहार बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ ।।
अन्त समे नानक बिनु हरि नू कोऊ काम न आइओ ।।

कोई सांसारिक मित्र अन्त तक साथ नहीं देता; परन्तु वह परमात्मा ही इस जीव का सच्चा मित्र है। जो मुसीबत में आड़े आये वही मित्र है—

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।

अर्थात्—कचहरी में और श्मशान में जो साथ निभाये, जो बाँह पकड़े वही सच्चा बन्धु है। इस दृष्टि से इस जीव का '**युज्यः सखा**' योग्य मित्र परमात्मा ही है। **पृथिव्याः सप्त धामभिः**—(**पृथिव्याः**=पृथिवी**मारभ्य**—पृथिवी से लेकर; **सप्त-धामभिः**=**सप्त** (**पृथिवी**, जल, अग्नि, वायु, **विराट्**, **परमाणु-प्रकृति आख्यैः पदार्थैः**—सात—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्यन्त लोकों को; **धामभिः**=**दधाति सर्वाणि वस्तूनि येषु तैः सह**—जो सब पदार्थों को धारण करते हैं; उनके साथ—(महर्षि भाष्य)।

पृथिवी आदि सात ऊँचे-नीचे स्थित लोकों—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट् (अन्तरिक्ष=आकाश) मूल परमाणु और आदि मूल प्रकृति की और सात छन्दों—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—में वेद की अथवा रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि लोक-लोकान्तरों की रचना उसी ईश्वर ने की है। या यूँ कहिये कि जिस सर्वव्यापक विष्णु ने अपनी शक्ति से पृथिवी आदि सात ऊँचे-नीचे स्थित धामों को बनाया; जिसने रवि, चन्द्र आदि सप्त लोकों की रचना जिस सामर्थ्य से की; विशाल वैदिक वाङ्मय को गायत्री

आदि सप्त छन्दों में निबद्ध किया, हे विद्वानो ! जिस प्रकार वह व्यापन-शील ब्रह्म सब सृष्टि की रक्षा करता है और सब का पूज्य है, उसी प्रकार आप हमारी सर्वथा रक्षा करें।

'देवा:' Oh ye wise, know ye that 'विष्णु:' the Omnipotent and Omnipresent God has made 'सप्त' seven types of worlds comprising 'पृथिव्या:' the earth and others 'धामभिः' with high and low places for the habitation of all creatures, and He has composed also the Vedic Lore in the seven metres including Gayatri etc. 'तत:' that power of His 'यत:' with which God has created the universe and in which He is ever present; He utilises also in supporting and protecting us. Oh ye wise 'अवन्तु' may ye protect 'न:' us by (disseminating amongst us) the (true Vedic) teachings of that Almighty God. Well, know Him from 'विचक्रमे' this multifarious universe He has created. Him alone should all adore.

अमृतकुण्डली छन्द

हे विद्वानो ! विश्व विभुका निसर्ग है।
कर्म फलार्थी, जीव हित योनि वर्ग है॥
सप्तलोकादि भूधाम स्वर्ग है।
वेदविद्यादि, सभी में भव्य भर्ग है॥
हे देवगण ! जिस शक्ति से प्रभु ने रचा संसार है।
उस शक्ति से रक्षा हमारी का वही आधार है॥११॥

प्रार्थना विषय

ओ३म् पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्ते रराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१२॥

ऋग्वेद अष्टक १, अध्याय ३, वर्ग १०, मन्त्र ५ / मण्डल १, अनुवाक ८, सूक्त ३६, मन्त्र १५

पदच्छेद—पाहि । नः अग्ने । रक्षसः । पाहि । धूर्त्तेः । अराव्णः । पाहि । रीषतः । उत । वा । जिघांसतः बृहद्भानो ऽ इति बृहत् भानो । यविष्ठ्य ।

पदार्थः

बृहद्भानो	बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य के तेज वाले
नः	हमको
अग्नेः	सबसे मुख्य सबकी रक्षा करने वाले आप
रक्षसः	महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से
पाहि	(रक्षा करो)
धूर्त्तेः	कपटी अधर्मी
अराव्णः	दान धर्म रहित कृपण
पाहि	बचाइये
रीषतः	सबको दुःख देने वाले सिंह आदि दुष्ट जीव और दुष्टाचारी मनुष्य से हमको पृथक् रखिये
उत वा	और भी
जिघांसतो	मार देने की इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिये
यविष्ठ्य	अति तरुणावस्था युक्त

अन्वयः—हे बृहद्भानो यविष्ठ्याग्ने सभाध्यक्ष महाराज त्वं धूर्त्तेरराव्णः, रक्षसः नः पाहि रीषतः पापाचाराज्जनात् पाहि उत वा जिघांसतः पाहि ।

भावार्थः—हे बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य के तेज वाले अति तरुणावस्था वाले (अग्निः) सबसे मुख्य सबकी रक्षा करने वाले मुख्य सभाध्यक्ष महाराज, आप कपटी अधर्मी दान-धर्मरहित कृपण महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से हमको बचाइये । सबको दुःख देने वाले व्याघ्रादि दुष्ट जीव और दुराचारी मनुष्य से हमको पृथक् रखिये और मारने की इच्छा करने वाले शत्रु से हमारी रक्षा कीजिये ।

व्याख्यान—हे सर्वज्ञ सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्ट

स्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" रक्षा करो "धूर्त्तेरराव्णः" कृपण और धूर्त्त मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो। जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज ! उन सबसे हमारी रक्षा करो ॥१२॥

स्वाध्याय—बृहद्भानो—बृहन्ति भानवो विद्याद्यैश्वर्यतेजांसि यस्य तत्सम्बुद्धौ—बड़े-बड़े विद्यादि ऐश्वर्य वाले—महर्षि भाष्य)

हे सबसे बड़े तेजस्विन् ! तेजों के उत्पन्न करने वाले ! आप जिसके भय से नियमबद्ध व्यवस्था में भुवन-भास्कर उदय और अस्त होता हुआ वनस्पतियों को, अन्नों को, औषधियों को पुष्ट करता है, पकाता है और स्वयं की दीप्ति से नभोमण्डल तथा भू-मण्डल को प्रकाशित करता है।

ओ३म् वण्महां असि सूर्य वडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ असि ॥

(अथर्व० कांड २०, सूक्त ५८, मंत्र ३)

अर्थात्—(**सूर्य**) हे चराचर के प्रेरक परमात्मन् ! आप (**वट्**) सत्य (**महान्**) बड़े (**असि**) हैं। (**आदित्य**) हे अविनाशी परमात्मन् ? आप (**वट्**) ठीक-ठीक (**महान्**) पूजनीय (**असि**) हैं (**महता ते**) आप बड़ों की (**महिमा**) प्रभाव (**महान्**) बड़ा है। (**आदित्य**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! (**त्वं महान् असि**) आप बड़ों से भी बड़े हैं। **अग्नेः यविष्ठ्य**—(**अग्नेः=सर्वाग्रणी सर्वाभिरक्षकः**—सबसे मुख्य, सबकी रक्षा करने वाले आप; **यविष्ठ्य=अतितरुणावस्था युक्त**—अत्यन्त तरुणावस्था युक्त महर्षि भाष्य) प्रकाशस्वरूप, सबको प्रकाशित करने वाले सबके नेता, अग्रणी देव ! सत्पुरुषों, निरपराधों के शत्रुओं को नष्ट करने वाले (यविष्ठ्य) महावलिन्, शक्तिशाली, शक्तियों के भंडार ! आपकी आज्ञा में वायु चलता है और प्राण-धारियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान नाम के पाँच प्राण और नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल और धनजय नाम के पाँच उपप्राण प्रदान करता है। **रक्षसः धूर्त्तः अराव्णः जिघांसतो**—(**रक्षसः=महादुष्टात् मनुष्यात्**—महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से; **धूर्त्तः=विश्वासघातिनः**—कपटी, अधर्मी; **अराव्णः=राति ददाति स रावा न रावा अरावा तस्मात्, कृपणात् अदानशीलात्**—दान धर्म रहित कृपण, **जिघांसतो=हिंसायां रताः, प्रवृत्ताः इच्छुका हन्तुमिच्छतः शत्रोः**—मारने की इच्छा करने वाले, **रीषतः=हिंसकात्, व्याघ्रादेः प्राणिनः**—सबको दुःख देने वाले दुष्ट जीवों, शत्रु से, दुष्टाचारी मनुष्य से; **उत वा=अपि पक्षान्त रेखा**—और भी; **पाहि=रक्ष**—रक्षा करो—महर्षि भाष्य) हे प्रभु ! राक्षसों, हिंसकों, दुर्गुणों में व्यस्त मनुष्यों, दुराचारियों, जन-समूहों के अहित-चिन्तकों, मानवरूप-धारी दानवों से हमारी रक्षा करो। धूर्त्तों, धोखेबाजों, कंजूस-मक्खी-चूसों से भी हमें बचाओ।

ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः ॥

(ऋग्वेद मंडल ९, अनुवाक ६३, मंत्र ५)

अर्थात्—(**इन्द्रं**) परमेश्वर की (**वर्धन्तः**) बड़ाई करते हुए (**अप्तुरः**) श्रेष्ठ कर्म करते हुए (**विश्वम्**) सबको (**आर्यम्**) वेदानुकूल कर्म करने वाला आर्य (**कृण्वन्तः**) बनाते हुए (**अराव्णः**) कृपण पापियों को (**अपघ्नन्तः**) परे हटाते हुए, चले चलो। भगवान् ने इस मन्त्र द्वारा हमें उपदेश दिया है कि मैं जो सकलैश्वर्य प्रदाता इन्द्र हूँ मेरा गुणानुवाद

गाते हुए, बड़ाई करते हुए, यशोगान करते हुए, श्रेष्ठ कर्मों का सदा अनुष्ठान करते हुए, यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हुए, सारे जगत् को आर्य, श्रेष्ठ सुकर्मी, वेदानुकूल आचरण करने वाले भगवद्भक्त बनाते हुए, कृपण—कंजूस पापियों को परे हटाते हुए, स्वयं सन्मार्गारूढ़ होकर आगे बढ़ते चलो। महात्मा—आर्य और दुरात्मा - दस्यु का लक्षण करते हुए कहा है—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्॥

अर्थात्—मन से जो सोचते हैं, वही जिह्वा से बोलते हैं और वही कर्म द्वारा करते हैं, ऐसे मनसा, वाचा, कर्मणा एक-से रहने वाले सज्जन महात्मा और जो मन से सोचते कुछ और हैं, जिह्वा से बोलते कुछ और हैं और तदनन्तर कर्मणा कुछ और ही करतूत कर गुजरते हैं वे दुरात्मा-दुष्ट होते हैं।

वेद ने उन लोगों को धूर्त्त नाम से सम्बोधित किया है, जो धारा ४२० की प्रतिमूर्ति बने रहते हैं। उदाहरणार्थ वे राजनीतिज्ञ (Politicians) जिन्हें परमात्मा ने वाणी हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति के लिये प्रदान की है; परन्तु वे अपने विचारों को इस जिह्वा के उपयोग से अधिक गुप्त एवं रहस्यमय बनाने का प्रयास करते हैं। जान-बूझकर ऐसी शब्दावलि का व्यवहार करते हैं, समय आने पर, अपना मतलब सिद्ध करने के लिये जिस के कई-कई अर्थ निकाले जा सकें। उनके भाषण अथवा वार्त्तालाप के बाद 'कुछ न समझे, खुदा करे, कोई की' परिस्थिति उपस्थित हो जाती है। ऐसे लोग दूसरों को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये बुद्धू बनाना अपना कर्त्तव्य समझे हुए होते हैं। उन्हें लक्ष्य रखकर ही सम्भवतः किसी ने कहा था—

ना-अहल हैं वे अहले सियासत की नजर में।
वादों से अपने जिनको मुकरना नहीं आता।

अर्थात्—राजनीतिज्ञों की दृष्टि में वे मनुष्य अयोग्य हैं, नालायक है; जिन्हें अपने वादों से मुकर जाना नहीं आता। इसी प्रकार के धूर्त्त मनुष्य खाद्य पदार्थों और औषधियों में निकृष्ट पदार्थों का सम्मिश्रण करते, पपीते के बीजों को काली मिर्च, रंगी हुई मूंज अथवा कागज की बारीक कतरनों से केसर बनाते, मैदे से सागूदाना का निर्माण करते, गेरू अथवा बारीक पिसी ईंटों की हल्दी और घोड़े की लीद या गधे की लीद का मसालों में सम्मिश्रण करके असली चीजों के नाम से और दाम से बेचकर सर्वसाधारण के धन को लूटते और उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करने के वज्रपाप के दोषी बनते हुए देश के कानून का घोर उल्लंघन करते हुए अपनी तिजौरियों को भरते रहते हैं।

अरावणः—'रा' धातु से 'रावन्' शब्द वैयाकरण सज्जन बनाते हैं और बताते हैं 'न रावा अरावा वा तस्मात् अरावणः' अर्थात् दान न देने वाला, कंजूस-मक्खी-चूस। प्रार्थना की गई है कि प्रभो! हमें एतादृश अरावणों, अदानशील मानव देह-धारी दानवों से बचाओ। दान के सम्बन्ध में तो आदेश है—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्।
भिया देयम्। संविदा देयम्।

(तैत्तिरीय प्रपा० ७, अनु० ११, से सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में उद्धृत)

अर्थात्—श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये। अतः जो दान देते रहते हैं वे ही मानव और देव कहलाने के अधिकारी हैं; दान न करने वालों की संज्ञा तो दानव ही समझनी चाहिये। कहा भी है—

धन-संग्रह से दान धन सौ गुण अधिक पछान।
बिना दान जो द्रव्य है सो बन सुमन समान।

अर्थात्—धन संचय करके उस पर काले नाग की तरह बैठे रहने और अर्थार्थी के निकट आने पर उसे अपनी घातक फुंकार से दूर भगा देने की अपेक्षा पात्र को दान दे देना सौ गुणा अच्छा है; क्योंकि बिना दान के जो द्रव्य है वह वैसा ही है जैसा निर्जन वन में उपजने और विकसने वाला फूल। वह स्वयं ही शाखा से गिर कर धूल में मिल जाता है, किसी को उसकी सुगन्धि लेने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। वेद भगवान् ने जहां हमें **'पतयो रयीणाम्'** धनों का मालिक बनने का आशीर्वाद दिया है, वहाँ साथ ही यह भी आदेश दिया है कि हे मानव! **'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त समाकिर'** सौ हाथ से धन अर्जित करो और हजार हाथ से उसे अर्थियों में, हाजतमन्दों में, अभाव ग्रस्तों में बिखेर दो।

रीषतः—जो मनुष्य हमें पीड़ा देता है, हमारा अकारण वैरी बना फिरता है, हमारे अहित-चिन्तन में ही व्यस्त रहता है, जिसका हमनें कभी जान-बूझकर अनिष्ट नहीं किया; परन्तु बात-बेबात का बतंगड़ बनाकर हमें तंग करता रहता है—

'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।'

(अथर्व काण्ड ३ सूक्त २७ मंत्र १ से सन्ध्या के छः मनसा परिक्रमा के मन्त्रों में)

अर्थात्—जो प्राणी अज्ञान से हमारा द्वेष करता है या जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष या पापी जन का हम द्वेष करते हैं, उन सबकी बुराई को उन बाणरूप किरण मुख में हम दग्ध कर देते हैं, ताकि हम किसी से वैर न करें और कोई प्राणी हमसे वैर न करे; किन्तु हम सब परस्पर मित्र भाव से वर्तें।

प्रभो! हमें हनन करने की इच्छा करने वालों, नुकसान पहुँचाने पर तुले हुए, जिसके मनमस्तिष्क में हमें हानि पहुँचाने की प्रबल इच्छाएँ पनपती हैं, कारण-अकारण जिसने हमें हानि पहुँचाना अपना उद्देश्य बना रक्खा है ऐसे हिंसावृत्ति आततायी से हमें बचाइये। मनु महाराज ने आततायी की परिभाषा करते हुए लिखा है—

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः॥ (मनु ८-३५०)

अर्थात्—अग्नि से स्थानादि जलाने वाला, विष देने वाला (मारने को) शस्त्र हाथ में लिये हुए (आक्रमण करने वाला), धन छीनने वाला, खेत और स्त्री का अपहरण करने वाला—ये छः—"आततायी" हैं। उनके साथ कैसा व्यवहार करे?

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति॥ (मनु ८-३५१)

अर्थात्—लोगों के सामने वा एकान्त में मारने को तैयार हुए के मारने में

मारने वाले को कुछ भी दोष नहीं होता; क्योंकि वह क्रोध उस क्रोध को प्राप्त होता है—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।। (मनु ८-३५०)

अर्थात्—गुरु वा बालक वा वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण, इनमें कोई हो, जो आततायी होकर आये उसको बिना विचारे (शीघ्र) मार दे।

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ।। (मनु ८-३४९)

अर्थात्—और अपनी रक्षा के लिये, दक्षिणा के छीनने पर, स्त्रियों और ब्राह्मणों की विपत्ति में धर्मानुसार शत्रुओं की हिंसा करने वाला दोषभागी नहीं होता। राक्षसों, आततायियों, कपटियों, छलियों, दुष्ट हिंसकों, धोखेबाजों के साथ कैसे निपटा जाय, इस विषय में वेद का निम्न आदेश मननीय एवं आचरणीय है—

ओ३म् सुवीरं रयिमाभर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ।।
(ऋग्वेद मण्डल ६, सूक्त १६, मंत्र २९)

अर्थात्—हे (**जातवेदः**) वेद प्रकट करने अथवा अनेक प्रकार के धन उत्पन्न करने वाले ईश्वर ! (**सुवीरं**) उत्तम वीरों से युक्त (**रयिम् आभर**) धन को प्राप्त करो (**सुक्रतो**) जगत् को उत्पन्न तथा धारण आदि उत्तम कर्म दिव्य कर्म करने वाले प्रभो ! (**विचर्षणे**) हे सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा प्रभो ! (**रक्षांसि**) दुष्ट राक्षसों का (**जहि**) नाश कर। राक्षसों, अत्याचारियों आततायियों को नष्ट करो।

ओ३म् धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।
(यजुर्वेद अध्याय १, मन्त्र ८)

अर्थात्—हे प्रभो ! जो हमारी हिंसा करता है उसे आप नष्ट करें और उसके प्रतिकार में हम भी उसकी हिंसा करते हैं।

प्रत्युष्ट रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो······(यजुर्वेद १-९)

अर्थात्—राक्षसों और लुटेरों को जला दो।

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीवद्यौर्वधात्मना ।।
(अथर्व ६-६-३)

अर्थात्—जो कोई हमें तग करता है या दास बनाता है वह (सनाभिः) अपना है अथवा (निष्ट्यः) बेगाना उसके बल को तोड़ दो और उसे मार भगाओ। हमारी आर्य संस्कृति में तीन प्रधान कृत्य माने गये हैं, या ये तीन अंग हैं, जैसा भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।। (गीता ४-८)

अर्थात्—युग-युगान्तरों में मेरे जैसे योगसिद्ध महात्माओं का जन्म सत्पुरुषों, प्रभु भक्तों के संरक्षण, दुष्टाचारियों, दुरात्माओं के मूलोत्पाटन तथा धर्म के संस्थापन

के लिये होता रहता है। इसी भाव के प्रकटीकरण के लिये श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने उच्चारण किया—

सन्तां मानउ दुष्टां डानउ एह कुतवारी मेरी

अर्थात्—साधु पुरुषों की प्रतिष्ठा और दुष्टों को दण्ड देना यही मेरी जिम्मेदारी है, उद्देश्य है, उत्तरदायित्व है और '**धर्महेतु गुरुदेव पठाए**' गुरुओं के गुरु अकाल पुरुष ने (**आदि अन्त एकै अवतारा—सोई गुरु समझी अहु हमारा**) हमें धर्मस्थापनार्थ भेजा है।

आततायी मुगल तानाशाह औरंगजेब को अपने फारसी भाषा में कवितामय पत्र 'जफरनामा' में आपने तलवार उठाने का कारण यूँ बताया—

चो कार अज हमः हीलते दर गुजश्त।
हलालस्त बुर्दन ब-शमशेर दस्त॥

अर्थात्—हे औरंगजेब! जब पानी सिर से गुजर जाये, जब समस्त प्रयत्न विफल हो जायें तो हाथ में तलवार थामना हलाल हो जाता है, उचित हो जाता है, प्रशस्त हो जाता है।

तात्पर्य—यह कि हे अग्ने! स्वप्रकाशरूप प्रभो! हमें धूर्त्तों, राक्षसों, अराव्णों, कंजूसों-मक्खीचूसों, ४२० करने वाले धोखेबाजों, स्वार्थी ब्लैकमार्किटियों, असली वस्तुओं के स्थान पर नकली पदार्थ और मिलावटी औषध-विक्रेताओं, हिंसा वृत्ति, पर-पीड़ा प्रदायकों, हत्यारों, हनन करने के इच्छुक दुरात्माओं से सदा हमारी रक्षा करें। वेद में इसी प्रकार के अनेक मन्त्र आये हैं जिन पर मनन करने से हमारे हृदयों में दुष्ट दानवों और मायावी मानवों के अत्याचारों का डटकर मुकाबिला करने, हिंसक मनुष्यों और पर-पीड़ा-प्रचिन्तकों के समक्ष मरदानावार खड़े हो जाने की प्रेरणा प्राप्त होती है अर्थात् जालिमों के जुल्म के विरुद्ध प्रतिकार की भावना उत्पन्न होती है, यह उचित ही है। यदि अत्याचारी का हाथ न रोका जाय तो वह हिंसा वन्य पशुओं की भाँति सबको समाप्त कर डाले; सभ्यता, संस्कृति, स्थिर मानव-मर्यादा का नाम-मात्र संसार से मिटा डाले। अतः बेतहाशा, बे-रोक-टोक, सरपट दौड़ने वाले अश्वारोही अथवा बे-ब्रेक की मोटर गाड़ी की तरह राज-पथों पर यात्रा करने वाली जनता का सर्वनाश कर डाले। इसीलिये घोड़ों के लिये लगाम और मोटरों के लिये ब्रेक की व्यवस्था की जाती है।

यह ध्यान रखने वाली बात है कि आर्य सभ्यता नपुंसकों की, नामर्द भीरुओं की सभ्यता नहीं है प्रत्युत नीतिकारों के कथनानुसार—

कृते प्रति कृतं कुर्यात् हिंसते प्रतिहिंसितम्।
तत्र दोषं न पश्यामि शठे शाठ्यं समाचरेत्॥ (विदुर प्रजागर)

अर्थात्—उपकारी के प्रति प्रत्युपकार और हिंसक के प्रति हिंसा—शठ के प्रति शठता का प्रयोग किया जाय तो इसमें मुझे कोई दोष नजर नहीं आता! जो व्यक्ति हमारी हिंसा का चिंतन अपने मन में भी करता हो, उसकी हिंसा पूर्वमेव कर देनी चाहिए; मारने की नीयत से ईंट उठाने वाले को भारी-भरकम पत्थर मार ही

देना चाहिए; क्योंकि शठ (हिंसक) के प्रति शठता (हिंसा) कर देने में कोई दोष नहीं ।[1]

भगवान् कृष्ण ने कहा—हे पाण्डव !

ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव !
धर्म संस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया ॥ (महाभारत)

अर्थात्—हे पाण्डव ! जो लोग धर्म का लोप करने वाले हैं वे मेरे लिए वध करने योग्य हैं क्योंकि धर्म की स्थापना करना यही मेरी अचल प्रतिज्ञा है ।

महाभारत में प्रतिकार भावना का स्फुट उदाहरण कुन्ती और द्रौपदी ने उपस्थित किया । कौरव सभा में दुर्योधन-कर्ण दुरभिसन्धि के कारण जान-बूझकर द्रौपदी का अपमान किया गया । गृह-युद्ध की ज्वालाएँ धधकने वाली हैं, ऐसा स्पष्ट आभास होने पर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सन्धि-दूत बनकर कौरवों को समझाने गये; परन्तु **'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः'** के अनुसार उन्हें अपने मिशन में सफलता नहीं हुई । हस्तिनापुर से वापसी से पूर्व पहले अपनी 'बूआ' कुन्ती के पास पाण्डवों के लिये कोई सन्देश लेने गये । माता कुन्ती ने कहा—'बेटा कृष्ण ! अब अत्याचार की पराकाष्ठा हो चुकी है इसलिए मेरे पुत्रों को कहना वीरो ! **'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।'**

अर्थात्—जिस अवसर (युद्ध) के लिए क्षत्राणियाँ गर्भ धारण किया करती हैं वह समय अब आ गया है । तब पास बैठी द्रौपदी से आपने कहा—कृष्णे ! तुम पर सर्वाधिक बर्बरतापूर्ण दुर्व्यवहार हुआ है, तुम बताओ, तुम्हारा संतोष कैसे हो सकता है ? वह बोली—भय्या वासुदेव !

दुःशासन भुजं श्यामं संच्छिन्नं पांसु लुण्ठितम् ।
यावदहं न पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ॥

अर्थात्—जब तक दुःशासन की भुजा को (जिसने मेरा चीर खींचा था) कटी हुई और धूलि-धूसरित हुई मैं नहीं देख लेती, तब तक मेरे हृदय को शान्ति कैसी ? इसीलिये हमारी संस्कृति में 'जैसे को तैसा' होकर मिलने का आदेश है । भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । (गीता ४-११)

अर्थात्—हे अर्जुन ! जो कोई मुझे जिस भावना से देखता है मैं भी उसे वैसी ही भावना से मिलता हूँ । तू मेरा मित्र है, मित्र भाव से मेरा सेवन करता है, मेरा भक्त है, शिष्य है, परम स्नेही है, इसलिए मैं तुम्हारा रथ हाँकना भी अपने लिए गौरव की बात समझता हूँ और विद्वेषी शिशुपाल को भरी सभा में सुदर्शन चक्र से मार गिराता हूँ यद्यपि वह भी मेरा सम्बन्धी ही था । इसीलिये भगवान् दयानन्द

---

१. **नोट**—यहाँ प्रश्न हो सकता है कि महर्षि दयानन्द ने तलवार उठाने वाले करणसिंह की तलवार छीनकर उसकी हत्या क्यों न कर दी; केवल तलवार तोड़ना ही क्यों पर्याप्त समझा ? हलाहल विष देने वाले को क्षमादान के साथ विदेश भागकर जान बचाने के लिए रुपये क्यों दिये ? वर्णाश्रम धर्म पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि 'सर्वभूतहिते रतः' संन्यासी का वही धर्म था, जो महर्षि ने निभाया ।

ने आर्यसमाज के सातवें नियम में आदेश दिया—**'सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथा-योग्य वर्त्तना चाहिए'** ।

'अग्ने:' Oh Effulgent God, Destroyer of those that are inimical to the righteous and the innocent **'याहि'** protect **'नः'** us **'रक्षसः'** from beings of wicked and harmful inclinations. **'पाहि'** protect us **'अराव्णः'** from the miserly 'धूर्तः' fraudulent person. 'पाहि' Protect us **'रीषतः'** from him who persecutes us **'उत'** and 'वा' also **'जिघांसतः'** from him who intends to harm us. "**यविष्ठ्य**' oh Almighty 'बृहद्-भानो' ! Great and Divine Sun.

प्रज्वलय छन्द

हैं धूर्त्त कृपण राक्षस अपार,
रक्षा कीजे उनसे हमार ।
हिंसा इच्छुक सबको संहार,
दे 'सूर्य' शरण नित शक्तिसार ॥१२॥

तात्पर्य—हे (**बृहद्भानो**) सबसे बड़े तेजस्विन् (**यविष्ठ्य**) महाबलिन् (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! (**नः**) हमें (**रक्षसः**) राक्षसों से (**पाहि**) बचाओ (**धूर्त्तः अराव्णः**) धूर्त, ठग, कृपण, स्वार्थियों से (**पाहि**) बचाओ (**रीषतः**) पीड़ा देने वाले (**उत**) और (**वा**) अथवा (**जिघांसतः**) हनन करने की इच्छा वालों से (**पाहि**) रक्षा करो ।

(श्री स्वामी अच्युतानन्द जी रचित ऋग्वेद शतक मन्त्र ८२)

तेरह

स्तुति विषय

ओ३म् त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१३॥

अष्टक १, अध्याय ४, वर्ग १४, मन्त्र २
ऋग्वेद
मंडल १, अनुवाक १०, सूक्त ५२, मन्त्र १२

पदच्छेद—त्वम् । अस्य । पारे । रजसः । विऽओमनः । स्वभूतिऽओजाः । अवसे । धृषत्ऽमनः ।चकृषे । भूमिम् । प्रतिऽमानम् । ओजसः । अपः । स्वरिति स्वः । परिऽभूः । एषि । आ । दिवम् ।

पदार्थ

त्वम्	आप
अस्य	इस संसार के (क्लेशों से)
पारे	अपर भाग में भी
रजसः	पृथिव्यादि लोकों तथा
व्योमनः	आकाश के
स्वभूत्योजाः	अपने ऐश्वर्य वा पराक्रम युक्त से
अवसे	रक्षादि के लिये
धृषन्मनः	हे अनन्त प्रगल्भ युक्त जगदीश्वर जो
आ-चकृषे	अच्छे प्रकार किया है उन आपकी हम सब लोग उपासना करते हैं
भूमिम्	भूमि और
प्रतिमानम्	अवधि
ओजसः	पराक्रम आदि के
अपः	जलों को
स्वः	सुख
परिभूः	सब प्रकार होने वाला
एषि	प्राप्त है और आप
आ	(सब ओर से)
दिवम्	शुद्ध विज्ञान के प्रकाश

अन्वय—हे धृषन्मनो जगदीश्वर ! यः परिभूः स्वभूत्योजास्त्वमवसेऽस्य संसारस्य रजसो व्योमनः पारेऽप्येषि त्वम् सर्वेषामोजसः पराक्रमस्य स्वभूमिं चाप्रतिमानमाचकृषे समन्तात्कृतवानसि तं सर्वे वयं उपास्महे ।

भावार्थ—हे अनन्त प्रगल्भ विज्ञानयुक्त जगदीश्वर ! जो (परिभूः) सब प्रकार होने, अपने ऐश्वर्य का, पराक्रमयुक्त से आप रक्षा आदि के लिये इस संसार के क्लेशों, पृथिवी आदि लोकों तथा आकाश के अपर भाग में भी प्राप्त हैं और अपने पराक्रम आदि के अवधि, सुख, शुद्ध विज्ञान के प्रकाश, भूमि और जलों को अच्छे प्रकार किया है, उन आपकी हम सब लोग उपासना करते हैं।

व्याख्यान—हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! आकाश लोक के पार तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "**अवसे**" सम्यक् रक्षण के लिये "**त्वम्**" आप सावधान हो रहे हो। इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं। किञ्च "**दिवम्**" परमाकाश "**भूमिम्**" भूमि तथा "**स्वः**" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रचकर यथावत् धारण कर रहे हो। "**आ दिवम्**" द्योतनात्मक सूर्यादि-लोक "**अपः**" अन्तरिक्ष लोक और जल इन सबके प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो। कृपा करके अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥१३॥

स्वाध्याय—**त्वमस्य रजसः व्योमनः पारे**—(**त्वम्**=**परमेश्वरः**—आप; **अस्य**=**संसारस्य क्लेशेभ्यः**—इस संसार के (क्लेशों से); **रजसः**=**पृथिव्यादि लोकानाम्**—पृथिव्यादि लोकों तथा; **व्योमनः**=**आकाशस्य**—आकाश के; **पारे**=**अपर भागे**—अपर भाग में भी—महर्षि भाष्य) हे परमेश्वर आप सारे विश्व में व्यापक हैं '**ईशावास्यमिदं सर्वं**' हे परमपिता परमात्मन् ! यह सब जगत् आपका आवास स्थान है। निवास स्थान है। इसके अणु-अणु और परमाणु-परमाणु में भी आप विद्यमान हैं और यह सनातन सत्य है। इस दृश्यमान जगत् के अतिरिक्त, जितनी भी अन्य सृष्टियाँ हैं, आकाश है और उससे परे भी जो अगणित लोक-लोकान्तर हैं उनमें भी आप सब जगह मौजूद हैं।

स्वभूत्योजाः ओजसः—(**स्वभूत्योजाः**=**स्वकीया भूतिरैश्वर्यमोजः पराक्रमो वा यस्य सः**—अपने ऐश्वर्य वा पराक्रमयुक्त से; **ओजसः**=**पराक्रमस्य**—पराक्रम आदि के—महर्षिभाष्य) प्रभो ! आप अपनी सर्वोत्तम सर्वशक्तिमत्ता और ओजस्वी तेज के कारण और अपने असीम बल, सर्वोत्कृष्ट शक्ति और अवर्णनीय पराक्रम के कारण, अपने ही बलबूते पर—

धृषन्मनः अवसे—(**धृषन्मनः**=**धृष्यद्धृष्यते मनः सर्वस्यान्तःकरणं येन तत्सम्बुद्धौ**—हे अनन्त प्रगल्भ युक्त जगदीश्वर जो; **अवसे**=**रक्षणाद्याय**—रक्षादि के लिये महर्षि भाष्य) दुष्टाचारी, दम्भी, कपटी, धोखेबाज, धूर्त, कृपण व्यक्तियों को सीधा करते हो, उन्हें सन्मार्गारूढ़ होने की प्रेरणा करते हुए अथवा यदि कुमार्ग का परित्याग न करें तो उन्हें दण्ड देते हुए और समाप्त करते हुए '**पाहि नो अग्ने रक्षसः**' **हमें उन राक्षसों, दुष्कृत्य कर्त्ताओं** से, पाप-वृत्ति लोगों से सुरक्षित रखिये। हमारे रक्षण, अपनी समस्त रचना की सम्यक् रक्षा के लिए आप आठों याम निरालस होकर तत्पर रहते हैं। इसीलिए हम आपके राज्य में निर्भय होकर विचरते और सांसारिक सुखों का निरन्तर उपभोग करने में समर्थ हो पाते हैं।

आ चकृषे दिवम् भूमिम् अपः स्वः—(**आचकृषे**=**कृतवानसि**—अच्छे प्रकार किया है; **दिवम्**=**विज्ञान प्रकाशम्**—शुद्ध विज्ञान के प्रकाश, **भूमिम्**=**सर्वाधाराम् क्षितिम्**—भूमि और; **अपः**=**प्राणान् जलानि**) जलों को; **स्वः**=**सुखमन्तरिक्षं वा**—

सुख—महर्षि भाष्य) परमेश्वर ! आप ही द्योतनात्मक सूर्य्य मण्डल, द्युलोक, तारागण अपनी सामर्थ्य से रचकर इन सबका धारण, पोषण, संरक्षण तथा नियमन कर रहे हैं। जलों— जलाशयों। नदी-नालों-ह्रदों, तोय राशियों, सागरों एवं द्युलोक स्थित '**समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवः** मेघ मण्डल में स्थित महा समुद्र को भी आपने ही बनाया है। माध्यमिक मण्डल तथा उनमें बसने वाले जीवमात्र के सुख-विशेष की समस्त सामग्रियाँ भी आपकी ही निर्मित की हुई हैं **परिभूः एषि प्रतिमानम्**—**परिभूः=यो परितः सर्वतो भवति सः**—सब प्रकार से होने वाला; **एषि=प्राप्नोषि**—प्राप्त है और; **प्रतिमानम्=प्रतिमीयते, परिणीयते प्रतिक्रियते येन तत्**—अवधि—महर्षि भाष्य) परमेश्वर ! आप अपने अस्तित्व से सब पदार्थों, बलों, शक्तियों, पराक्रमों का उल्लंघन करके सर्वोपरि विराजमान हैं और सब मनुष्यों को प्राप्त होने योग्य हो। प्रभो ! समस्त द्योतित लोकों, ज्योतिर्मय स्थानों एवं प्रकाश पुञ्जों के भी परिमाण-कर्त्ता, उन्हें सीमा-बद्ध और नियन्त्रित करने वाले हैं; परन्तु स्वयं निस्सीम हैं, अनन्त हैं, अवधि-परिमाण रहित हैं, अथाह हैं, अगाध हैं। कृपा करो कि आपका और आप के निर्मित विश्व-जगत् का यथार्थ ज्ञान, वास्तविक विज्ञान प्राप्त हो सके, जिस से हम अविद्या-अज्ञान के अंधकार से निकलकर ज्ञानलोक में अपने आपको भी पहचानते हुए जीवन के चरमलक्ष्य को प्राप्त हो सकें अर्थात् मोक्षाधिकारी बन सकें क्योंकि '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' सर्वसम्मत सिद्धान्त है। इसीलिए हमारी प्रार्थना है कि **तमसो मा ज्योतिर्गमय** और '**मृत्योर्मा अमृतं गमयं**' अंधकार से हमें प्रकाश की ओर तथा मत्यु से हमें अमृत (मोक्ष) की ओर ले चलिये।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिशतो वशी ॥२॥
ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

(ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १९०, मन्त्र १, २, ३)

तात्पर्य—इन तीनों मंत्रों में भगवत्सृष्टि की विविध रचनाओं का वर्णन हुआ है—सूर्य, चन्द्रमा, द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक, स्वलोक (जितने भी लोक-लोकान्तर आकाश में स्थित हैं) पूर्व कल्पों के अनुसार सत्त्व, रजस, तमसरूप त्रिगुणात्मक प्रकृति के कार्यरूप में उत्पन्न, भूमि पर स्थित सागर तथा अन्य जल-राशियों एवं अन्तरिक्ष में मौजूद मेघमण्डल में विद्यमान तोय भण्डार आदि हैं, वे सब उसी परब्रह्म की ही कृतियाँ हैं। इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! आप भूमि, अन्तरिक्ष, द्युलोक, मर्त्यलोक, जलों-जलराशियों, नदी-नालों-सागरों तथा अन्य अनेकविध तोय-राशियों, सूर्यादि लोकों, तारामण्डलों और अगणित आकाश-गंगाओं (तारा समूहों) के रचना धारण और पालन करने वाले हैं। यह आकाश और इससे परे भी जो लाखों-करोड़ों भू-मण्डल, सूर्यमण्डल, तारा-मण्डल एवं विश्व जगत् आपने निर्माण किये हैं, आप उन सब में व्यापक हैं, ओत-प्रोत हैं। प्रभो ! आप चोरों, डाकुओं, तस्करों, दुराचारियों, व्यभिचारियों, अत्याचारियों, पाप-प्रकृति, दुष्ट-स्वभाव, हिंसक, संसार के अहित-चिन्तक, मानवाकार दानवों को नियन्त्रण में रखने, उन्हें

सीधे मार्ग पर लाने वाले हैं, यदि फिर भी वे शिक्षा ग्रहण न करें तो उन्हें भीषण दण्ड देकर विनष्ट तक कर देने की सामर्थ्य रखते हैं। आपने ही अग्नि, वायु, भूमि, जल और आकाशादि पाँच महाभूतों की रचना की है और आप ही सारी सृष्टि को अपने नियन्त्रण में रखने वाले हैं। उक्त प्रकार के दुष्ट जनों से सदैव रक्षित रखिये।

Oh Supreme Spirit, Great Master of all power and pelf. **'स्वभूत्योजाः'** ruling supreme by Thy might and majesty **'अस्य रजसः व्योमनः पारे'** in and beyond space, **'धृषन्मनः'** setting at Naught the evil dispositions of the wicked, **'त्वम्'** Thou art present in the universe **'अवसे'** for the protection and sustenance of all Thy creatures, the consequence of Thy vigilance being our fearless and peaceful enjoyment of life. Nay, **'ओजसः'** by Thy might. **'चकृषे'** Thou hast created (and art sustaining the **'दिवम्'** solar region and sun), **'भूमिम्'** the terrestrial region, and **'स्वः'** the intermediate atmospheric region along with all beings that are noted for their enjoyment of special types of happiness in different regions. **'परिभूः'** Surpassing all entitties by Thy very being **'आ एषि'** Thou art fully accessible to those properly disposed. Thus being **'प्रतिमानम्'** the Measurer of the bustrous regions, the sun and such other planets (of the earth) **'अपः'** of the atmospheric region, waters (and vital forces pervading all regions) Thou Thyself art immeasurable (unfathomable). Condescend to vouchsafe us true (and first hand) knowledge of Thyself and Thy creation, the universe.

तोटक वृत्त

नभ में जग में विभु-व्यापक हो,
निज ओज विभा अरि तापक हो।
जल, सूर्य, स्वभू प्रतिमापक हो,
परिरक्षक हो पद-प्रापक हो ॥१३॥

प्रार्थना विषय

ओ३म् विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता
विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥१४॥

अष्टक १, अध्याय ४, वर्ग १०, मन्त्र ३
ऋग्वेद———————————————
मंडल १, अनुवाक १०, सूक्त ५१, मन्त्र ८

पदच्छेद—वि । जानीहि । आर्यान् । ये । च । दस्यवः । बर्हिष्मते । रन्धय । शासत् । अव्रतान् ।

पदार्थ

वि	
जानीहि	जान और
आर्यान्	सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को
ये	जो
च	
दस्यवः	पर पीड़ा करने वाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं उनको जानकर
बर्हिष्मते	धर्म की सिद्धि के लिए उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिये
रन्धया	मार और उन
शासत्	शिक्षा करते हुए
अव्रतान्	सत्य भाषणादि धर्मरहित मनुष्यों को
शाकी	उत्तम शक्तियुक्त सामर्थ्य को
भव	सिद्ध कर जिससे
यजमानस्य	यज्ञ के कर्त्ता का
चोदिता	प्रेरणा कर्त्ता और
विश्वा	सब कर्मों के सिद्ध करने की
इत्	ही
ता	उन
ते	तेरे उपदेश वा संग से
सधमादेषु	सुख के साथ वर्त्तमान स्थानों में
चाकन	इच्छा करता हूँ

अन्वय—हे मनुष्य; त्वं बर्हिष्मत आर्यान्विजानीहि ये दस्यवः सन्ति तांश्च विदित्वा रन्धया ऽ व्रतान् शासत् यजमानस्य चोदिता सन् शाकी भव यतस्ते तवोपदेशेन संगेन वा सधमादेषु ता तानि विश्वा विश्वान्येतानि सर्वाणि देवाहं चाकन ।

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिये सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को जानकर धर्मरहित मनुष्यों को शिक्षा करते हुए यज्ञ के कर्त्ता का प्रेरणा कर्त्ता और उत्तम शक्ति-युक्त सामर्थ्य को सिद्ध कर जिससे तेरे उपदेश वा संग से सुखों के साथ वर्तमान स्थानों से उन सब कर्मों को सिद्ध करने की ही मैं इच्छा करता हूँ ।

व्याख्यान—हे यथायोग्य सबको जानने वाले ईश्वर ! आप **"आर्यान्"** विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरण-युक्त आर्यों को जानो **"ये च दस्यवः"** और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषय-लम्पट, हिंसादि दोष-युक्त, उत्तम कर्म में विघ्न करने वाले, स्वार्थी, स्वार्थ साधन में तत्पर, वेद-विद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य **"बर्हिष्मते"** सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, उन सब दुष्टों को आप **"रन्धय"** (समूलान् विनाशय) मूल सहित नष्ट कर दीजिये । और **"शासदव्रतान्"** ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि धर्मानुष्ठान व्रत रहित, वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षा-युक्त होके शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाये किंवा हमारे वश में ही रहें । **"शाकी"** तथा जीव को परमशक्ति युक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो । आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो । मैं भी **"सधमादेषु"** उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ **"विश्वेत्ता ते"** तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की **"चाकन"** कामना करता हूँ, सो आप पूरी करें ॥१४॥

स्वाध्याय—**विजानीहि आर्यान्**—(**वि=विशेषार्थ; जानीहि=विद्धि**—जान और; **आर्य्यान्=धार्मिकान्, आप्तान्, विदुषः, सर्वोपकारकान् मनुष्यान्**—सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान मनुष्यों को; महर्षि भाष्य) वे सर्वज्ञ, सबको सब-कुछ को याथातथ्य जानने वाले प्रभो ! आप आर्यों (**आर्यः ईश्वरस्य पुत्रः**) अपने पुत्रों (**अर्यस्यापत्यः**—स्वामी के पुत्र) जो (**निवरणार्थमार्त्तानामर्त्तुं योग्यं भवेत्तु यः —अर्यते सततमार्तैः स आर्य इति कथ्यते**)—दुःखियों के आर्त्तनाद को सुनकर द्रवित हो जाने वाले होते हैं, श्रेष्ठ, सच्चिन्तन, सद्भाषण, सत्कर्म करने वाले व्रतियों, विद्या-धर्म-सदाचार के प्रतिरूपों एवं देवत्व वृत्तिधारियों को भली-भाँति जानते हो, पहचानते हो ।

ये च दस्यवः—(**ये—वक्ष्यमाणाः**—जो; **च=समुच्चये**—और; **दस्यवः=परपीडकाः, मूर्खाः, धर्मरहिता दुष्टा मनुष्याः**—पर पीड़ा करने वाले, अधर्मी, दुष्ट मनुष्य हैं उनको जानकर; महर्षि भाष्य) अनाड़ी, अनार्य, चोर, डाकू, दस्यु, ब्लैक मार्किट करने वाले, स्मगलरों, नास्तिक धोखेबाजों, हिंसक स्वभाव वालों, लाभदायक निरपराध पशु-पक्षियों का घात करने वालों, राष्ट्र की सम्पत्ति का नाश करने वालों, गाड़ियाँ उलटने, बैंक लूटने, भवनों तथा अन्य सम्पत्ति को फूंकने वालों, स्वार्थियों, धर्मकार्यों में विघ्न उपस्थित करने वालों, यज्ञ विध्वंसक राक्षसों, अनुपकारी दैत्यों को भी जानते हो, बूझते हो । (**जैसे "आर्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूं**—महर्षि का मन्तव्यामन्तव्य प्रकाश नं० २९)

बर्हिष्मते रन्धय—(**बर्हिष्मते**=**बर्हिषः प्रशस्ता ज्ञानादयो गुणा) विद्यन्ते यस्मिन् व्यवहारे तन्निष्पत्तये**—धर्म की सिद्धि के लिये, उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहारों की सिद्धि के लिये; **रन्धय**=**हिंसय**—मार और उन—महर्षि भाष्य) सर्वोपकारक कर्मों के, जन-कल्याण के कार्यों के, यज्ञ अनुष्ठानों के विध्वंस को, इष्टापूर्त्त कृत्यों को नष्ट-भ्रष्ट करने वालों को "समूलान् विनाशय", समूलोन्मूलन कर दीजिये जड़-बुनियाद से उखेड़ फेंकिये।

शासत् अव्रतान्—(**शासत्**=**शासनं कुर्वन्**—शिक्षा करते हुए; **अव्रतान्**=**सत्यभाषणादि रहितान्**—सत्यभाषणादि धर्म रहित—महर्षि भाष्य) व्रत रहित, धर्माचरण विवर्जित, वर्णाश्रम व्यवस्था-विनाशक, लक्ष्यविहीन जीवन घसीटने वाले अनाचारियों को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा प्रदान कीजिये, या उन्हें श्रेष्ठ पुरुषों के वशवर्ती होकर, उनके सत्संग से उपदेश ग्रहण करके जीवन यापन करें ताकि इस सत्संगति से उनका जीवन सुधरे; उनके दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःख दूर होकर वे शुभ गुण-कर्म-स्वभाव को धारण करके आर्य बन जावें अथवा उन्हें दण्ड देकर जड़-मूल से उखाड़ फेंकिये ताकि वे दूसरों का भी आचार, विचार, आहार, व्यवहार भ्रष्ट न करने पावें।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता—(**शाकी**=**प्रशस्तः शाकः शक्तिर्विद्यते यस्य सः**—उत्तम शक्ति युक्त सामर्थ्य को; **भव**=**निवर्तस्व**—सिद्ध कर जिससे; **यजमानस्य**=**यज्ञ निष्पादकस्य**—यज्ञ के कर्त्ता का; **चोदिता**=**प्रेरकः**=प्रेरणाकर्त्ता और—महर्षि भाष्य) प्रभो ! सब प्रकार की शक्ति, विविध बल—शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक, औद्योगिक आदि, आप प्रदान करने वाले हैं।

ओ३म् य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते।
प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अध्याय २५, मन्त्र १३)

अर्थात्—(**यः**) जो (**आत्मदाः**) आत्मज्ञान का दाता (**बलदाः**) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा (**यस्य**) जिसकी (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उपासते**) उपासना करते हैं (**यस्य**) जिसका (**प्रशिषम्**) प्रत्यक्ष स्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (**यस्य**) जिसका (**छाया**) आश्रय ही (**अमृतम्**) मोक्ष-सुखदायक है (**यस्य**) जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही (**मृत्युः**) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (**कस्मै**) सुख स्वरूप (**देवाय**) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (**हविषा**) आत्मा और अन्तःकरण से (**विधेम**) भक्ति अर्थात् आज्ञापालन में तत्पर रहें।

तू ही आत्म-ज्ञान बल दाता, सुयश विज्ञजन गाते हैं,
तेरी चरण-शरण में आकर, भव सागर तर जाते हैं।
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे बिसराने में,
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु, तुझ से लगन लगाने में॥

(विविध वैदिक यज्ञ-विधान)

परमात्मदेव ! आप अपने भक्तों को सन्मार्ग में चलाने की प्रेरणा करने वाले हैं; बड़े-बड़े सत्कृत्यों के करने का उत्साह दिलाने वाले हैं, दुष्कर्मों से हटाकर

कल्याण-मार्ग का पथिक बनने की सामर्थ्य प्रदान करने वाले हो।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥
(यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र ३)

अर्थात्—हे (**सवितः**) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता सकल ऐश्वर्ययुक्त (**देव**) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (**नः**) हमारे (**विश्वानि**) सम्पूर्ण (**दुरितानि**) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (**परासुव**) दूर कर दीजिये (**यत्**) जो (**भद्रम्**) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं (**तत्**) वह सब हमको (**आसुव**) प्राप्त कराइये।

तू सकलेश सकल सुख दाता, शुद्ध स्वरूप विधाता है,
उसके कष्ट नष्ट हो जाते, जो तेरे ढिग आता है।
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से, हमको नाथ बचा लेना,
मंगलमय गुण कर्म पदारथ, प्रेम सिन्धु हमको देना॥
(विविध वैदिक यज्ञ-विधान)

जब तक दुर्गुण न हटें, तब तक सद्गुण सम्पन्न होना सम्भव ही नहीं। दुर्गुणों का दूर होना 'दोषापनयन' और सद्गुण सम्पन्न होना 'गुणाधान' कहलाता है। पकी हुई चपाती, राढ़े हुए फुल्के पर से राख झाड़ना 'दोषापनयन' और उस पर घी चुपड़ना 'गुणाधान' कहा जाता है। पुराना जर्जरित खंडहर रूप भवन, दुःख देने वाली इमारत, भोंडी प्रतीत होने वाली बिल्डिंग जिसके सहसा गिर जाने पर सकुटुम्ब नीचे दब जाने का भय प्रतिक्षण बना रहता हो, उसको भूमिसात् किये बग़ैर उस पर सुन्दर, सुखद, सप्त कक्ष भवन का नव-निर्माण नहीं किया जा सकता। इसीलिये प्रार्थना की गई है कि प्रभो ! हमारे दुर्गुण पहले दूर करके फिर हममें शुभ गुणों का आधान कीजिए।

सधमादेषु=सुखेन सह वर्तमानेषु स्थानेषु—सुखों के साथ वर्तमान स्थानों में—महर्षि भाष्य) प्रभो ! कृपा करो कि मैं भी आपके भक्तों, अनन्य सेवकों, सन्तों, महात्माओं की सत्संगति में, स्वाध्याय में, सत्य-प्रिय जिज्ञासुओं के चरण-चुम्बन करता हुआ उत्कृष्ट स्थानों में रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।

चाकन विश्वा इत् ता ते—(**चाकन=कामये**—मैं इच्छा करता हूँ; **विश्वा=सर्वाणि**—सब कर्मों के सिद्ध करने की; **इत्=एव**—ही; **ता=तानि**—उन; **ते=तव**—तेरे उपदेश वा संग से—महर्षि भाष्य) परमपिता ! मेरी प्रार्थना है कि मैं अच्छे कर्मों, उत्तम यज्ञ-अनुष्ठानों और सर्वहितकारी कल्याणकर कार्यों में संलग्न रहने की कामना करता हुआ और आपकी वैदिक आज्ञाओं पर दृढ़तापूर्वक आचरण करता हुआ अपनी सत्कामनाओं की पूर्ति को इन चर्म-चक्षुओं से निहार सकूँ। कृपया इन प्रार्थनाओं को स्वीकार करो।

Oh Lord God, knowing everybody and everything in the most accurate manner, '**विजानीहि**' Thou knowest '**आर्यान्**' the regenerate distinguished by good education, righteous living and excellence of nature and conduct as well as '**ये च दस्यवः**' those who are

degenerate, namely, unbelievers, robbers, thieves, the treacherous, those who are void of understanding, the voluptuous, those whose life is vitiated by the sin of willfully inflicting injury on living creatures, or damaging or wasting useful things, obstructers of good works, the selfish, those who always have an eye to their own interests, opponents of the learning and teaching of the Vedic Lore, burfgars, 'बर्हिष्मते' who are the destroyers of all good works intended or general public welfare. 'रन्धय' Do Thou exterminate all those from their very roots. 'शासत्' Do Thou quickly let Thy penalty fall 'अव्रतान्' on those who do not conscientiously live according to the Vedic Lore governing the four stages of human life, namely, Vedicstudentship, householder's duties, preparatory stage of renunciation living in seclusion, that is, sannyas, so that they may either turn a new leaf in life, or be deprived of a dis-edifying corporal existence, or be completely in our power, Thy righteous devotees, 'शाकी भव' Thou art the conferer of great power upon the human soul 'यजमानस्य चोदिता' and the Impeller of Thy devotees to great and good deeds. Thou art our Preventer from evil deeds, May I also, 'सधमादेषु' living in good places (in the company of good people) and 'चाकन विश्वा इत् ता ते' longing to do all good deeds living strictly in accordance with Thy Vedic Law and Thy Holy Will, have my wishes fulfilled by Thy Grace.

विशस्त विल वृत्त

प्रभो ! सुकर्मी हम आर्य, जान के;
बनो विनेता बल-बोध-ज्ञान के ।
हनो व्रतघ्नी मख दस्यु मान के;
करो ममेच्छा प्रभु ! पूर्ण आन के ॥१४॥

स्तुति विषय

ओ३म् न यस्य द्यावा पृथिवी अनुव्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत
एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१५॥

अष्टक १, अध्याय ४, वर्ग १४, मन्त्र ४
ऋग्वेद——————————
मण्डल १, अनुवाक १०, सूक्त ५२, मन्त्र १४

पदच्छेद—न । यस्य । द्यावा पृथिवी इति । अनु । व्यचः । न । सिन्धवः । रजसः । अन्तम् । आनशुः । न । उत । स्वऽवृष्टिम् । मदे । अस्य । युध्यतः । एकः । अन्यत् । चकृषे । विश्वम् । आनुषक् ।

पदार्थ

न	
यस्य	जिस
द्यावापृथिवी	प्रकाश अप्रकाशयुक्त लोक और चन्द्रमा आदि की
अनु	अनन्त व्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान
व्यचः	
न	
सिन्धवः	(समुद्र)
रजसः	ऐश्वर्ययुक्त ईश्वर की
अन्तम्	अन्त अर्थात् सीमा को
आनशुः	प्राप्त होते हैं हे परमात्मन् जैसे
न	नहीं
उत	(और, भी)
स्ववृष्टिम्	अपने पदार्थों की रक्षा के प्रति
मदे	आनन्द में
अस्य	(मेघ का)
युध्यतः	युद्ध करते हुए मेघ वा सूर्य के सामने विजय नहीं होता वैसे
एकः	सहायरहित अद्वितीय जगदीश्वर
अन्यत्	अपने से भिन्न द्वितीय
चकृषे	(करता है)
विश्वम्	जगत् को
आनुषक्	अपनी व्याप्ति से युक्त किया है इससे आप उपासना के योग्य हैं

अन्वय—यस्य रजसः परमेश्वरस्याऽनुव्यचोऽनुगताया व्याप्तेर्द्यावापृथिवी चन्द्रादयश्चान्तं नानशुः न व्याप्नुवन्ति नोतापि सिन्धवो व्याप्नुवन्ति। हे परमात्मंस्त्वं स्ववृष्टि प्रति मदे युध्यतो मेघस्य सूर्यस्याग्रे विजयो न भवति तथैको ऽसहायो ऽद्वितीयः सन्नन्यद्विश्वमानुषक् चक्रषे कृतवानसि तस्माद्भवानुपास्यो ऽस्ति।

भावार्थ—जिस ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर की अनन्त व्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान प्रकाश अप्रकाशयुक्त लोक और चन्द्रमादि भी नहीं प्राप्त होते हैं। हे परमात्मन्! जैसे अपने पदार्थों की वर्षा के प्रति आनन्द में युद्ध करते हुए मेघ का सूर्य के सामने विजय नहीं होता वैसे सहायरहित अद्वितीय जगदीश्वर ने अपने से भिन्न द्वितीय जगत् को अपनी व्याप्ति से युक्त किया है। इससे आप उपासना के योग्य हैं।

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य युक्त ईश्वर! आप इन्द्र हैं। हे मनुष्यो! जिस परमात्मा का अन्त—'इतना यह है' नहीं उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता। तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी, मध्यलोक निकृष्टलोक, ये कोई आदि अन्त को नहीं पाते, क्योंकि "**अनुव्यचः**" यह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा "**न सिंधवः**" अन्तरिक्ष में जो दिव्य जल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। "**नोत स्ववृष्टि मदे**" वृष्टि प्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ), तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते। हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके। क्योंकि "**एकः**" एक=असहाय=स्वसामर्थ्य से हो, अपने से भिन्न "**विश्वम्**" सब जगत् को "**आनुषक्**" अनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "**चक्रषे**" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें? तथा "**अन्यत्**" आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल करते हो, इससे आपका सहाय हम लोगों को सदा है॥१५॥

स्वाध्याय—हे परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! हे भक्तजनो!

न यस्य द्यावापृथिवी अनुव्यचः=(**न यस्य द्यावापृथिवी**=**न यस्य परमेश्वरस्य विदुषः** वा—**प्रकाशाप्रकाशयुक्तौ लोकसमूहौ**—जिस परमेश्वर की प्रकाश-अप्रकाश युक्त लोक और चन्द्रमादि भी; **अनुव्यचो**=**व्याप्तेः**—अनन्त व्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान—(महर्षिभाष्य) वह ईश्वर सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। यह विचार करना भी मूर्खता की पराकाष्ठा है कि उस परमात्मा की सीमा अमुक स्थान पर समाप्त हो जाती है। प्रकाश-युक्त देदीप्यमान स्वयं सूर्य तथा सारा भास्कर-मण्डल, उसके अन्य ज्योतिष्मान् सदस्य, तारामण्डल, उच्चतम आकाश, भूमिस्थ लोक-लोकान्तर, इनके अतिरिक्त सौरमण्डल के छोटे-से-छोटे ग्रह-उपग्रह—ये सब मिलकर, सम्मिलित यत्न करने पर भी परब्रह्म परमेश्वर की सीमा (इयत्ता) को निर्धारित नहीं कर सकते; क्योंकि वह ब्रह्म उपरिलिखित प्रकाशप्रद वस्तुओं तथा इनके अतिरिक्त विश्वभर के जितने भी पदार्थ हैं, उनमें भी व्यापक है, ओत-प्रोत है। प्राणियों के रोम-रोम में रम रहा है, प्राकृतिक पदार्थों के कण-कण में समा रहा है। यह सब कुछ उसी का आवास है, निवास-स्थान है। वस्तुतः कोई जड़ पदार्थ, जीव-जन्तु, मानव-दानव, पशु-पक्षी

उसकी अवधि, सीमा, इयत्ता को मापने में समर्थ नहीं है। वह असीम है, अनन्त है, अथाह है।

ओ३म् यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः॥

(ऋग्वेद मण्डल २, सूक्त १२, मन्त्र ९)

अर्थात्—हे परमात्मन्! (**यस्मात् न ऋते**) जिस आपकी कृपा के बिना (**जनासः**) मनुष्य (**न विजयन्ते**) विजय को नहीं प्राप्त होते (**युध्यमानाः**) युद्ध करते हुए (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिये (**यम् हवन्ते**) जिसकी प्रार्थना करते हैं (**यः**) जो भगवान् (**विश्वस्य**) सब जगत् का (**प्रतिमानम् बभूव**) प्रत्यक्ष मापने वाला है (**यो अच्युत च्युत्**) जो प्रभु आप न गिरता हुआ (क्योंकि अटल है) दूसरों को गिराने वाला (क्योंकि सब अस्थायी हैं, क्षणभंगुर हैं) है (**जनासः**) हे मनुष्यो! (**स इन्द्रः**) वह इन्द्र है।

ओ३म् त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्॥

(ऋग्वेद मंडल १, सूक्त ५२, मन्त्र १३)

अर्थात्—(**त्वम्**) भगवन्! आप (**भुवः**) अन्तरिक्ष और (**पृथिव्याः**) विस्तृत भूमि के (**प्रतिमानम्**) प्रत्यक्ष मापने वाले (**बृहतः**) विस्तृत द्युलोक के (**पतिः भूः**) स्वामी हैं (**विश्वम्**) सब (**अन्तरिक्षं**) अन्तरिक्ष को अपने (**महित्वा**) अपने महित्व से (**आप्राः**) परिपूर्ण किया है (**सत्यम्**) वह सब (**अद्धा**) और निश्चित है कि (**त्वावान्**) आप जैसा (**अन्यः न किः**) दूसरा कोई नहीं। जब वह सबकी सीमा बांधने वाला है, हद्द बांधने वाला है, तो उसका मापने वाला, अन्त पा लेने वाला, हद्द मुकर्रर करने वाला कौन हो सकता है अर्थात् कोई नहीं। **न द्यावा पृथिवि**—न द्युलोक में स्थित सूर्य, न यह मर्त्यलोक और इसके भाग अतल, वितल, तलातल, पाताल आदि सातों लोक, न पृथिवी पर विस्तृत—विशाल, गम्भीर—अथाह सागर, न मेघ मण्डल में व्याप्त दिव्यतोय राशियाँ, जो सूर्य किरणों की उष्णता के कारण वाष्प रूप में उड़कर मेघ-मण्डल में संग्रहीत होती रहतीं, वायु-वेग से पवन-स्कन्धों पर चढ़ उड़ती फिरतीं और प्राकृतिक नियमों के अनुसार वर्षा रूप में बरसकर मानवों, पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों अर्थात् जीव मात्र के कल्याण एवं वनस्पति वर्ग की वृद्धि का कारण बनती हैं, वे सब मिलकर भी उस अनन्त, असीम, अथाह परमात्मा की सीमा का निर्धारण नहीं कर सकतीं।

ओ३म् यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत् प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥

(अथर्व काण्ड ११, सूक्त ४, मन्त्र ५)

अर्थात्—(**यदा**) जब (**प्राणः**) जीवनदाता परमेश्वर ने (**वर्षेण**) वर्षा द्वारा (**महीम्**) बड़ी (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**अभ्यवर्षीत्**) सींच दिया (**तत्**) तब (**पशवः**) 'पश्यन्तीति पशवः' आँखों से देखने वाले जीव मात्र (**प्रमोदन्ते**) बड़ा हर्ष मनाते हैं। (**नः**) हमारी (**महः**) बढ़ती, उन्नति (**वै**)अवश्य (**भविष्यति**) होगी।

उसकी जब कृपा दृष्टि से वर्षा हो जाती है तो ग्रीष्म के असह्य तापमान के कारण दग्ध पृथिवी पर लहलहाते खेत झूम उठते हैं, मुंहबाये पशुओं और चोंचें खोले पक्षियों की जान में जान आ जाती है, धूप, गर्मी, पित्ताधिक्य से कुम्हलाये हुए मानव हृदय प्रफुल्लित हो उठते हैं। ऐसे कृपासिन्धु परमेश्वर की सीमा कैसे बांधी जा सकती है ?

न उत स्ववृष्टि मदे अस्य युध्यतः—(**न उत**=**नापि** —भी नहीं; **स्ववृष्टि**=**स्वकीयानां घनानामिव प्रेरितानां पदार्थानां शस्त्राणां जलानां वा वर्षणं प्रति**—अपने पदार्थों की रक्षा के लिये; **मदे**=**आनन्दे** – आनन्द में; **अस्य**=**मेघस्य**—मेघका; **युध्यतः**=**युद्धमाचरतः** – युद्ध करते मेघ वा सूर्य के सामने विजय नहीं होता वैसे;—महर्षि भाष्य) काले-नीले बादल जो गर्जन-तर्जन करते हुए मानो एक दूसरे पर गुर्राते हैं और दो प्रतिद्वन्द्वी वीर-योद्धाओं के सदृश जो मद-मत्त हो परस्पर घातक प्रहार करने के लिये समरांगण में एक-दूसरे पर टूट-टूट पड़ते हैं; जैसे ये सेनानी अपने सुमार्जित, चमकीले शस्त्रास्त्रों की चकाचौंध से अपने प्रतिकूल शस्त्रपाणियों को डराते-धमकाते, अपने-अपने विविध वाहनों पर चढ़े आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार विविध रंगों, अनेक आकारों और अनेक परिमाणों के वृत्र (मेघ– अभ्र-बादल) गर्जन-तर्जन करते, बिजुलियाँ चमकाते शस्त्रास्त्रों की झंकार और धुआंधार भरमार की तरह विस्तृत-विशाल क्षेत्र में अगणित जल-कण बरसाते अथवा यदा-कदा हिम-पिण्ड-प्रपात भी करते देखे जाते हैं वे भरसक प्रयत्न करने पर भी उस सर्व व्यापक जगज्जननी की सीमा को आंक नहीं सकते, उसका परिमाण नहीं माप सकते,—इतना बड़ा है वह परमात्मा।

एकः चकृषे विश्वम् अन्यत् आनुषक्— (**एकः**=**असहायः**— सहाय रहित, अद्वितीय जगदीश्वर; **चकृषे**=**करोषि** करता है; **विश्वम्**=**जगत्**—जगत् को; **अन्यत्**=**द्वितीयं, भिन्नम्**—अपने से भिन्न, द्वितीय; **आनुषक्**=**व्याप्त्यानुषक्तमुत्कृष्ट-गुणैरनुरक्तमाकर्षणेनानुयुक्तं वा**—अपनी व्याप्ति से युक्त किया है, इससे आप उपासना के योग्य हैं— महर्षि भाष्य) हे जगदीश ! आप अकेले ही स्वसामर्थ्य से सृष्टि की उत्पत्ति, इसकी स्थिति तथा समय आने पर प्रलय आदि अद्भुत कर्म करने वाले हो। आप स्वयं सर्वशक्तिमान् हो, अतः अपने इन अद्भुत कर्मों में किसी दूसरी शक्ति या व्यक्ति की अपेक्षा नहीं है। आप सर्वव्यापक भी हैं। विश्वरचयिता होने के साथ इसके कण-कण में व्याप्त भी हो; परन्तु हो इससे एक-दम अलग, भिन्न, अलहदा; आप इस सृष्टि को अपने में से नहीं रचते, अपितु त्रिगुणात्मक प्रकृति के विविध अवयवों में अपनी ईक्षण शक्ति से विकृति पैदा करके इसे बनाते हो और अपने निश्चित निर्धारित नियमों के अनुसार समय आने पर इसकी प्रलय भी कर डालते हो। हर्ष का विषय है कि आप कभी भौतिक सृष्टि का रूप धारण नहीं करते।

गढ़न भंजन समरथ सुआमी सो किउं मनों विसारे

जो परमात्मा उत्पत्ति और प्रलय करने वाला है, उसे मन से विस्मृत क्यों करते हो वह तो

बाजीगरि जैसे बाजी पाई, नाना रूप भेष दिखलाई।
सांग उतारि थंम्हिओ पासारा, तब एको एकंकारा ॥१॥

(रागसूही पहला ५, घरु १, सबदु १, पन्ना ७३६)

अर्थात्—संसार की उत्पत्ति के बाद प्रलय के समय सारा खेल खत्म करके वह ओंकार ब्रह्म अकेला ही निर्विकार, निराधार मौजूद रहता है।

अन्तमानशुः—(**अन्तम्=सीमानम्**—अन्त अर्थात् सीमा को; **आनशुः=प्राप्नुवन्ति**—प्राप्त होते हैं, हे परमात्मन् जैसे- महर्षि भाष्य) परमेश्वर 'इतना ही है', यहाँ इसकी सीमा समाप्त है, ऐसा कोई भी नहीं कह सकता। उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण नहीं किया जा सकता। वह अनन्त है, असीम है। अतः हम उसे सदा, सर्वदा, सर्वत्र योग साधन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

तात्पर्य—परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा का अन्त, सीमा, परिमाण, इयत्ता, परिच्छेद, ऋषि-मुनि, देव-दानव-मानव कोई भी नहीं निर्धारित कर सकता। सौर-मण्डल-उपग्रह, आकाश-गंगा स्थित अगणित-अनन्त तारा-मण्डल, मध्यवर्ती लोक-लोकान्तर, भूमि, पृथिवी पर के सागर, अन्तरिक्ष-स्थित जल-राशियाँ, समरांगण में जैसे मद-मत्त योद्धा सिंह गर्जना करते हुए परस्पर घात-प्रहार करते, सुमार्जित शस्त्रास्त्रों को चमकाते और एक दूसरे पर निरन्तर चोट करते हैं, उसी तरह गर्जते बादल, चमकीली बिजुली और शस्त्रवर्षण की भांति जल-कणों के बरसाने और हिमपिण्ड प्रपात करने वाले रंग-बिरंगे मेघमण्डल आदि प्राकृतिक तत्त्व जो समुद्रों में से वाष्प-रूप जल-कणों को आकर्षित करके द्युलोक में ले जाते और समय पर वर्षा के रूप में निरन्तर बरसने लगते हैं, ये सब भी प्रभु की सीमा का निर्धारण नहीं कर सकते; क्योंकि वह सर्वव्यापक परमात्मा कण-कण में ओत-प्रोत है। वह एकाकी अन्य किसी शक्ति या व्यक्ति की सहायता पर निर्भर न करता हुआ अपने ही सामर्थ्य से इस अद्भुत संसार की अनोखी रचना, विलक्षण पालन और विस्मय-जनक प्रलय कर देता है। वह स्वयं इस प्राकृत जगत् से सर्वथा अलग रहता है, स्वयं इसका रूप धारण नहीं करता और न इस सब कुछ को अपने में से निर्माण करता है; प्रत्युत अपने ही निर्धारित नियमों के अनुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति में विकृति उत्पन्न करके अपने इन महान् कार्यों को करता रहता है। हमारी नम्र प्रार्थना यही है कि ऐसा अनन्तगुण बिभूषित प्रभु हमें प्राप्त हो और सर्वदा, सर्वत्र हमारी रक्षा करता रहे।

Oh God, Possessing Supreme Might, Thou art the Master of all power and pelf.

Oh devotee, God forbid that someone should presume that His Being terminates somewhere. No one can put a limit to, or measure the pervasiveness of God's Being. The sun and other planets, the highest heavens, the earth, and even the smallest heavenly bodies among those intervening, cannot reach the extremities of His Being. 'अनुव्यचः' For, he is immanent in and between all things with the completeness of his Being. 'न सिन्धवः' The waters accummulated in the atmospheric region by solar evaporation from where they fall down on the earth as rain, and the whole world below, cannot reach the end of his B ing, 'न उत स्ववृष्टि मदे' not even the clouds attacking each others with sprays of watery vapour in the

welkin, like lusty warriors meeting in combat on the field of battle, their thundering and lightning, can reach the end of pervasive Being of God.

Oh supreme spirit, who can grasp the omnipresence of thy Being ? 'एकः' Solely, without any helper distinct from thee only by Thy own might 'चकृषे' thou makest 'विश्वम्' the whole universe 'आनुषक्' being all along pervasive in it. How then can the creatures of this universe grasp thy ommipresent Being ? 'अन्यत्' yet thou art entirely distinct from the universe, never assuming its form, for thou (docs) not create it from thy ownself, but on the contrary makest, supportest, and dissolvest in time only by thy own ommipotence. We are therefore sure of thy company everywhere and at all times.

नरेन्द्र छन्द

'सूर्य' भूमि आकाश सिन्धु भी, पार न जिसके पावे,
सब में व्याप्त सदा परमेश्वर, अंत न जिसका आवे ।
वृष्टि बाणयुत युद्धशील जहां, मेघ सदा बिनसावे,
एकाकी रह पृथक् प्रकृति से, सारा विश्व बनावे ।।१५।।

सोलह

प्रार्थना विषय

ओ३म् ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकेतुना विश्वं सुमत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः॥१६॥

अष्टक १०, अध्याय ३, वर्ग १०, मन्त्र ४
ऋग्वेद ————————————
मंडल १, अनुवाक ८, सूक्त ३६, मन्त्र १०

पदच्छेद—ऊर्ध्वः। नः। पाहि। अंहसः। नि। केतुना। विश्वं। सम्। अत्रिणम्। दह। कृधि। नः। उर्ध्वान्। चरथाय। जीवसे। विदाः। देवेषु। नः। दुवः।

पदार्थ

हे सभापते आप

ऊर्ध्वः	
नः	हम लोगों को
पाहि	
अंहसः	दूसरे का पदार्थ हरण रूप पाप से
निपाहि	निरन्तर रक्षा कीजिये
केतुना	बुद्धि के दान स
विश्वं	सब
सम्	
अत्रिणम्	अन्याय सें दूसरे के पदार्थों को खाने वाले शत्रु मात्र को
दह-कृधि	अच्छे प्रकार जलाइये
नः	हमको
ऊर्ध्वान्	बड़े-बडे गुणकर्म स्वभाव वाले सबसे उत्कृष्ट आप
चरथाय	ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिये
जीवसे	सम्पूर्ण अवस्था होने के लिये
विदाः	प्राप्त कीजिये
देवेषु	धार्मिक विद्वानों में
नः	हम लोगों को
दुवः	सेवा को

अन्वयः—हे सभापते त्वं केतुना प्रज्ञादानेन नोंहसो निपाहि विश्वमत्रिणं शत्रुं संदह ऊर्ध्वस्त्वं चरथाय न ऊर्ध्वान् कृधि देवेषु जीवसे नो दुवो विदाः ॥

भावार्थः—हे सभापते आप बुद्धि के दान से हम लोगों की दूसरों के पदार्थ हरण-रूप पाप से निरन्तर रक्षा कीजिये। अन्याय सें दूसरों का पदार्थ खाने वाले सब शत्रुमात्र को अच्छे प्रकार जलाइये और सबसे उत्कृष्ट आप (चरथाय) ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिये हम लोगों को बड़े-बड़े गुण, कर्म, स्वभाव वाले कीजिये तथा हमको धार्मिक विद्वानों में सम्पूर्ण अवस्था होने के लिये (दुवः) सेवा को (विदाः) प्राप्त कीजिये।

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान् ब्रह्मन्! आप "**ऊर्ध्वः**" सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो, तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा करो। हे सर्वपाप प्रणाशकेश्वर! हमको "**केतुना**" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान दे के "**अंहसः**" अविद्यादि महापाप से "**निपाहि**" नितरां पाहि सदैव अलग रक्खो।, तथा "**विश्वम्**" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र! न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी "**अत्रिणम्**" हमसे शत्रुता करता है उसको और काम, क्रोधादि शत्रुओं को आप "**संदह**" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ) "**कृधि न ऊर्ध्वान्**" हे कृपानिधे! हम को विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, **स्वदेश सुख सम्पादन** आदि शुभ गुणों में अधिक उत्तम करो तथा "**चरथाय जीवसे**" सबसे अधिक आनन्द-भोग, सब देशों में अव्याहत-गमन (इच्छानुकूल जाना आना) नीरोग देह, शुद्ध मानस-बल और विज्ञान इत्यादि के लिए हमको उत्तमता और अपनी पालना युक्त करो। "**विदाः**" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "**देवेषु**" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठा-युक्त सदैव हमको रक्खो ॥१६॥

स्वाध्याय—**ऊर्ध्वः=सर्वोत्कृष्टः**—(सबसे उत्कृष्ट, **महर्षिभाष्य**) हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्मन्! आप सबसे ऊँचे हैं **(ऊँचे ते ऊँचा भगवंत**—**सुखमनी)** सबसे उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव वाले हो। हमें भी उच्चतम सद्गुणों से विभूषित कीजिये और साथ ही हमें ऊर्ध्व लोकों में वरिष्ठ समाज में उच्चासनासीन कीजिये, प्रशंसित पदों का, स्थानों का अधिकारी बनाइये।

केतुना=प्रकृष्ट ज्ञान दानेन—(बुद्धि के दान से, महर्षिभाष्य) परब्रह्म परमेश्वर! आप ज्ञानियों के महाज्ञानी, विज्ञानियों के महाविज्ञानी हो। विश्व-भर के विज्ञानवेत्ता, सब प्रकार की भौतिक विद्याओं में निष्णात आप द्वारा प्रदत्त विद्या-ज्ञान-विज्ञान से ही उत्तम पदवी प्राप्त करते हैं, नित्य-नये अनुसन्धानों और गम्भीर खोजों के अनन्तर चकित कर देने वाले चमत्कारपूर्ण आविष्कार कर पाते हैं इसलिए हम भी याचना करते हैं कि हमें भी उत्कृष्ट बुद्धि, महान् मेधा और उच्चतम ज्ञान-विज्ञान प्रदान करो ताकि हम भी अपने समाज और राष्ट्र में प्रशंसित स्थान प्राप्त करके पुरखाओं का नाम उज्ज्वल कर सकें।

अंहसः=(परपदार्थ हरणरूप पापात्—दूसरों के पदार्थ हरणरूप पाप से—म० भा०), **निपाहि=(निपाहि=नितरां पाहि**—निरन्तर रक्षा कीजिए—म० भा०) परमपिता परमात्मन्! हमें अविद्यान्धकार से सदा पृथक् रखिये, बचाइये। **(तमसो**

मा ज्योतिर्गमय—अन्धकार से निकालकर ज्योति में, प्रकाश में ले जाइये) अविद्या पाप की जननी और अविवेक, अज्ञान सब प्रकार के पापों का जनक है। पूरा अज्ञान भी कदाचित् कुछ कम दुःखदायी हो जैसे घुप्प अन्धेरे में निबड़ अन्धेरे में साँप की रस्सी और रस्सी का साँप दिखाई नहीं देता; परन्तु अर्धज्ञान. प्रकाश और तमिस्रा का सम्मिश्रण (घुस-मुस) कुछ अन्धेरा और कुछ-कुछ रोशनी ही विपर्य्यय ज्ञान का कारण और प्रायः दुःख का हेतु सिद्ध होता है। इसी अवस्था में ठूंठ में तस्कर और मानव में ठूंठ का भ्रम पैदा होता है। प्रभो ! ऐसी कृपा करो कि हम पूर्ण विद्या पढ़ें और उच्च ज्ञान को प्राप्त करें ताकि संसार में से अज्ञान के अन्धकार, अविद्या की तमिस्रा को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकें। इसीलिए भगवान् दयानन्द ने आर्य समाज के आठवें नियम में लिखा—**"अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए"**। यह सर्वविदित नियम है कि जब तक अविद्यान्धकार का नाश न हो जाय तब तक ज्ञान-प्रकाश नहीं हो सकता और जब तक प्रकाश न हो जाय तब तक सदसद्विवेकिनी बुद्धि की प्रगति के स्वप्न देखना वन्ध्यापुत्र की बारात में जाने की दुराशा की तरह अनर्गल प्रलाप मात्र है और कुछ नहीं।

कहते हैं कि कोई भिक्षा-वृत्ति व्यक्ति किसी गृहस्थ के स्थान पर भोजन प्राप्त्यर्थ पहुँचा। उस घर की देवी ने क्षीर-भोजन (तस्मै) प्रदान करना चाहा परंतु जब वह भिक्षुक-बाबा के कमण्डलु में क्षीर उण्डेलने लगी तो उसमें गोबर भर रहा था। देवी ने कहा—'बाबा ! पहिले अपने भिक्षा-पात्र को स्वच्छ करो, तभी भोजन ग्रहण करने के अधिकारी बन पाओगे।' गन्दे, गोबर पूरित कमण्डलु में डालकर मैं इस उत्तमान्न को भी खराब नहीं कर सकती। बाबा ने वैसा ही किया, तब उसे भर पेट 'तस्मै' प्राप्त हो सकी। इसीलिए वेदादेशानुसार हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं—**'विश्वानि दुरितानि परासुव'** हमारे सारे दुर्गुणों, दुर्व्यसनों, दुराचारों, पापों, अपराधों और अविद्यांधकारों को दूर करो। जब प्रभु के दरबार से यह वर मिल जाय फिर हम याचना करने के अधिकारी बनने के उपरान्त याचना करते हैं, **"यद्भद्रं तन्न आसुव"** जितने कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ हैं कि हे **'देव सवितः'** सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता सकलैश्वर्ययुक्त देव ! वे सब हमें प्राप्त कराओ। विधि-पूर्वक 'दोषापनयन' हो जाने पर ही 'गुणाधान' की बारी आती है।

अत्रिणम् सन्दह—**विश्वं (निपाहि)**—(**अत्रिणम्=अत्ति भक्षयत्यन्यायेन पर-पदार्थान् यः स शत्रुस्तम्**—अन्याय से दूसरों के पदार्थों को खानेवाले शत्रुमात्रको; **सन्दह=सम्यक् भस्मीकुरु**—अच्छे प्रकार से जलाइये; **विश्वं=सर्वं**—सब महर्षि भाष्य) हे जगत् पिता ! पर पदार्थ हरण करने वाले जो भी हमारे शत्रु हैं; हमारे भाग के पदार्थों को हड़पने वाले हैं; हमारे अधिकारों को छीननेवाले हैं; हमारे स्वत्वों पर छापा मारनेवाले हैं; हमारी धन-सम्पत्ति लूटनेवाले हैं; हमारी भूमि, पशु अथवा देवियों पर गृध्र दृष्टि रखने वाले हैं, उन्हें भली-भाँति भस्मीभूत् करो, पूरी तरह से जला डालो, समाप्त कर दो, उनका खुरा-खोज मिटा डालो ताकि वे संसार में अनाचार, अत्याचार न फैला सकें। प्रभो ! कृपा करो कि इस प्रकार के अपराधियों, पापियों का सर्वनाश करके शेष सारे संसार का सर्व प्रकार से संरक्षण करो।

कृधि न ऊर्ध्वान्—(**कृधि=कुरु**—करो; **नः=अस्मान्**—हमको; **ऊर्ध्वान्=उत्कृष्ट गुण सुख सहितान्**=बड़े-बड़े गुण-कर्म-स्वभाव वाले—महर्षि भाष्य) हे

दयानिधे भगवन् ! हमको विद्या, धन, सम्पत्ति, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, स्वराज्य, सुराज्य, साम्राज्य, चक्रवर्ती राज्य सम्पादनार्थ सब देहधारियों से अधिक सम्पन्न करें । आप सर्वोत्तम हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं, हमें भी ये गुण प्रदान कीजिए। हमारे जो समान स्तर के व्यक्ति हैं हमें उन सब में धीरता, वीरता, गम्भीरता, सहनशीलता, बुद्धिमत्ता-दूरदर्शिता, हस्तलाघवता, फुर्ती-चुस्ती, स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वदेश की सेवा, उन्नति तथा मान-प्रतिष्ठा की स्थिर स्थापना के लिए बड़ी-से-बड़ी परीक्षा में पड़ने, गम्भीरतम चुनौती का सामना करने और बृहत्तम बलिदान की भावना प्रदर्शित करने और जी-जान पर खेल जाने तक की सामर्थ्य प्रदान करो ।

चरथाय जीवसे – (**चरथाय**=**चरणाय** - ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिये, **जीवसे**=**जीवितुम्** —सम्पूर्ण अवस्था होने के लिए – महर्षि भाष्य) परमानन्दस्वरूप विभो ! आपके कृपा-कटाक्ष से हम हर प्रकार के सांसारिक सुख और परमार्थिक आनन्द के भागी बनें । अपने व्यवसाय-धन्धों के सम्बन्ध में अथवा धर्म-प्रचार और संस्कृति प्रसार के उद्देश्य से देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में अव्याहत गति से जाने-आने-ठहरने की सब प्रकार की सुविधाएँ हमें प्राप्त हों । हमारा मन बलिष्ठ, तन नीरोग, मस्तिष्क विकसित और बुद्धि सदसद्विवेकिनी प्रदान करो ताकि हम योग-क्षेम को उपलब्ध करके अभ्युदय और श्रेयस का सुखानन्द भोग सकें ।

विदाः नः दुवः देवेषु – (**विदाः**=**लाभाय** – प्राप्ति के लिये; **नः**=**अस्माकं** —हम लोगों को; **दुवः**=**परिचर्याम्**—विद्वत्सु ऋतुषु वा; **दुवः**=**परिचर्याम्**—सेवा को—महर्षि भाष्य) प्रभो ! हम जो आपके भक्त हैं, आपके सेवक हैं, आपको ही अपना इष्ट मानते हैं, हमको विद्याविभूषित करके सब प्रकार से धन सम्पन्न कीजिए, हमारी वाणी में ओज, उच्चरित शब्दों में शक्ति और भावों में गम्भीरत प्रदान कीजिए ताकि विद्वद् गोष्ठियों में, सन्त समाजों में, देव पुरुषों की सभाओं सोसाइटियों में उच्चासन के अधिकारी, मान-सम्मान के पात्र और मान-प्रतिष्ठा हक़दार समझे जायें ।

तात्पर्य—हे परमात्मन् ! आप सबसे ऊँचे हैं, उत्कृष्टतम गुणों के आगार हैं। हमें विविध प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, सुशिक्षा प्रदान करो। हमारे, हमारे देश के, हमारे राष्ट्र के शत्रुओं, विशेषतः हमारे घातक शत्रु कुकाम, कुक्रोध, कुलोभ, कुमोह और दर्प-अहंकार आदि वैरियों को मूल से उखाड़ फेंकिये और परद्रव्य लोलुप, पर-स्वत्व-गृध्र-दृष्टि, परधनापहारी, परस्त्री सेवी दानवों से हमारी और सारे संसार की रक्षा कीजिये । हमारे समस्त दुर्गुण दूर करके हममें सद्गुणों का आधान कीजिये ताकि हम अपने समान-स्तर व्यक्तियों में सर्वोत्कृष्ट सम्मानित स्थान प्राप्त कर सकें और जिस प्रकार भुवन-भास्कर द्योतित पदार्थों में उत्कृष्टतम स्थान रखते हैं, हम भी उनका अनुसरण कर सकें। हमें अमूल्य विद्या-धन, उत्कृष्ट सांसारिक सम्पत्ति और हार्दिक उदारता प्रदान कीजिये । हमें अपने रचित संसार में बे-रोक-टोक गति, अव्याहत संचरण व्यवस्था प्रदान कीजिये, ताकि हम जहाँ चाहें जावें, व्यापार धन्धा करें शिल्प-विद्या तथा अन्य ज्ञानों-विज्ञानों का आदान-प्रदान कर सकें, सम्पत्ति-संस्कृति-धर्म का अभीष्ट प्रचार करके '**कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्**' सारे जगत् को आर्य, धार्मिक, आपके भक्त, आचारवान्, शीलयुक्त व्रती महानुभाव बनाकर जगत् को सुख का स्थान बना सकें ।

Oh great God in thy infinite glory above all 'ऊर्ध्वः' thou surpassest all in goodness. Vouchsafe that we may attain great virtues, and protect us in the higher sphere of life. Oh Lord destroyer of all evil 'केतुना' bestow upon us right knowledge of different types and 'निपाहि' ever keep us away 'अंहसः' from ignorance and such other evils. Be also Gracious ever to protect likewise the whole universe. Oh true friend of mankind and maker of justice 'सन्दह्' do thou compeletly scorch away 'अत्रिणम्' the foe that eats away our substances and worries us, and also anger, lusts and other evil passions. Oh merciful God 'कृधि नः ऊर्ध्वान्' raise us above all our fellow men possessing bodies like us, in knowledge, valour, fortitude, strength, prowess, skill, different types of material, wealth, power, courteousness, imperial sway, agreement of minds, mutual love and fellow feeling, ability and readiness to work for the prosperity of our fatherland and such other merits. Grant that (under all circumstances) 'चरथाय जीवसे' we may enjoy great bliss in life, freedom of movement according to our own wish all over the world, surpassing fitness of health and body, purity and strength of mind under thy ever vigilant aegis. We beseech thee, oh Lord, 'विदाः' Bestow 'नः' upon us Thy righteous devotees 'दुवः' riches and learning 'देवेषु' that we may command respect even among the elite.

अल्लाल छन्द

हे सर्वोपरि ! सब पापसे, अब मेरा उद्धार हो ।
वैदिक विज्ञान प्रताप से, कामादिक अरि छार हो ।
हममें शुभ शिक्षा शक्ति से, चिर जीवन संसार हो ।
बुधगण में विद्या भक्ति से, हम सबका सत्कार हो ।।१६।।

प्रार्थना विषय

ओ३म् अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वेदेवा अदितिः पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१७॥

अष्टक १, अध्याय ६, वर्ग १६, मन्त्र ७
ऋग्वेद—
मंडल १, अनुवाक १४, सूक्त ८६, मन्त्र १०

पदच्छेदः—अदितिः । द्यौः । अदितिः । अन्तरिक्षम् । अदितिः । माता । सः । पिता । सः । पुत्रः । विश्वे । देवाः । अदितिः । पंच । जनाः । अदितिः । जातम् । अदितिः । जनिऽत्वम् ।

पदार्थ

हे मनुष्यो तुमको चाहिए कि

अदितिः	नाश रहित
द्यौः	प्रकाशयुक्त परमेश्वर अथवा सूर्यादि प्रकाशमय पदार्थ
अदितिः	अविनाशी
अन्तरिक्षम्	आकाश
अदितिः	(नाश रहित)
माता	माँ वा विद्या
सः	वह
पिता	उत्पन्न करने, पालने वाला पिता
सः	वह
पुत्रः	औरस अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अथवा नियोग करके दूसरे क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र
देवाः	विद्वान् वा दिव्य गुण वाले पदार्थ
अदितिः	अविनाशी हैं तथा
पंच च	पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और
जनाः	जीव भी
अदितिः	अविनाशी हैं इस प्रकार जो कुछ
जातम्	उत्पन्न हुआ वा
अदितिः	अविनाशी अर्थात् नित्य है
जनित्वम्	होनेहारा है वह सब

अन्वय—हे मनुष्य ! युष्माभिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माताऽदितिः स पिता स पुत्रश्चादितिर्विश्वेदेवा अदितिः पंचेन्द्रियाणि जनाश्च तथा एवं जातमात्रं कार्यं जनित्वं जनयञ्च सर्वमदितिरेवेति वेदितव्यम् ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुमको चाहिये कि प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्यादि प्रकाशमय पदार्थ, अविनाशी आकाश, अविनाशी माया वा विद्या, अविनाशी वह उत्पन्न करने वा पालनेहारा पिता वह और स अर्थात् निज विवाह से उत्पन्न वा क्षेत्रज अर्थात् नियोग करके दूसरे के क्षेत्र में हुआ या विद्या से उत्पन्न पुत्र अविनाशी स तथा समस्त विद्वान् वा दिव्यगुण वाले पदार्थ अविनाशी हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ और जीव भी अविनाशी हैं। इस प्रकार जो कुछ उत्पन्न हुआ वा होनेहारा है वह सब अविनाशी अर्थात् नित्य है।

व्याख्यान—हे त्रिकालाबाध्येश्वर ! "**अदितिर्द्यौः**" आप सदा विनाश रहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो "**अदितिरन्तरिक्षम्**" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सबके अधिष्ठाता हो "**अदितिर्माता**" आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाश रहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो । "**स पिता**" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता और पालक हो और "**स पुत्रः**" सो ईश्वर आप मुमुक्ष धर्मात्मा और विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करने वाले हो "**विश्वेदेवा अदितिः**" सब देव=दिव्यगुण विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करने वाले अविनाशी परमात्मा आप ही हैं। "**पंचजना अदितिः**" पाँच प्राण (प्राण, अपान, समान, व्यान, और उदान) जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आपने रचे और आपके भी नाम हैं "**जातमदितिः**" वही एक चेतन ब्रह्म सदा प्रादुर्भूत है और कभी प्रादर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (अविनाश भूत) भी हो जाते हैं "**अदितिर्जनित्वम्**" वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् का (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं ॥१७॥

स्वाध्याय—हे तीनों कालों—भूत, वर्तमान, भविष्यत्—की पकड़ से परे परमेश्वर !

अदितिर्द्यौः:—(**अदितिः = नाशरहिता** — अविनाशी, **द्यौः=प्रकाशमानः परमेश्वरः**—प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्यादि प्रकाशमय पदार्थ—महर्षिभाष्य) आप सदा सर्वदा नाशरहित और स्वप्रकाशस्वरूप हैं। '**स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**' वह पूर्व कल्प-कल्पान्तरों में होने वाले पूर्व पुरुषाओं के, ऋषि मुनियों के भी गुरु हैं, शिक्षक हैं और त्रिकालाबाध्य हैं। उस पर समय का कोई प्रभाव नहीं होता । '**आदि अंत एके अवतारा—सोई गुरु समझी अहु हमारा**'—(रहिरास) '**न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः** (सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १) जिसका कभी नाश न हो उसे अदिति कहते हैं। '**दिवु क्रीड़ा विजिगीषाव्यवहारद्युतिः**=द्युतिमान्—स्वभाव से ही स्वप्रकाश, चमकीला, सबको चमकाने वाला ।

अदितिरन्तरिक्षम्—अदितिः=नाशरहिता — अविनाशी; **अन्तरिक्षम्=आकाशम्**—आकाश—महर्षिभाष्य) प्रभो ! आप सदा एक-रस रहने वाले हैं। आप में कभी भी और किसी प्रकार का भी छोटा अथवा बड़ा विकार उत्पन्न नहीं हो सकता । स्वभाव से ही आप अपरिवर्तनशील हैं। आप मुक्तिप्राप्त जीवों को अन-

श्वर, अकथनीय, अवर्णनीय, अनुपम, अद्वितीय आनन्द प्रदान करने वाले हैं। **अदितिः माता**—(**अदितिः—नाशरहिता**—अविनाशी; **माता=मान्यहेतुर्जननी विद्या वा**—मान्य हेतु जननी—माँ वा विद्या—महर्षिभाष्य) आप (**यो मिमीते मानयति सर्वान् जीवान् सा माता**)—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १—अर्थात् सकल जीवों के लिये मानप्रद होने अथवा '**माता कस्मात् निर्माता भवति** सबका निर्माण करने वाला होने के कारण सब चराचर जगत् की माता-पद-प्राप्त हैं।

सः पिता सः पुत्रः—(**पिता=जनकः पालको वा**—उत्पन्न करने वा पालने वाला पिता—म० भा०) **पुत्रः=औरसः क्षेत्रजार्वािवद्याजो वा**—औरस अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अथवा नियोग करके दूसरे क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र—म० भा०) परमपिता ! आप सारे विश्व-जगत् के एक-एक प्राणी के पिता हो, पालक हो, रक्षक हो **पिता=पाता वा पालयिता वा जनयिता वा**—रक्षक, पालक, उत्पादक को पिता कहते हैं।

जनयितोपनयिता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पंचैते पितरः स्मृताः॥ (पंचतंत्र)

अर्थात्—उत्पन्न करने वाला (सांसारिक जनक), उपनयन धारण कराने वाला (गुरु), और जो विद्या का देने वाला है (आचार्य), आवश्यक भोज्य-पेय पदार्थ प्राप्त कराने वाला (जो भी हो) और भय से बचाने वाला, रक्षा करने वाला (राजा, न्यायाधीश, पुलिस अधिकारी, सेनापति आदि) ये पाँच सज्जन पिता कहलाते हैं। परमेश्वर ! इस दृष्टि से भी आप सबके पिता हैं।

सः पुत्रः—(**पुत्रः**—प्रभो ! आप सबको पापों-तापों-सन्तापों से, दुराचारों-दुर्व्यवहारों से सुरक्षित करने वाले हैं, इनसे दूर रखने वाले हैं; निम्नस्तरों से उच्च स्थिति तक पहुँचाने वाले हैं। '**पुन्नरकं ततस्त्रायते इति पुत्रः**' पुन्नाम नरक से, दुःख विशेष को सुरक्षित रखने वाले से जहाँ आप माता कहे जाते हैं, पिता नाम से पुकारे जाते हैं, वहाँ पुत्र संज्ञा से भी सम्बोधित किये जाते हैं।

विश्वेदेवाः अदितिः—विश्वे=सर्वे समस्त; **देवाः=विद्वांसो दिव्य गुणाः पदार्था वा**—विद्वान् वा दिव्यगुणयुक्त पदार्थ—महर्षि भाष्य) परमपिता जी ! आप में सकल दिव्यगुण विद्यमान हैं; विश्व का उत्पादन, पालन, धारण, संरक्षण एवं कल्पान्त का समय आने पर, अवधि समाप्त होने पर अपने निश्चित प्राकृतिक नियमों के अनुसार प्रलय करने वाले भी हैं। समूचे ब्रह्मांड को मर्यादा में, निर्णीत नियमों में, निश्चित अनुशासन में अपने सदा सत्य, सनातन, शाश्वत अपरिवर्तनीय कानूनों में जकड़े हुए हैं, पकड़े हुए हैं।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह किसी की सामर्थ्य नहीं कि आपकी स्थिर आज्ञाओं का रत्ती-भर भी उल्लंघन कर सके।

पंचजनाः अदितिः—(**पंचजनाः=इन्द्रियाणि**—पाँच इन्द्रियाँ; **अदितिः—उत्पत्तिनाश रहिताः**—अविनाशी—महर्षि भाष्य) विश्वनाथ ! पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्रकार की प्राणवायु—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान—की सृष्टि भी आपने ही की है, आप ही संसार के जीवमात्र को प्राण-रूपी जीवन प्रदान

करने वाले हैं और यह आपका नाम भी है अतः नामी (आप) के साथ 'नाम' (पाँच इन्द्रियाँ और पाँच प्राण) भी अविनाशी हैं। आपको वेद ने 'प्राण' नाम से भी स्मरण किया है।

ओ३म प्राणः प्रजा अनुवस्ते पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न॥

(अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ४, मन्त्र १०)

अर्थात्—(**पिता पुत्र निवप्रियम्**) जैसे कृपालु पिता अपने प्यारे पुत्र को वस्त्र से आच्छादित करता है, ऐसे ही (**प्राणः**) चेतनस्वरूप, प्राण-प्रदाता प्रभु (**प्रजा अनुवस्ते**) मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि प्रजाओं के शरीरों में व्याप्त होकर बस रहा है (**यत् च प्राणति**) और जो जंगम वस्तु चलन आदि व्यापार कर रही है (**यत् च न**) और जो स्थावर वस्तु व्यापार नहीं कर रही है (**प्राणः सर्वस्य ईश्वरः**) उस चराचर स्वरूप सब जगत् का चेतन स्वरूप 'प्राण' ही ईश्वर है अर्थात् सबका प्रेरक स्वामी है।

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजुर्वेद अध्याय २५, मन्त्र २१)

अर्थात्—(**यः**) जो (**प्राणतः**) प्राण वाले, जंगम (**निमिषतः**) अप्राणि रूप स्थावर (**जगतः**) जगत् का (**महित्वा**) अपने अनन्त महिमा से (**एक इत्**) एक ही (**राजा**) विराजमान राजा (**बभूव**) है (**यः**) जो (**अस्य**) इस (**द्विपदः**) मनुष्य और पक्षी आदि तथा (**चतुष्पदः**) गौ आदि पशुओं के शरीरों की (**ईशे**) रचना करता है हम उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) सकलैश्वर्य देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (**हविषा**) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (**विधेम**) विशेष भक्ति करें।

जातमदितिः अदितिर्जनित्वम्—(**जातम्=यत्किंचिदुत्पन्नम्**—इस प्रकार जो कुछ पैदा हुआ था; **अदितिः—नाशरहिता**—अविनाशी; **जनित्वम्=उत्पत्स्यमानम्=** होनेहारा है वह सब; महर्षि भाष्य) आप सदा प्रादुर्भूत, विद्यमान, सनातन, शाश्वत, अविकारी, अपरिवर्त्तनशील हैं। अन्य सभी पदार्थ—जल, स्थल, नभ, अग्नि, वायु, वन, पर्वत, सागर, नदी, नाले, सरिता, चार प्रकार—अण्डज, जरायु, स्वेदज, उद्भिज—एक क्षण में विद्यमान हो जाते हैं, दूसरे क्षण में अपने मूल कारणों में लीन होकर अदृश्य हो जाते हैं। इसी लिये संसार को परिवर्त्तनशील कहा जाता है; क्योंकि यह क्षणभंगुर है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ (गीता २-२७)

अर्थात्—जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है और मरने वाले शरीर के अभिमानी जीव का पुनर्जन्म होना भी ध्रुव सत्य है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को समझाया—'क्योंकि जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु और मरने वाले का निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ। इससे भी तू इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने के योग्य नहीं है।' **अदितिर्जनित्वम्**—परमेश्वर! आप अविनश्वर हैं। समस्त विश्व—जगत् के निर्माता हैं, निर्माण के हेतु हैं।

तात्पर्य—हे त्रिकालाबाध्येश्वर ! आप ही केवल अविनश्वर हैं। सब प्रकार के विकारों से रहित, सबके अधिष्ठाता हैं। आप ही मुक्ति-प्राप्त भाग्यशाली आत्माओं को अनन्त, अनिर्वचनीय, शाश्वत आनन्द प्रदान करने वाले हैं। आप ही संसार के जनक, उत्पादक, पिता, पालनकर्त्ता हैं। आप ही जीवों को नरक अर्थात् विशेष दुःखों से और उनके कारण भूत पापों, अपराधों, दोषों, दुराचारों से सुरक्षित रखने वाले हैं। आप ही विश्वकर्मा हैं, अतः सृष्टि की उत्पत्ति, धारण तथा प्रलयादि महान् कार्य करने वाले हैं। आप ही पांच प्राणों और पांच उप-प्राणों की रचना करने वाले हैं और सबको प्राणरूपी जीवन देने के कारण आपका नाम प्राण भी है। आपके अतिरिक्त संसार के अन्य सब पदार्थ कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते; कभी दृश्य होते हैं, कभी अदृश्य; परन्तु आप शाश्वत, सनातन, अचल, अटल, अद्भुत, अडिग, अच्युत एवं एक-रस रहने वाले हैं। और विश्व के निर्माता और इसकी रचना के हेतु हैं। ऐसे अद्वितीय गुणागार प्रभु की हम शरण में आये हैं, वही सर्वदा हमारी रक्षा करे।

Oh Lord God, beyord the influence of the three divisions of time. **'अदितिः द्यौः'** Thou art ever effulgent by Thy own nature, never subject to corruption and **'अदितिः अन्तरिक्षम्'** Thou art never subject to change and always art controller of all. **'अदितिः माता'** Thou art the great respector of emancipated souls, and Bestower upon them of incessant bliss. **'सः पिता'** Imparishable by Thy divine nature, Thou art the Father and Protector; as well as **'सः पुत्रः'** the sanctifier of the righteous and the wise hangering for liberation, and their saviour from the shackles of miserable spheres of existence. **'विश्व देवाः अदितिः'** Thou are incorruptible supreme spirit, possessing all great virtues, namely, the capacities to create the universe in time and protect and control each being in it. **'पंच जनाः अदितिः'** the names of five vital forms are synonyms of Thy own holy name, and thou art the maker of those five vital airs pervading and keeping the universe going. **'जातम् अदितिः'** Thou alone art ever manifest as existing, all other beings coming into existence some time and going out of it when their physical composite is broken up. **'अदितिः जनित्वम्'** Oh imperishable God, Thou alone art the efficient cause of the birth of the world and none else can be.

अचलधृति वृत्त

अदिति गगन रवि, अदिति धरणिधर,
अदिति सुख जननि अदिति जनक वर।
अदिति सदय शुचि, अदिति गुणनिकर,
अदिति सकल जन, जनित जनन-कर ॥१७॥

अठारह

प्रार्थना विषय

ओ३म् ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्य्यमा देवैः सजोषाः ॥१८॥

अष्टक १, अध्याय ३, बर्ग १७, मन्त्र १
ऋग्वेद ———
मंडल १, अनुवाक १४, सूक्त ९०, मन्त्र १

पदच्छेद—ऋजु ऽनीति । नः । वरुणः । मित्रः । नयतु । बिद्वान् । अर्य्यमा । देवैः । सऽजोषाः ।

पदार्थ

ऋजुनीति	सीधी नीति से धर्म से धर्म बिद्या मार्ग को
नः	हम लोगों को
वरुणः	श्रेष्ठ गुणों से वर्त्तने
मित्रः	सबका उपकारी और
नयतु	प्राप्त करे
विद्वान्	धर्मात्मा, सज्जन, विद्वान्
अर्य्यमा	न्याय करनेवाला
देवैः	दिव्य गुणकर्म स्वभाव वाले बिद्वानों के
सऽजोषाः	समान प्रीति करनेवाला

अन्वय—यथेश्वरो धार्म्मिक मनुष्यान्धर्मं नयति तथा देवैः सजोषा वरुणो मित्रो ऽर्य्यमा विद्वानृजुनीति नो ऽस्मान् धर्म विद्यामार्गं नयतु ।

भावार्थ—जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त कराता है वैसे दिव्य-गुण, कर्म और स्वभाव वाले विद्वानों से समान प्रीति करनेवाला, श्रेष्ठ गुणों में वर्त्तने-वाला सत्य का उपकारी और न्याय करने वाला धर्मात्मा सज्जन बिद्वान् सीधी नीति में हम लोगों को धर्म विद्या मार्ग को प्राप्त करे ।

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर ! आप हमको "**ऋजुनीति**" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादि गुण विशिष्ट **चक्रवर्त्ती राजाओं** की **नीति** को "**नयतु**" कृपा दृष्टि से प्राप्त करो । आप "**वरुण**" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको **वरराज्य, वरविद्या, वरनीति** देओ तथा "**मित्रः**" सबके मित्र, शत्रुता रहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये, तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो हमको भी सत्यविद्या युक्त सुनीति देके **साम्राज्याधिकारी** सद्यः कीजिये, तथा आप "**अर्य्यमा**"

(यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो, सब जीवों के पापों और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो, सो हमको भी आप तादृश करें जिससे "**देवैः सजोषाः**" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आपमें रमण और आपका सेवन करने वाले हों। हे कृपासिन्धो भगवन् ! हम पर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त हो के **हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।**

स्वाध्याय – **वरुणः** – (**वरुणः=श्रेष्ठ गुण स्वभावः**—श्रेष्ठ गुणों में वर्त्तने वाला महर्षि भाष्य) हे सर्वोत्कृष्ट प्रभो ! आप सर्वोत्तम हैं, सर्वोपरि विराजमान हैं, वरणीय हैं, स्वीकरणीय हैं, कृपया हमें उत्तम राज्य, उत्तम नीति, उत्तम बुद्धि और उत्तम आचारयुक्त, उत्तम आर्य जीवन प्रदान कीजिये।

ऋजुनीति नयतु – (**ऋजुनीति=ऋजुः सरला शुद्धा चासौ नीतिश्च**—सीधी नीति से धर्म विद्या मार्ग को; **नयतु=प्रापयतु**—प्राप्त करे; महर्षि भाष्य) प्रभो ! हमें सरल, सीधी, प्रशस्त, सर्वप्रिय, पावन, पवित्र, सर्वहितकारक नीति प्रदान करो। हमारे हृदयों में कोमलता, मधुरता, मृदुता, आदि दैवी गुणों का आधान करें। ऐसी वरनीतिमत्ता के भागी बनाएं जिससे हम शीघ्र चक्रवर्ती राज्य के अधिकारी बन सकें।

मित्रः—(**मित्रः=सर्वोपकारी**—सबका उपकारी—महर्षि भाष्य) परमेश्वर ! आप सबके मित्र हैं; शत्रुता रहित हैं; विद्वेष की भावना आपको छू भी नहीं गई; आप सर्वसखा हैं, हितकारक हैं, सर्वोपकारी हैं; कल्याणस्वरूप और सबका कल्याण करने वाले हैं। किसी के अहितचिन्तक नहीं, अनिष्टकारी नहीं। प्रभो ! हमें भी इन सद्गुणों से विभूषित करो, ताकि हम 'अजातशत्रु' बनकर सुखपूर्वक जीवन यापन करते हुए दूसरों को भी सुखी जीवन व्यतीत करने के योग्य बना सकें।

ओ३म् दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥
(यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र १८)

अर्थात्—हे अनन्तबल महावीर परमात्मन् ! मुझे शुभ गुणों एवं विज्ञानादि का नाशक मत बनाओ, प्रत्युत सद्धर्मादि शुभ गुणों में स्थिर करो। सब भूतप्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें मैं भी निर्वैर होकर भूत प्राणी तथा अप्राणी, चराचर जगत् को स्वात्मवत्, स्वप्राणवत् प्रिय जानूं; पक्षपात छोड़कर प्रेम से स्नेह से हम परस्पर एक-दूसरे को निहारें।

ओ३म् देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥
(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १४, मन्त्र १३)

अर्थात्—हे (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (**देवानाम् देवः**) आप विद्वानों के भी परम विद्वान् हो। (**अद्भुतः मित्रः असि**) और उन विद्वानों के आश्चर्यरूप मित्र हो। (**वसूनाम् वसुः असि**) वसुओं के वसु हो (**अध्वरे**) यज्ञ में (**चारु**) अत्यन्त शोभायमान हो (**तव**) आपकी (**सप्रथस्तमे**) अति विस्तीर्ण (**शर्मन्**) सुखदायक (**सख्ये**) मित्रता में (**वयम्**) हम (**स्याम**) स्थिर रहें और (**मा रिषामा**) पीड़ित न होवें।

परमेश्वर ! आप सबके अद्भुत मित्र हैं, विचित्र सखा हैं, अजीब दोस्त हैं।

अर्य्यमा विद्वान्—(**अर्यमा**=**न्यायकारी**—न्याय करने वाले; **विद्वान्**=**अनन्तविद्य ईश्वर आप्त मनुष्यो वा**—धर्मात्मा सज्जन विद्वान्—महर्षि भाष्य)

परमात्मन्! आप न्यायकारी हैं, निष्पक्ष इन्साफ़ करने वाले हैं, सबके नियामक हैं। विश्वभर के समस्त विद्यमान पदार्थों को अपने न्याय नियम में, नियन्त्रण में रखने वाले हैं। **'यो ऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सो ऽर्यमा'**—जो सत्यन्याय के करने हारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य-सत्य नियमकर्त्ता है उसे अर्य्यमा कहते हैं - (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १) प्रभो! हमें भी न्यायकारित्व का गुण प्रदान करें, ताकि हम राग-द्वेष, ईर्ष्या-मत्सर से ऊपर उठकर संसार का कल्याण करते रहें। अपने कोई भी निजी स्वार्थ समक्ष न रखते हुए अपना एक-एक श्वास-प्रश्वास जगदुद्धार, न्याय प्रसार, विद्या प्रचार में लगा सकें। अपनी समस्त अभिलाषाओं, सम्पूर्ण आकांक्षाओं और सारी इच्छाओं को लोक-कल्याणार्थ पीछे फेंक कर कह सकें —

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥ (चरक)

अर्थात्—मैं अपने लिये न राज्य की अभिलाषा करता हूँ न सुख की आकांक्षा मुझे मोक्ष की भी कोई कामना नहीं। मेरा लक्ष्य केवल मात्र यह है कि किसी प्रकार दुःख सन्तप्त, रोग पीड़ित, व्याधिग्रस्त प्राणियों के दुःख, रोग, व्याधि का शमन कर सकूं। प्रभो! हमें बल प्रदान करो कि हम संसार-भर से ज्ञानाभाव, न्यायाभाव और अन्नाभाव आदि सब प्रकार के अभावों को दूर कर सकें।

विद्वान्—पिता! आप समस्त विद्याओं की असीम निधि हैं, ज्ञान के अथाह भण्डार हैं सर्ववित् और सर्वज्ञ हैं। (**सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है**—आर्यसमाज का नियमा संख्या १) पिता! हमें भी हर प्रकार की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यापारिक, व्यावहारिक विद्याओं का पात्र बनावें ताकि हम आपकी कृपा से अपने स्वराज्य को सुराज्य बनाकर चक्रवर्ती राज्य तक उन्नत कर सकें।

देवैः सजोषा—(**देवैः**=**दिव्यैर्गुणकर्मस्वभावैर्विद्वद्भिर्वा**—दिव्य-गुण-स्वभाव वाले विद्वानों से; **सजोषाः**=**समान प्रीति सेवी**—समान प्रीति करनेवाला—महर्षि भाष्य) प्रभो! आप विद्वानों के साथ प्रेम करने वाले हैं, हमें भी सामर्थ्य दीजिये कि हम उत्तम गुरुओं, श्रेष्ठ सज्जनों, विद्या-विलासी महानुभावों, आर्यत्वगुण सम्पन्न आपके आर्य पुत्रों, भक्तों की सत्संगति में रहा करें, उनके सद्गुणों में श्रद्धा रखते हुए उन्हें धारण करने का यत्न करें और वे महानुभाव भी हम पर स्नेह-सिक्त कृपा दृष्टि बनाये रक्खें।

तात्पर्य—हे वरुण, सर्वोत्कृष्ट, वरणीय, करुणावरुणालय विभो! आप सर्वोत्तम गुणों का अगाध सागर हैं, हमें भी गुणागार बनायें। आप सबके अकारण मित्र हैं, सर्वदा हितचिन्तक हैं। हमें भी प्राणिमात्र का मित्र बनने की शक्ति प्रदान कीजिये। विश्वेश्वर! आप यमराज हैं, निष्पक्ष न्यायकारी हैं। हमें भी शुद्ध न्याय-पथ का पथिक बनाएँ। आप सर्व विद्यामय हैं, विज्ञान भण्डार हैं, हमें भी विद्वान् तथा विज्ञानवान्

बनाएं। आप ऋजुनीति के प्रवर्तक हैं, हमें भी सरल, सीधी, स्वच्छ, पवित्र नीति का अनुसरण करने की योग्यता प्रदान करें। हमें ऐसा उत्साह, उद्यम और सामर्थ्य दें कि हम आपके विद्वान् पुत्रों, श्रद्धालु भक्तों, विद्या-विनोदी, परोपकारप्रिय सज्जनों की सत्संगति में अपने जीवन को व्यतीत करते हुए योग-क्षेम का उपभोग करते हुए, इस संसार में अभ्युदय, उन्नति, सुख और परलोक में निःश्रेयस-मुक्ति के परमानन्द के भागी बन सकें।

Oh Mighty Ruler over kings '**ऋजुनीति नयतु**' vouchsafe to lead us on, that we may attain the straight and scrupulous policy of government adopted by great sovereign rulers. '**वरुण:**' Thou art of surpassing excellence, bless us with an excellent kingdom, excellent wisdom, and a perfectly moral way of life. '**मित्रः**' Thou art the Friend of all and foe of none, make us also judges of men with friendly disposition towards all. '**विद्वान्**' Thou art the possessor of Supreme Wisdom, bless us with true wisdom coupled with a righteous policy and make us fit for sovereign imperial sway. '**अर्यमा**' The controller of all, Thou dispensest Thy labours regardless of likes and dislikes, and Thou dealest with the good and the evil deeds of all living beings according to the deserts of each; make us also like Thee so that in unison with the righteous and the wise, attaining great merits ourselves, we may ever enjoy the delectable experience of Thy presence, always resorting to Thee. Oh Ocean of Mercy, succour us that we may attain sound political wisdom so that our sovereign imperial sway may become a reality and ever advance.

ऋद्धि वृत्त

प्रभो ! हमें भी ऋजुनीति दीजे,
विद्वान् मित्रादि वरेण्य कीजे।
दयालुदेवाश्रय में लीजे,
बढ़े हमारा, न स्वराज्य छीजे॥१८॥

तात्पर्य—(वरुण:) सर्वोत्तम (**मित्रः**) सबसे प्रेम करने वाला (**विद्वान्**) सर्वज्ञ (**अर्यमा**) न्यायकारी (**देवैः सजोषाः**) विद्वानों के साथ प्रेम करने वाला परमात्मा (**नः**) हमको (**ऋजुनीति**) सरल नीति से (**नयतु**) चलावे।

(श्री स्वामी अच्युतानन्दजी रचित ऋग्वेदशतक मन्त्र ७९)

उन्नीस

प्रार्थना विषय

ओ३म् त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥१९॥

अष्टक १, अध्याय ६, वर्ग १९, मन्त्र ५
ऋग्वेद ————————————
मंडल १, अनुवाक १४, सूत्र १, मन्त्र ५

पदच्छेदः— त्वम्। सोम। असि। सत्ऽपतिः। त्वम्। राजा। उत। वृत्रऽहा। त्वम्। भद्रः। असि। क्रतुः।

पदार्थ

हे	
त्वम्	(परमेश्वर)
सोम	समस्त संसार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देने वाले
असि	है
सत्पतिः	अविनाशी जो जगत्कारण वा विद्यमान कार्यजगत् है उसके पालने हारे
त्वम्	परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारों के स्वामी विद्वान् आप
राजा	सबके स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण
उत	और
वृत्रहा	दुःख देनेवाले दुष्टों के विनाश करने हारे
त्वम	आप
भद्रः	अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा
असि	(है)
क्रतुः	इसी से आप सब विद्वानों के सेवने योग्य हैं, समस्त बुद्धि-युक्त वा बुद्धि देने वाले हैं

अन्वय—हे सोम! यतस्त्वमयं सोमो वा सत्पतिरस्युतापि त्वमयं च वृत्रहा राजासि अस्ति वा यतस्त्वमयं च भद्रोऽसि भवति वा क्रतुरसि भवति वा तस्मात्त्वमयं च विद्वद्भिः सेव्यः।

भावार्थ—हे समस्त संसार के उत्पन्न करने वाले वा सब विद्याओं के देने वाले परमेश्वर अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य जगत् है उसके पालनेहारे हैं और आप दुःख देनेवाले दुष्टों के विनाश करनेहारे सबके स्वामी हैं, जिस कारण

आप अत्यन्त सुख करनेवाले हैं वा समस्त बुद्धि-युक्त वा बुद्धि देनेवाले हैं, इसीसे आप सब विद्वानों के सेवने योग्य हैं।

व्याख्यान – हे **"सोम"** राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम सर्व सवनकर्त्ता (सबका सार निकालने वाले) प्राप्य स्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करने वाले हो। तुम्हीं सबके राजा **"उत"** और **"वृत्रहा"** मेघ के रचक, धारक और मारक हो, भद्रस्वरूप भद्र करने वाले और **"क्रतुः"** सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥१६॥

स्वाध्याय · **त्वं सोमः** असि —(**त्वं = परमेश्वरः** – परमेश्वर; **सोमः सकल जगदुत्पादक सर्वविद्याप्रद**—समस्त संसार को उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देने वाला; **असि = अस्ति** – है महर्षिभाष्य) हे सोम, सौम्य स्वभाव, विश्वरचयिता, सबका सवन करने वाले (सबका रस निकालने वाले) आप अपने सब भक्तों को, साधकों को सरलता पूर्वक प्राप्त होने योग्य एवं सबके रक्षक, कल्याणकारक, शान्तस्वरूप और शान्तिवर्धक हैं।

त्वं सत्पतिः असि – (**सत्पतिः = सत्यपथ्यकारिणो पालकः वा**—अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य जगत् है उसके पालनेहारे– महर्षिभाष्य) प्रभो ! आप सत्पुरुषों, सद्विद्याओं, सत्कर्मों के रक्षक हैं, पालक हैं, स्वामी हैं, अधिपति हैं, धार्मिक जनों के परमाश्रय हैं।

त्वं राजा वृत्रहा – (**राजा = सर्वाध्यक्षो, विद्याध्यक्षो वा** - सबके स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं; वा जिस कारण; **वृत्रहा = यो दुःखप्रदान् शत्रून् हन्ति** – दुःख देनेवाले दुष्टों को विनाश करने हारे; महर्षिभाष्य) पिता ! आप समस्त विश्व के राजा हैं, महाराजा हैं, आपका राज्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों पर सर्वदा अचल है। आप विश्व नियामक हैं। आकाश-स्थित मेघ-मण्डलों के रचक, धारक और मारक भी आप ही हैं। आपके निर्धारित मर्यादा, निश्चित-निर्मित नियमों के अनुसार अथाह सागर के अगणित जल-कण सूर्य-ताप से वाष्प रूप धारण कर, अभ्र बनकर वायु-वेग से अन्तरिक्ष में इतस्ततः दौड़ते फिरते हैं। आपके आदेशानुसार ही वे तड़ित् से प्रताड़ित होकर अपनी जल-धाराओं का निमुंचन कर देते हैं। वे स्वयं तो अपना अस्तित्व विनष्ट कर लेते हैं अपना रूप-रंग विकृत कर लेते हैं; परन्तु परोपकार-प्रिय व्यक्तियों की भाँति जो यज्ञमय जीवन व्यतीत करते हैं और परार्थ ही बलिदान हो जाते हैं, आपकी प्रकृति के अंश मरते-मरते भी सहस्रों निराश, हताश, अभाव-ग्रस्त, आपद्-पीड़ित, दुःखी-हृदय कृषिकारों, जोकि जलाभाव के कारण सूखती जा रही खेतियों के किनारे खड़े आकाश की ओर टक-टकी लगाकर कई दिनों और कई सप्ताहों से देखे जा रहे थे, ये अभ्र-मण्डल आपसे प्रेरित होकर जब बरसते हैं तो उन बेचारों की शुष्क-आशा-लताओं को पुनरुज्जीवित कर जाते हैं। जब आपके आदेशानुसार वायु के तीव्र झोंके इन्हें उड़ाकर पर्वतों पर ले जाते हैं तो यही बादल वहाँ हिमप्रपात का कारण बनते हैं। प्रभो ! आपकी लीला अपरम्पार है !

त्वं भद्रः असि क्रतुः —(**भद्रः = कल्याणकारकः सेवनीयो वा** – अत्यन्त सुख करनेवाले हैं वा; **क्रतुः प्रज्ञामयः प्रज्ञा हेतुर्वा** – समस्त बुद्धियुक्त वा बुद्धि देने वाले हैं—महर्षिभाष्य) परमात्मन् ! आप कल्याणस्वरूप हैं, भद्रकारक हैं, सकल शुभ-

कार्यों, पावन यज्ञों, हिंसारहित अध्वरों, ज्ञान-मखों और समस्त उत्तम कर्मों, शुभ कृत्यों के प्रेरक, पालक तथा अधिष्ठाता हैं। आप ही जगन्नियन्ता एवं जगज्जनक हैं। आप ही इस सृष्टि की उत्पत्ति, इसका पालन और अवधि समाप्त होने पर इसकी प्रलय आदि अद्भुत, अनूठे, अनुपम, अवर्णनीय महान् कार्य्यों का सुसम्पादन करने वाले हैं।

तात्पर्य – हे सर्वोत्पादक सोम ! आप सौम्य स्वभाव हैं। अपने भक्तों अथवा योग साधकों के लिये सरलता से, सुगमतापूर्वक प्राप्त होने योग्य हैं। आप सत्पुरुषों के सदा रक्षक हैं, पालक हैं। आप ही मेघ-मण्डल को रचकर और वायु स्कन्ध पर आरूढ़ करके इधर-उधर उड़े फिरने की प्रेरणा देते हैं और अपनी निश्चित व्यवस्था के अनुसार उनके विद्युत्-प्रहारों से फट जाने पर वर्षा तथा हिम प्रपात करने के लिये सन्नद्ध करते हैं, उद्यत करते हैं। आप समस्त ब्रह्माण्डों के सर्वोपरि विराजमान राजा भी हैं। आप सबका सदा-सर्वदा कल्याण करने, भद्रता बरसाने और सबके हित-चिंतन में सर्वदा व्यस्त रहने वाले हैं।

Oh God, Divine and Gentle Ruler, Lord of all beings. **'त्वं सोमः असि'** Thou art the Author of all Nature's products, Extractor of the essence of all gross matter in Thy Creative processes, and whose gentle nature is accessible to the righteous whose protector Thou art. **'उत त्वं राजा वृत्रहा'** Also Thou art Framer, Propeller and splitter of clouds into rain showers (as well as of all other natural phenomena baneficial to life or otherwise). **'त्वं भद्रः क्रतुः असि'** Thy divine nature is auspicious. Thou art the maker of Felicity, and Thou art the Creator of the whole universe.

तोमर छन्द

तुम सोम हो सुखसार
राजेश रम्याधार।
रचि मेघ कर संहार,
हो भद्र जग कर्त्तार॥१६॥

तात्पर्य - हे **(सोम)** सकल जगत् उत्पादक और सत्कर्मों में प्रेरक शान्त-स्वरूप, शान्तिदायक परमात्मन् ! **(त्वं सत्पतिः असि)** आप सत्पुरुषों के पालन करने वाले हो। आप ही सबके **(राजा)** स्वामी **(उत)** और **(वृत्रहा)** मेघों के सर्जक, धारक और मारक हैं। **(त्वम् भद्रः असि)** आप कल्याणस्वरूप कल्याणकारक और **(क्रतुः)** सबके कर्त्ता हो।

(श्री स्वामी अच्युतानन्दजी रचित ऋग्वेद शतक मन्त्र ६६)

प्रार्थना विषय

**ओ३म् त्व नः सोम विश्वतो रक्ष राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥२०॥**

अष्टक १, अध्याय ६, वर्ग २०, मन्त्र ३
ऋग्वेद—
मंडल १, अनुवाक ६, सूत्र ९१, मन्त्र ८

पदच्छेदः—त्वम् । नः । सोम । विश्वतः । रक्ष । राजन् । अघःऽयतः । न । रिष्येत् । त्वाऽवतः । सखा ।

पदार्थ

हे	
त्वम्	आप वा यह औषधि समूह
नः	हम लोगों की
सोम	सबके मित्र वा मित्रता देने वाले
विश्वतः	समस्त
रक्ष	रक्षा कीजिये वा यह औषधिराज रक्षा करता है
राजन्	सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाला
अघायतः	अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से
न	न
रिष्येत्	विनाश को प्राप्त होने वा सबका रक्षक जो औषधि-गण इसके समान औषधि का सेवने वाला पुरुष विनाश को न प्राप्त हो
त्वावतः	तुम्हारे समान पुरुष का
सखा	कोई मित्र

अन्वय—हे सोम त्वमयं च विश्वतो ऽघायतो नो ऽस्मान् रक्ष रक्षति वा । हे राजन् ! त्वावतः सखा न रिष्येद्विनष्टो न भवेत् ।

भावार्थ—हे सबके मित्र ! आप समस्त दोषकारी से हम लोगों की रक्षा कीजिये । हे राजन् ! सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाले तुम्हारे समान पुरुष का कोई मित्र विनाश को प्राप्त न हो ।

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "**अघायतः**" जो कोई प्राणी हममें पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "**विश्वतः**" उन सब प्राणियों से हमारी "**रक्ष**" रक्षा करो । जिसके आप सगे मित्र हो "**न रिष्येत्**" वह कभी विनष्ट

नहीं होता। जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो, उसको दुःख क्योंकर हो ॥२०॥

स्वाध्याय—**सोम राजन्**—(**सोम**=**सर्वसुहृत्सौहार्दप्रदो वा**—सबके मित्र वा मित्रता देने वाले; **राजन्**=**सर्वरक्षणस्याभिप्रकाशकः प्रकाशको वा**—सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाला—महर्षि भाष्य) हे सोम, हे राजन्, हे ईश्वर ! आप चन्द्रमा की भांति द्वेषानल विदग्ध ईर्ष्याग्नि से जले-भुने मानव हृदयों को उसी तरह शान्त करते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में आतप विदग्ध-भूमि को चन्द्रमा शीतलता-प्रदान से ठण्डा-ठार कर देता है। प्रभो ! चन्द्रमा की शीतलता की आपकी स्वाभाविक शान्ति के साथ तुलना करना नास्तिकता है; क्योंकि शशांक में जो यत्किंचित् शीतलता है वह आपकी ही देन है। वह आपके शील-स्वभाव का कोई नगण्य अंश भी नहीं। हमें भी सौम्यता, सुशीलता, शीतलता प्रदान करें। आप समस्त प्राकृतिक पदार्थों के निर्माता हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण, ग्रह-उपग्रह सब आपकी कारीगरी के मुँह बोलते चित्र हैं। आप इन सब के राजा हैं, इन सबके और सबके रक्षण-साधनों के प्रकाशक हैं, रक्षा करने वाले हैं। हमें भी ऐसी सामर्थ्य दें कि हम अपने आश्रितों की, भृत्य-वर्ग की, अपने आधीन कार्य करने वालों की सदैव प्रसन्नता प्राप्त करने और उन्हें हर हालत में सुरक्षित रखने की चेष्टा करते रहें।

त्वं नः विश्वतः अघायतः रक्ष - (**नः**=**अस्माकम्**—हम लोगों की; **विश्वतः**=**सर्वस्मात्**- समस्त; **अघायतः**=**आत्मनो ऽघमिच्छतो दोषकारिणः**- अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से—महर्षि भाष्य) पिता ! हममें जो भी व्यक्ति अथवा समूह पाप-प्रकृति, दुष्ट-स्वभाव, हिंसा-वृत्ति, पर-पीड़ा-विनोदी, दुराचार-प्रिय, परधनापहारी हो कृपा करके हमें उनसे और उन्हें हमसे दूर ही रखिये, पृथक् रखिये, उनसे हमारी रक्षा कीजिये।

त्वावतः सखा न रिष्येत् - (**त्वावतः**=**त्वत्सदृशस्य** - तुम्हारे सदृश पुरुष का; **सखा**=**मित्रः**—कोई मित्र; **न रिष्येत्**=**हिंसितो भवेत्**—विनाश को न प्राप्त होवे वा सबका रक्षक जो औषधिगण इसके समान औषधि का सेवने वाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे - महर्षि भाष्य) प्रभो ! वे भाग्यशाली व्यक्ति जो आपकी मित्रता, आपके सखित्व के पात्र बन गये हैं, जिन्होंने योगानुष्ठान से, वेद विहित साधनों से आपकी समीपता प्राप्त कर ली है, अपने यज्ञमय जीवन के कारण आपका साक्षात्कार कर चुके हैं अथवा सांसारिक विषय-वासनाओं से उपराम होकर आपके निकट सम्पर्क उपलब्ध किये बैठे हैं, जिन्होंने आपका प्रेम, आपकी अनन्य भक्ति, आपकी अविचल श्रद्धा ही लोक-परलोक सुधारने की कुंजी समझ रक्खी है, अपने अभ्युदय और निःश्रेयस का एकमात्र साधन निर्धारित कर ली है, वे विनष्ट नहीं होते, दुःखी नहीं होते, ताप-सन्ताप उन्हें सन्तप्त नहीं कर सकता और उन्हें कभी पश्चात्ताप भी नहीं करना पड़ता। वे इस संसार में सुखी और भावी जन्मों में आह्लादित रहने के पश्चात् मुक्ति के असीम आनन्द के भी भागी बन जाते हैं।

तात्पर्य - हे सोम राजन्नीश्वर ! जो व्यक्ति पापी, पामर, लम्पट हैं, जो सर्वदा अपकार-प्रिय हैं ऐसे नर-पिशाचों से हमें, जो आपके भक्त हैं, बचाइये, सुरक्षित कीजिए। हमें अपनी मित्रता में ग्रहण कीजिये; क्योंकि वही आपका मित्र बन सकता है जिसे आप स्वीकार करें, जिस पर आपकी कृपा का हाथ हो। हम स्वार्थ-

वश ही यह प्रार्थना कर रहे हैं, क्योंकि यह निश्चित बात है कि आपके मित्र को, आपके सखा को कभी कोई कष्ट नहीं होता, दुःख नहीं पहुँचता। वह आपकी मित्रता के आश्रय सदा प्रसन्न, सदा मुस्कराता, सदा खुश और सुखी रहता है और वह सदा भले काम करता है, पुण्य कार्य करता है. हमेशा सन्मार्ग पर अग्रसर होता रहता है. इसलिए अपने किसी काम पर उसे पछताना नहीं पड़ता, पश्चात्ताप की अग्नि में जलना नहीं पड़ता।

'सोम राजन्' Oh Lord God almighty, monarch of the universe, **'अघायतः'** whoever amongst us might be inclined to act sinfully **'त्वं नः रक्ष'** do Thou protect us **'विश्वतः'** from them in every way **'त्वावतः सखा'** The righteous man devoted to Thee, who has Thee as his intimate friend **'न रिष्येत्'** will never come to grief. Vouchsafe that we may become such, so that under the almighty Aegis, we may never suffer even the slightest harm. He who is Thy friend whose Thou art— How shall he suffer any harm ?

तोटक छन्द

हे सर्वेश सोम राजन् ! प्रभु ! जो पापी प्राणी होवे,
सबसे रक्षा करो हमारी, अव्याहत वाणी होवे।
सखा तुम्हारा हो जो उस पर, अनुकम्पा प्राणी होवे,
नाश रहित अमरत्व पाये वह, सुखमय कल्याणी होवे ।।२०।।

तात्पर्य—हे सोम ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (विश्वतः) समस्त (अघायतः) पापी पुरुषों से (रक्ष) रक्षा कीजिये। हे (राजन्) सबकी रक्षा का प्रकाश करने वाले ! (त्वावत) आपका (सखा) मित्र (न रिष्येत्) कभी नष्ट नहीं होता।

(श्री स्वामी अच्युतानन्दजी रचित ऋग्वेद शतक मन्त्र ७१)

इक्कीस

प्रार्थना विषय

ओ३म् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥२१॥

अष्टक १, अध्याय २, वर्ग ७, मन्त्र ५
ऋग्वेद——————————————————
मंडल १, अनुवाक ५, सूक्त २२, मंत्र २०

पदच्छेदः—तत्। विष्णोः। परमम्। पदम्। सदा। पश्यन्ति। सूरयः। दिविऽइव। चक्षुः। आऽततम्।

पदार्थः

तत्	उसको
विष्णोः	व्यापकानन्दस्वरूप
परमम्	उत्तम से उत्तम परमेश्वर का विस्तृत
पदम्	चाहने और प्राप्त करने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद है
सदा	सब काल में
पश्यन्ति	विमल शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में देखते हैं
सूरयः	धार्मिक विद्वान् बुद्धिमान् लोग
दिवीव	सूर्यादि के प्रकाश में
चक्षुः	नेत्रों के समान जो
आततम्	फैले हुए

अन्वय–सूरयो विद्वांसो दिव्याततं चक्षुरिव तद्विष्णोराततं परमं पदमस्ति तत् स्वात्मनि पश्यन्ति।

भावार्थ—धार्मिक, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, विद्वान् लोग सूर्यादि के प्रकाश में फैले हुए नेत्रों के समान जो व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत उत्तम-से-उत्तम चाहने, जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त पद है उसको सब काल में विमल शुद्ध ज्ञान द्वारा अपने आत्मा में देखते हैं।

व्याख्यान–हे विद्वन् और मुमुक्षु लोगो! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहाँ से कभी दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सबके हित-कारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है। किस दृष्टान्त से? कि जैसे आकाश में "चक्षु" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब

ओर से व्याप्त है वैसे ही **"दिवीव चक्षुराततम्"** परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है। उसी की प्राप्ति होने से जीवन सब दुःखों से छूटता है. अन्यथा जीव को कभी सुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये।

स्वाध्याय— **तद्विष्णोः परमं पदम्** – (**तत्=उक्तम् वक्ष्यमाणं वा**—उसको; **विष्णोः=व्यापकस्यानन्दस्वरूपस्य**— व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत; **परमम्=सर्वोत्कृष्टम्** – उत्तम-से-उत्तम; **पदम्=प्रवेध्यं, ज्ञातव्यं, प्राप्तव्यं वा**—च हने, जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद है— महर्षि भाष्य) हे मोक्षेच्छु भगवद्भक्तो ! उस विष्णु (**विवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत्**– अर्थात्—स्थावर – जंगम संसार में व्यापनशील और इसे सब ओर से वेष्टित करने वाले परमात्मा– सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास) अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा का जो अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय जानने योग्य जो स्थान, दर्जा, स्थिति, Stage) है जिसे जानने के बाद और कुछ ज्ञातव्य नहीं रहता, जिसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् कुछ प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाता। यह पद जीवात्मा का अन्तिम लक्ष्य है, उद्देश्य प्राप्ति की चरम सीमा है। सागर में स्थित एक सीप जैसे मुंह खोले जल-तरंगों के थपेड़ों के साथ इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहता है। परन्तु आकाश-स्थित मेघ-मण्डल से स्वाति नक्षत्र में अवतरित होने वाला एक तोय-बिन्दु उसके खुले मुंह में पड़ जाता है, तब तत्क्षण उस सीप की पूर्ण सन्तुष्टि हो जाती है उसका मुख बन्द हो जाता है, इतस्ततः भटकते फिरना समाप्त हो जाता है और वह शान्त, सन्तुष्ट होकर सागर की तह में एक सुन्दर, अमूल्य, आभावान् मोती को सम्भाले सुख-सुविधा पूर्वक बैठ जाता है। उसी प्रकार सांसारिक अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों की उलझनों में फँसा एक परमात्मान्वेषी जिज्ञासु जब शान्ति-स्रोत परमेश्वर के अनिर्वचनीय प्रेम का छोटा-सा कण उपलब्ध होने पर पूर्णतः शान्त-सन्तुष्ट होकर अमन से, चैन से मुक्ति अवस्था के अवर्णनीय आनन्द का भागी और भोगी बन जाता है तो उस समय

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वं संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

(मुण्डक २, खंड २, मन्त्र १, मुण्डकोपनिषद्)

हृदय में फँसी सब प्रकार की गांठें खुल जाती हैं; सब प्रकार के संशय नष्ट हो जाते हैं। कई प्रकार के व्यर्थ कर्मों का नाश हो जाता है (जब उसे इस जगत् के दोनों किनारे आत्मिक दृष्टि से दीखने लगते हैं) बस फिर वहाँ आनन्द ही आनन्द है— वहाँ पहुँचने पर दुःख का अत्यन्ताभाव हो जाता है (**और मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प = ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं**—सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ९, मुक्ति विषय) अर्थात्— इकत्तीस नील, दस खर्ब, चालीस अर्ब वर्ष मुक्ति की अवधि है।

नोट—आर्य शास्त्रों के अनुसार एक महाकल्प (मुक्ति की अवधि) की कालगणना निम्न प्रकार से परिगणित होती है—

सतयुग की पूर्णायु	१,७२,८०,००० वर्ष
त्रेतायुग की पूर्णायु	१,२९,६०,००० वर्ष

द्वापरयुग की पूर्णायु	८६,४०,००० वर्ष
कलियुग की पूर्णायु	४३,२०,००० वर्ष
एक चतुर्युगी की पूर्णायु	४,३२,००,००० वर्ष
२,००० चतुर्युगियों का ब्रह्मा का एक अहोरात्र	२,०००
	८,६४,००,००,००० वर्ष
३० अहोरात्र का एक ब्राह्ममास	३०
	२,५९,२०,००,००,००० वर्ष
१२ ब्राह्ममास का एक ब्राह्म वर्ष	१२
	३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष
१०० ब्राह्मवर्ष का एक महाकल्प	१००
	३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

अर्थात् इकत्तीस नील, दस खर्व, चालीस अर्व वर्ष। इतनी लम्बी अवधि तक परमानन्द का उपभोग करने वाले जीव को दुःख का अत्यन्ताभाव ही कहना चाहिये।

सदा पश्यन्ति सूरयः—(**सदा=सर्वस्मिन् काले**—सब काल में; **पश्यन्ति=संप्रेक्षन्ते**—विमल शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में देखते हैं; **सूरयः=धार्मिका मेधाविनः**—धार्मिक विद्वान्, बुद्धिमान् लोग—महर्षि भाष्य) विद्वान्, ज्ञानी परमात्म-परायण जिज्ञासु, साधक, सर्वभूत हितेरताः विश्व-कल्याण के इच्छुक भद्रपुरुष ज्ञान-नेत्रों से उस प्रभु को अपने आत्मा में उत्सुकतापूर्वक निहारते रहते हैं।

दिवीव चक्षुः आततम्—(**दिवीव**=यथा सूर्यादि प्रकाशे विमलेन ज्ञानेन स्वात्मनि वा—सूर्यादि के प्रकाश में; **चक्षुः=चष्टे येन तन्नेत्रम्**—नेत्रों के समान जो; **आततम्=समंतात् ततं विस्तृतम्**—फैले हुए—महर्षि भाष्य) जिस प्रकार सर्व-साधारण जन-समूह द्युलोक में सर्वत्र व्याप्त भुवन-भास्कर के दीप्त आलोक को देखते हैं या जिस प्रकार चक्षु-शक्ति विशाल आकाश-मंडल के समुच्चय विस्तार में चहुँ ओर फैल जाती है, उसी प्रकार भगवद्-भक्त-जन उस सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म को विश्व-जगत् के कण-कण में व्याप्त अनुभव करते हैं।

तात्पर्य—उस सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, सर्वोत्तम, सर्वोपरि विराजमान परमात्मा का जो मानव-मात्र के जानने योग्य (पदनीय) पद है, विद्वान् जन, विज्ञान-सम्पन्न, जिज्ञासु प्रभु-भक्त महात्मा, उसे उसी तरह प्रत्यक्ष देखते हैं, यत्नपूर्वक जानते हैं और श्रद्धापूर्वक अपने हृदय मन्दिर में अनुभव करते हैं जैसे विस्तृत आकाश में फैले हुए सूर्यालोक को जिसके माध्यम से मानव आँख रूप देखने की सामर्थ्य प्राप्त करती है। उसका साक्षात् दर्शन करके धर्मात्मा जितेन्द्रिय सज्जन सर्वहित चिन्तक (जिन्हें **वसुधैव कुटुम्बकम्** विश्व-भर के प्राणी अपने निजी पारिवारिक जन प्रतीत होते हैं) महानुभाव कृतकृत्य हो जाते हैं। उस सच्चिदानन्द, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव परमेश्वर का साक्षात्कार करके, उसके आनन्द-प्रद, मोद-प्रमोद-वर्षक स्वरूप का अपने मन-

मन्दिर में, अपने हृदयाकाश में अनुभव करके जन्म-मरण के कुचक्र से निकल जाता है। किसी कवि ने हमें सचेत करते हुए लिखा—

जन्म दु:खं जरा दुःखं व्याधि दु:खं पुनःपुनः।
मृत्यु दु:खं परं दुःखं तस्मात् जागृहि जागृहि ॥

अर्थात्— हे मानव ! जन्म का दु:ख, बुढ़ापे का दु:ख, बारम्बर व्याधियों का दु:ख और अन्ततः मृत्यु का परम दु:ख। ये सब दु:ख तुम्हें प्राप्त होते रहते हैं। अतः सावधान होकर जागते रहो, जागते रहो और इस दु:ख समूह से बचने का प्रयत्न करो, परिश्रम करो और परमात्मज्ञान के बगैर **'नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय'** ईश-प्राप्ति के बगैर इन कष्ट-क्लेशों से बचने का सुरक्षित रहने का अन्य कोई मार्ग, कोई ढंग, कोई उपाय, कोई विधि है ही नहीं।

Oh ye wise and eager of attainment of emancipation, **'विष्णोः तत् परमं पदम्'** that beatific state of God, attaining a vision of which, the human soul enjoys the supreme bliss of emancipation and never reverts to the misery of births and deaths (during the current cycle of creation) **'सूरयः सदा पश्यन्ति'** the righteous and wise, the well-wishers of all, always look up to with well disposed and eager minds. Let us resort to a similitude—**'चक्षुः आततम् दिवि इव'** just as the power of the eye to see embraces the whole space over which it is cast. or just as the lustre of the sun that is the medium of the eye to see extends over all space, this supreme Beatific Being of God. Almighty is immanent in and surrounds the whole universe in a uniform manner. It is by a vision of this Beatific State of God that human life is freed from all miseries and not otherwise. Hence no pains should be spared in attaining a first-hand knowledge and direct vision of (this nature of) God.

तमरस वृत्त

वह जन विष्णु महापद पाते, बुधवर जो श्रुति 'सूर्य' कहाते।
दिवि जनु चक्षु वितान बनाते, परम प्रकाश लखें हर्षाते ॥२१॥

तात्पर्य (**तत् विष्णोः**) उस सर्वव्यापक परमेश्वर के (**परमम् पदम्**) श्रेष्ठ स्वरूप को (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**सदा पश्यन्ति**) सदा देखते हैं (**दिवि इव**) जैसे सब लोग द्युलोक में (**आततम्**) सर्वत्र व्याप्त (**चक्षुः**) सूर्य को देखते हैं।

(श्री स्वामी अच्युतानन्दजी रचित ऋग्वेद शतक मन्त्र ७६)

प्रर्थना विषय

ओ३म् स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीलु उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ २२॥

अष्टक १, अध्याय ३, वर्ग १८, मन्त्र २
ऋग्वेद——————————————
मंडल १, अनुवाक ८, सूक्त ३९, मन्त्र २

पदच्छेद—स्थिरा। वः सन्तु। आयुधा। परो ऽनुदे। वीलु। उत। प्रति ऽस्कभे। युष्माकम् अस्तु। तविषी। पनीयसि। मा मर्त्यस्य। मायिनः।

पदार्थ

स्थिरा	स्थिर, दृढ़, चिरस्थायी
वः	तुम्हारे
सन्तु	(हों)
आयुधाः	आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार धनुषबाण भुशुण्डी (बन्दूक) शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र
पराणुदे	शत्रुओं को वध करने वाले युद्ध
वीलु	दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम
उत	और
प्रतिष्कभे	रोकने, बींधने और मारने रूप कर्मों के लिये
युष्माकम्	
अस्तु	हो – और पूर्व पदार्थ
तविषी	प्रशस्ता सेना
पनीयसी	अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करने वाली
मा	कभी मत हों
मर्त्यस्य	दुष्ट मनुष्यों के
मायिनः	कपटादि अधर्माचरण युक्त

अन्वय—हे धार्मिक मनुष्या वः आयुधाः शत्रूणां पराणुदे उत प्रतिष्कभे स्थिरा वीलु सन्तु युष्माकम् तविषी सेना पनीयस्यस्तु मायिनो मर्त्यस्य मा सन्तु।

भावार्थ—हे धार्मिक मनुष्यो! आपके आग्नेयादि अस्त्र और तलवार, तोप, बन्दूक आदि शस्त्र शत्रुओं को व्यथित करने वाले युद्ध और रोकने, बांधने और मारने

रूप कर्मों के लिये स्थिर दृढ़ चिरस्थायी दृढ़ प्रशस्त सेना अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करने वाली हो और पूर्वोक्त पदार्थ कपट आदि अधर्माचरण युक्त दुष्ट मनुष्यों के कभी मत हों।

व्याख्यान—परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्यो आशीर्ददाति— ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि हे जीवो ! "व:" (युष्माकम्) तुम्हारे आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुष, बाण, असि (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "**वीलु**" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिये ? "**पराणुदे**" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये, जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दु:ख न दे सकें। "**उत प्रतिष्कभे**" शत्रुओं के वेग को थामने के लिये "**युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी**" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो, जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो, परन्तु "**मा मर्त्यस्य मायिनः**" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी ईश्वरभक्ति रहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो, उसका पराजय ही सदा हो। हे बन्धुवर्गो ! आओ, सब आत्मीय मिल के सब दु:खों के विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें, वह ईश्वर हमें आशीर्वाद देवे जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥२२॥

स्वाध्याय —परमेश्वर जीवों को यह कहता हुआ स्वयं आशीर्वाद देता है कि हे मनुष्यो ! **स्थिरा व: सन्तु आयुधा:** —(**स्थिरा=स्थिराणि, चिरं स्यातुमर्हाणि**—स्थिर, दृढ़, चिरस्थायी; **व:=युष्माकम्**—तुम्हारे; **सन्तु=भवन्तु**—(हों); **आयुधा:= आयुधानि—आग्नेयानि धनुषबाण, भुशुण्डी, शतघ्नी आदीनि शस्त्राणि**—आग्नेयादि अस्त्र, और तलवार, धनुषबाण, भुशुण्डी (बन्दूक) शतघ्नी (तोप) आदि अस्त्र शस्त्र; महर्षि भाष्य) तुम्हारे शस्त्र—शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुषबाण, तलवार, बर्छी आदि शस्त्र और आग्नेय, वारुण, वायव्य आदि अस्त्र स्थिर, दृढ़, देर तक रहने वाले और शत्रु पर प्रभावोत्पादक हों। अपना बारूद, विस्फोटक द्रव्य, शस्त्रास्त्रों में काम आने वाला दारू सिक्का सदा खुश्क रहे, शुष्क रहे, गीला न होने पावे, इसे सील व्यर्थ न बना दे, यह ढीला न हो बल्कि प्रतिक्षण तय्यार-बर-तय्यार रहे। क्या मालूम कि तुम्हारा विद्वेषी, तुम्हारा अहित-चिन्तक, हिंसा-वृत्ति, नीच शत्रु किस क्षण तुम पर चढ़ दौड़े, किस समय तुम्हारे राष्ट्र पर आक्रमण कर दे। क्या तुम उस समय तय्यारी करोगे ? वह तो '**प्रदीप्ते भवने कूप खननम्**' घर को आग लगने पर कुआँ खोदने वाली बात होगी, अपने बारूद को सुखाने के लिये धूप में डालते फिरोगे ? क्या उस समय अपने जंग लगे शस्त्रास्त्रों को साफ करोगे ? क्या शत्रु तुम्हें इन कार्यों के लिये अवसर देगा भी ? नहीं, कदापि नहीं, अतः प्रतिक्षण सन्नद्ध-बद्ध रहो, तय्यार-बर-तय्यार रहो। देखो, सावधान रहो। ढील मत करो। इस समय का आलस्य और प्रमाद राष्ट्र का सर्वनाश कर सकता है। क्या पिपासा से व्याकुल होने पर बावड़ी बनाओगे, तालाब का निर्माण करोगे ? ऐसा उपक्रम करने वाला व्यक्ति क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है ? नहीं, वह तो मूर्ख है, मूढ़ है, महा अज्ञानी है, शत्रु-नन्दन है। यह सोचकर कि प्यास तो लगती है, हमारे पुरुषाओं को भी लगती रही, हमें भी लगती है और हमारी सन्तानों को और पशुपक्षियों को भी लगेगी ही। इस सम्भावना का अनुमान लगाकर पहले ही से कूप, तड़ाग, बावड़ी का निर्माण कर रक्खो, ताकि न केवल तुम प्यासे मरने से बचो, बल्कि यात्री, पथिक, मुसाफिर और

अन्य जीव-जन्तु, मानव-दानव, पशु-पक्षी भी इससे लाभ उठा सकें और कूप खनक, तड़ाग निर्माता अथवा बावड़ी बनाने वाला समझकर सब तुम्हें आशीर्वाद दें। शस्त्रास्त्र सन्नद्ध सचेत वीर-वाहिनी, सचेत-सावधान सेना के आतंक से शत्रु निरुत्साह हो जायगा और तुम्हारी या तुम्हारे राष्ट्र की ओर वक्र दृष्टि से देखने का साहस भी नहीं बटोर सकेगा।

वीलु=वीलूनि दृढ़ानि बलकारीणि—दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम बलयुक्त—महर्षि-भाष्य) तुम्हारे शस्त्रास्त्र जहाँ दृढ़ हों, मजबूत हों वहाँ स्थिर भी हों—उनके ढिबरी-पेच-पुर्जे ढीले न हों साथ ही तुम्हें उसका प्रयोग भी आता हो। अयोग्य, अशिक्षित, अनिपुण व्यक्ति का शस्त्रास्त्र उसके काम में न आकर उसके शत्रु का सहायक बनता है, उसकी जय और तुम्हारी पराजय का कारण बन सकता है। यह ढीला अस्त्र तुम्हारा कल्याण नहीं करेगा। हां, हानि अवश्य पहुँचायेगा।

देश विभाजन से पूर्व पंजाब और सिंध से कई ऐसी घटनाएँ सुनने में आती थीं कि एक बन्दूक वाला जिसे चलाना नहीं आता, धारण करना नहीं आता, मकान के ऊपर खड़ा है और एक डांगवाला, लाठी वाला बदमाश गली में से ही उसे धमकाता है कि बन्दूक नीचे फेंक दे अन्यथा लाठी से तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा और भीरु, नपुंसक, नालायक बन्दूक वाला भयभीत हो जाता था और अपने निःशस्त्र शत्रु को विजयी बनाने का कारण बन जाता था।

१९४७ के दङ्गों में अमृतसर में कई बार देखा कि एक कृपाणधारी व्यक्ति तलवार की मूठ अपने पिछली ओर करके म्यान को दृढ़तापूर्वक पकड़े जा रहा है। निश्चिन्त क़दम बढ़ा रहा है। मगर एक गुण्डा चुपके-से पीछे से आता, स्प्रिंग दबाकर तलवार खेंचकर उस नालायक खड्गधारी की गर्दन काटकर फैंक जाता और स्वयं नौ-दो-ग्यारह हो जाता। इसलिये तुम्हारे शस्त्रास्त्र दृढ़ हों, चिरस्थायी हों और तुम्हारा उन्हें चलाने पर पूरा अधिकार भी हो।

पराणुदे उत प्रतिष्कभे—(**पराणुदे=परान् नुदन्ति शत्रून्यस्मिन् युद्धे तस्मै**—शत्रु को व्यथित करने वाले युद्ध; उत=अप्येव—और; **प्रतिष्कभे=प्रतिष्कंभते प्रतिबध्नाति शत्रून् येन कर्मणा तस्मै**—रोकने, बांधने और मारने रूप कर्मों के लिये—महर्षि भाष्य) यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ये शस्त्रास्त्र दृढ़, चिरस्थायी किसलिये होने चाहियें? इस उचित प्रश्न का उत्तर वेद ने 'पराणुदे' शब्द से दिया है। अर्थात् तुम्हारा शत्रु, तुम्हारा शरारती दुश्मन जो तुम्हें हानि पहुँचाने पर उधार खाये और आक्रमण करने के लिये घात लगाये बैठा है, प्रतिक्षण तुम्हारे नाश के लिये तय्यार रहता है, ये दृढ़, स्थायी शस्त्र उसे दूर हटाने, मार भगाने, खदेड़ देने अथवा नष्ट करने के लिये प्रयुक्त होने चाहियें, इस काम के योग्य भी होने चाहियें ताकि तुम्हारे विद्वेषी का दुष्ट मनोरथ, नीच अभिप्राय और कुत्सित संकल्प पूरा न होने पावे। फिर तुम्हारे विद्वेषियों, शत्रुओं द्वारा रचे जा रहे षड्यन्त्रों को, जो वे तुम्हारे विरुद्ध रचाते रहते हैं, समाप्त कर देने के लिये शत्रु के वेग को थामने, उसकी तीव्र गति को अवरुद्ध करने और चढ़ाई की रफ़्तार को मन्द करने; बिल्कुल रोक देने अथवा उसका मुँह मोडने के अभिप्राय से तय्यार रहने चाहियें।

युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी (**युष्माकम्=धार्मिकाणां, वीराणाम्**—(तुम धार्मिक वीरों की), **अस्तु=भवतु** हो; **तविषी=प्रशस्त बल विद्या युक्त सेना**—

प्रशस्त सेना; **पनीयसी=अतिशयेन स्तोतुमर्हा व्यवहारसाधिका**--अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करने वाली—महर्षिभाष्य) तुम्हारी फ़ौज, तुम्हारी वाहिनी, राष्ट्र की बल रूपिणी, शक्ति का प्रतीक तुम्हारी चतुरङ्गिणी (हस्ति सवार, अश्वारोही, रथी एवं पदाति) सेना, ऐसे वीरोचित कृत्य करने वाली हो, बहादुरी के अद्‌भुत चमत्कार, वीरता के हैरान कर देने वाले कारनामे, अपने रण-कौशल से विश्व-जगत् को अचम्भे में डालने वाली हो कि सुनने, देखने तथा अनुभव करने वाले सब लोग, उनके सम्पर्क में आने वाली सारी जनता अपनी अथवा बेगानी मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा करना और यशोगान करना अपना कर्त्तव्य समझे। दूर अथवा निकट सब जगह उसका आतंक छाया हुआ हो जिसे स्मरण करते ही विद्वेषियों का पसीना छूटने लगे। परिणामतः उन अहित चिन्तकों के मन में तुम्हारी सेना के मुँह आने, उसका मुकाबिला करने का संकल्प तक पैदा न हो सके।

मा मर्त्यस्य मायिनः—(**मा=निषेधार्थे**—कभी नहीं; **मर्त्यस्य=मनुष्यस्य**—दुष्ट मनुष्यों के; **मायिनः=कपट अधर्माचरण युक्तस्य**--कपटादि अधर्माचरण युक्त—महर्षि भाष्य) परन्तु परमात्मा का आदेश है कि हमारा उक्त आशीर्वाद दुष्ट, पापी, परापकारी, परपीड़क, मायावी मानवों अथवा दम्भी दानवों के लिये नहीं है। ऐसे नर-पिशाचों का बल कभी न बढ़े, प्रत्युत दिन-प्रतिदिन ह्रास को प्राप्त होता रहे। हम तो चाहते हैं कि वे कभी सिर भी न उठा सकें; क्योंकि उनका अभ्युदय तो केवल संसार के उत्पीड़न का ही कारण बन सकता है। जैसे जंगल के बलवान् हिंस्र पशु निर्बल जानवरों को मारकर खा जाते हैं, उक्त प्रकार के दुराचारी, अत्याचारी बलवान् होकर मानव-समाज का, मानव सभ्यता और संस्कृति का नाश करके सभ्य संसार में जंगल की-सी अव्यवस्था पैदा कर देंगे।

तात्पर्य—सज्जनो! आओ, हम सब मिलकर परब्रह्म परमेश्वर से कर-बद्ध प्रार्थना करें कि वह करुणावरुणालय हम में ऐसी शक्ति का आधान करे जिससे हम अपने आयुधों को सदा तय्यार-बर-तय्यार रक्खें; अपने आलस्य और प्रमाद के कारण उन पर जंग न आने दें, अपने बारूद को शुष्क रक्खें ताकि अवसर आने पर हम सोते में ही न पकड़े जायें, व्यर्थ ही न मारे जायें और कोई दुष्ट अत्याचारी हम पर आक्रमण करने का साहस ही न कर सके और यदि यह भूल कर ही बैठे तो प्रभु भक्त आर्यों की सेनाएँ उसे बुरी तरह पछाड़ सकें। विश्वभर में हमारी सेनाओं की वीर-गाथाएँ घर-घर में गाई जाती हों, जिनके कारण उनका आतंक दिग्-दिगन्त में फैल रहा हो ताकि विदेशी विधर्मी, अनार्यों के मन में हमारे देश, हमारे राष्ट्र और हमारे साम्राज्य की ओर टेढ़ी आँख से देखने का संकल्प ही पैदा न हो सके।

God blesses all human beings saying "**वः आयुधाः स्थिराः सन्तु**" May your arms, namely, your cannons, rifles, bows and arrows, swords, spears and all other war weapons be strong and "**वीळू**" firmly wielded by you. For what purpose, it might be asked. Well, the answer is, you require these "**पराणुदे**" to repulse the wicked foe bent upon injuring you so that his evil purpose may never be fulfilled. "**उत प्रतिष्कभे**" as well as for opposing and setting at nought the force of his machinations against you. "**युष्मा-**

कम् तविषी पनीयसी अस्तु". May your army, the strength of your nation, be worthy of praise all over the world so that your enemy may not have the courage to face and fight you. "मा मर्त्यस्य मायिन:" But we do not give these blessings to the wicked oppressor. May not the strength, the kingdom and the power of the vile, sinful and the impious, ever prosper, but may they always meet with defeat.

Oh brethren, come, let us all in unison propitiate God that He may annihilate all our miseries and lead us to victory. May the Almighty God so bless us that our foes may never prosper (against us—His righteous devotees).

सिंहनाद वृत्त

स्थिर शस्त्र आपके दृढ़ होवें ।
अभिभूत शत्रु जिससे बल खोवें ।।
विजयी अनीक जग में सुख सोवें ।
शठ मायिकी निदल केवल रोवें ।।२२।।

तेईस

स्तुति विषय

ओ३म् विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥२३॥

अष्टक १, अध्याय २, वर्ग ७, मन्त्र ४
ऋग्वेद—
मंडल १, अनुवाक ५, सूक्त २२, मंत्र ६

पदच्छेद—विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य । युज्यः । सखा ।

पदार्थ

हे मनुष्यो लोगो ! तुम जो

विष्णोः	सर्वत्र व्यापक शुद्ध और स्वभाव सिद्ध अनन्त सामर्थ्य-वाले परमेश्वर के
कर्माणि	जो कि जगत् की रचना पालना न्याय और प्रलय करना आदि कर्म हैं उनको तुम लोग
पश्यत	अच्छे प्रकार विदित करो
यतः	जिससे जीव
व्रतानि	सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को
पस्पशे	प्राप्त होता है उस
इन्द्रस्य	जीव का
युज्यः	जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करने वाले दिशा काल और आकाश हैं उनमें व्यापक होकर रमने वा
सखा	सर्व सुखों के सम्पादन से मित्र है ।

अन्वय—हे मनुष्याः ! यूयं य इन्द्रस्य युज्यःस सास्ति यतो जीवो व्रतानि पस्पशे स्पृशति तस्य विष्णोः कर्माणि पश्यत ।

भावार्थ हे मनुष्य लोगो ! तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करनेवाले दिशा, काल और आकाश हैं, उनमें व्यापक हो के रमने वा (सखा) सर्वसुखों के सम्पादन करने से मित्र है, जिससे जीव सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (पस्पशे) प्राप्त होता है, उस सर्व-व्यापक, शुद्ध और स्वभाव सिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परमेश्वर के जगत् रचना,

पालना, न्याय और प्रलय करना आदि कर्म हैं, उनको तुम लोग अच्छे प्रकार विदित करो।

व्याख्यान – हे जीवो ! **"विष्णोः"** व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो।

प्रश्न किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म हैं ?

उत्तर **"यतो व्रतानि पस्पशे"** जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्य-भाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी होके समर्थ हुए हैं। ये काम उसी के सामर्थ्य से हैं। क्योंकि **"इन्द्रस्य युज्यः सखा"** इन्द्रियों के साथ वर्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता, इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिए ॥२३॥

स्वाध्याय हे मानव देहधारी जीवो !

विष्णोः कर्माणि पश्यत —(**विष्णोः** = **सर्वव्यापकस्य शुद्धस्य स्वाभाविकानन्त सामर्थ्यस्येश्वरस्य** सर्वत्र व्यापक शुद्ध और स्वभाव सिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परमेश्वर के **कर्माणि जगद्रचन पालन न्यायकरण प्रलयत्वादीनि** —जो कि जगत् की रचना पालना न्याय और प्रलय करना आदि कर्म हैं उनको तुम लोग; **पश्यत** = **सम्यग् विजानीत** – अच्छे प्रकार विदित करो - महर्षि भाष्य) सर्वव्यापक प्रभु के दिव्य कर्मों को देखो —भली प्रकार जानो, उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो अर्थात् सृष्टि की अद्‌भुत रचना, इसकी निरन्तर पालना और अवधि व्यतीत होने पर क्रमशः प्रलय के दिव्य कर्मों का भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करो **'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'**— (अथर्व कांड १०, सूक्त ८, मन्त्र ३२) भगवान् के दिव्य, अलौकिक, अद्‌भुत, अनूठे काव्य (वेद) को देखो, जो न पुराना जीर्ण-शीर्ण होता है न नष्ट होता है ! यह भी परमेश्वर का एक दिव्य कर्म है। अन्य काव्य विस्मृति के गर्त में चले जाते हैं, भुला दिये जाते हैं; परन्तु देव का यह अद्‌भुत काव्य अजर-अमर है और शब्दार्थ सम्बन्ध से कल्प-कल्पान्तरों में भी अनश्वर है, शाश्वत है, सनातन है।

यतः व्रतानि पस्पशे – **यतः** = **कर्मबोधस्य सकाशात्** – जिससे जीव **व्रतानि** = **सत्यभाषण न्यायकरणादीनि**—सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को; **पस्पशे** = **स्पृशति, कर्त्तुं शक्नोति** – प्राप्त होता है उस महर्षिभाष्य) प्रश्न हो सकता है कि हम व्यर्थ में यह सिरदर्दी क्यों मोल लेते फिरें कि सृष्टिरचन, धारण तथा प्रलय उस सर्व व्यापक परमात्मा के ही कार्य हैं अन्य किसी व्यक्ति अथवा शक्ति के नहीं ? उत्तर स्पष्ट है कि जिससे नियमों को जाना जाता है या जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि नियम तथा सत्य भाषणादि व्रत और ईश्वरीय नियमों का अनुष्ठान करने को सुशरीरधारी होकर समर्थ हुए हैं; यह सब उसी के सामर्थ्य का एक चमत्कार मात्र है। जिन भाग्यशाली व्यक्तियों को स्वस्थ सुन्दर, सुडौल शरीर प्राप्त हुआ है, समझो उनपर सर्वेश्वर प्रभु की असीम अनुकम्पा है। यदि वह ऐसा उत्तम नीरोग शरीर प्रदान न करता तो परलोक सुधारना तो दूर की बात है, हम इस संसार के साधारण कर्त्तव्य भी सफलतापूर्वक कदापि सम्पन्न न कर पाते। अतः निश्चित रूप से जानिये कि यह उसी कृपा सागर भगवान् की अहैतुकी अनुकम्पा का

ही मधुर फल है । अतः हमें निस्सन्देह भाव से मन में यह धारणा बिठा लेनी चाहिये कि जिस प्रकार हमारा उत्तम मानव शरीर, कमनीय कलेवर उसी की दिव्य देन है, उसी प्रकार सृष्टि का रचना, धारण, पालन, तथा विसर्जन (प्रलय) आदि अलौकिक कर्म उसी सर्वव्यापक परमेश्वर के कृत्य हैं । ऐसा दृढ़ निश्चय करके हमें उचित है कि ऐसे अलौकिक, चमत्कारपूर्ण महान् दिव्यकर्म करने वाले परमात्मा की सर्वदा सर्वभावेन स्तुति, प्रार्थना उपासना सदैव करते रहें ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा—(**इन्द्रस्य**=जीवस्य—जीव का; **युज्यः युञ्जन्ति व्याप्त्या सर्वान् पदार्थान् ते युजो दिक्कालाकाशा दयस्तत्र भवः**—जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करनेवाले दिशा काल और आकाश हैं; **सखा=सर्वस्य मित्रः सर्व सुख सम्पादकत्वात्** सर्व सुखों के सम्पादन करने से मित्र है,—महर्षिभाष्य) मानव-शरीर धारी आत्मा, जिसे प्रभु ने मेधा, बुद्धि, और इसे कार्यशील बनाने वाले आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा विस्तृत सूक्ष्म तन्तु-जाल प्रदान किये हैं, जिनसे यह मानव देहधारी आत्मा विविध प्रकार की चेष्टाएँ शुभ कर्म करने और तदनुकूल उत्तम, मध्यम और निकृष्ट प्रकार के फल भोगने को समर्थ हुआ है, वही प्रभु उसका सच्चा मित्र है, जिगरी दोस्त है । सांसारिक मित्रों की दोस्ती तो क्षणिक होती है, वे सब स्वार्थ के बन्दे होते हैं; अपने निजी हित साधन की आशा से मित्र बन जाते हैं, दोस्ती का दम भरते हैं । अपना स्वार्थ सिद्ध होने पर एकदम माथे पर आँखें रख लेते हैं; वह परमात्मा तो जीव का ऐसा मित्र है जो कभी इसे नहीं छोड़ता, धोखा नहीं देता, उसे अपना कोई स्वार्थ होता ही नहीं क्योंकि सब प्रकार से पूर्ण है—उसे किसी की सहायता की आवश्यकता ही नहीं । वह तो सदा मनुष्य की रक्षा करता है ; उसे सन्मार्ग प्रदर्शन करता है, उसे शुभ-कर्म करने को सत्-प्रेरणा देता है । इसीलिये वेद भगवान् ने कहा—'**अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति**—(अथर्व कांड १० सूक्त—मन्त्र ३२)

अर्थात्—यद्यपि मानव निकटतम रहनेवाले परमेश्वर को इन चर्म चक्षुओं से देख नहीं पाता ; परन्तु वह परमात्मा अपने समीप रहनेवाले भक्त को, उपासक को कभी छोड़ता नहीं । अतः हमें सदा ऐसे सुकर्म करने चाहिये जिससे कि हम उसके सामीप्य से वंचित न होने पावे ।

Oh embodied souls, "**पश्यत विष्णोः कर्माणि**" look at the Divine acts of God the Omnipresent, namely, the creation, sustenance and dissolution of the wonderful universe. "**यतः**" Why should we try to understand that these are the acts of the Omnipresent God ? We (all) should try to realise that these are His Acts and admire them so that "**व्रतानि पस्पशे**" we may be disposed to observe (under all circumstances) continence in life, adhere to truthfulness in thought, word and deed, and such other virtues, for (especially those of us whose) souls have been endowed with good and firm bodies owe a special duty to God to obey His commandments in a special manner. Let us understand once for all that these are the acts of His Omnipotence. "**इन्द्रस्य युज्यः सखा**" The embodied human soul en-

dowed with sense and motor organs, capable of putting forth activity and enjoying its fruit has only Him for her Worthy Friend and none else, inasmuch as He is immanent in her. Hence it is but meet that we should always be on terms of friendship with God.

विश्लोक छन्द

जग विचरन धारण संहारा—कर्म लखहु विभु के बहु बारा ।
जिससे हम सबने व्रत धारा—योग्य सखा प्रभु बने हमारा ।।

तात्पर्य—(**विष्णोः**) सर्वव्यापक जगत्पति परमात्माके (**कर्माणि**) कर्मों को (**पश्यत**) देखो (**यतः**) जिससे (**व्रतानि**) नियमों को (**पस्पशे**) मनुष्य प्राप्त होता है। (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (**युज्यः**) योग्य (**सखा**) मित्र है।

(श्री स्वामी अच्युतानन्द जी रचित ऋग्वेदशतक मन्त्र ७८)

प्रार्थना विषय

ओ३म् परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२४॥

अष्टक ५, अध्याय ३, वर्ग २१, मन्त्र ५
ऋग्वेद ——————————
मंडल ७, अनुवाक २, सूक्त ३२, मन्त्र २५

पदच्छेद—परा । नुद स्व । मघऽवन् । अमित्रान् । सुऽवेदाः । नः । वसु । कृधि अस्माकम् । बोधि । अविता । महाऽधने । भवः । वृधः । सखीनाम् ।

पदार्थ

हे मघवन् ।	
पराणुदस्वे	प्रेरो हमारे लिये
मघवन्	बहु धन-युक्त राजा
अमित्रान्	शत्रुओं को
सुवेदाः	धर्म से उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य युक्त
नः	हमारे
वसू	धन को
कृधि	सिद्ध करो
अस्माकम्	हमारे
बोधि	जानिये और
अविता	रक्षा करने वाले
महाधने	बड़े वा बहुधन जिससे प्राप्त होते हैं उस संग्राम में
भव	हूजिये
वृधः	बढ़ाने वाले
सखीनाम्	सब मित्रों के

अन्वय—हे मघवन् राजन् ! सुवेदास्त्वं नो ऽस्माकममित्रान्पराणुदस्व नो वसु कृधि महाधनेऽस्माकं सखीनामविता बोधि वृधो भव ।

भावार्थ—हे बहुधन युक्त राजा, धर्म से उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य वाले आप हमारे शत्रुओं को प्रेरो । हमारे लिए धन को सिद्ध करो । बड़े धन जिसमें प्राप्त होते हैं. उस संग्राम में हमारे सर्व मित्रों के रक्षा करने वाले जानिये और बढ़ाने वाले हूजिये ।

व्याख्यान—हे 'मघवन्' परमेश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! 'अमित्रान्' हमारे

सब शत्रुओं को 'पराणुदस्व' परास्त कर दे। हे दातः; 'सुवेदाः नो वसू कृधि' "अस्माकं बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ (सुख से प्राप्त कर)। "महाधने" युद्ध में हमारे तथा हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक 'वृधः' वर्द्धक "भव" आप ही हो तथा हमारे "बोधि" हमको अपने ही जानो। हे भगवन्! जब आप हमारे योद्धा रक्षक होंगे, तभी हमारी सर्वत्र विजय होगी ।।२४।।

स्वाध्याय—**मघवन् नः अमित्रान् पराणुदस्व** (**मघवन्=महाधनयुक्त राजन्**—बहुधन युक्त राजा; **नः=अस्माकम् वा अस्मभ्यम्** हमारे; **अमित्रान्=शत्रून्**—शत्रुओं को; **पराणुदस्व=प्रेरय** प्रेरो हमारे लिए महर्षि भाष्य) हे परम ऐश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन्! आप सर्वशक्तिमान् हैं, हमारे समस्त शत्रुओं को, विद्वेषियों को, बाहर से आक्रमण करने वाले आततायियों को (और अन्दर से उत्पन्न होने वाले कुकाम, कुक्रोध, कुलोभ, कुमोह और अहंकार, ईष्या, मत्सर आदि महाभयङ्कर दुर्वासनाओं को) **पराणुदस्व** परास्त कर दे, पीछे हटा दे, परे खदेड़ दे अथवा हमारे हक में प्रेरित कर दे।

सुवेदाः नः वसू कृधि (**सुवेदाः=धर्मोपार्जितैश्वर्यः**=धर्म से पैदा किए हुए ऐश्वर्ययुक्त; **वसू=वसु इति धन नाम** धन को; **कृधि=कुरु**—सिद्ध करो—महर्षि-भाष्य) दातः! विश्वभर में जितना धन ऐश्वर्य आपने उत्पन्न कर रक्खा है, वह हमारे लिये सुलभ कर दो, उसकी प्राप्ति में हमें कोई कष्ट न हो। धर्म द्वारा समस्त संसार के धन के उपार्जन की हममें अभिलाषा उत्पन्न कर दो और उसे हस्तगत करने का सामर्थ्य भी प्रदान करो।

अस्माकं बोध्य महाधने सखीनाम् अविता वृधः भव—(**अस्माकम्**=हमारे; **बोधि=बुध्यस्व**—हमें अपना ही जानो; **महाधने=महान्ति धनानि प्राप्नुवन्ति यस्मिंस्तस्मिन् संग्रामे** बड़े वा बहुत धन जिसमें प्राप्त होते हैं उस संग्राम में; **अस्माकम् सखीनाम्=सर्व सुहृदाम्**—सर्व मित्रों के; **अविता=रक्षकः**—रक्षा करने वाले; **वृधः=वर्धकः** बढ़ाने वाले; **भव=अस्तु** हूजिये महर्षि भाष्य) सर्व-मित्र परमेश्वर! हमें अपना भक्त, सेवक, अनुचर, भृत्य जानो; क्योंकि हमें अन्य किसी का आश्रय नहीं, अवलम्ब नहीं। संसार में हमारे शत्रुओं के साथ होने वाले संग्रामों में जिनमें विजय लाभ कर लेने पर हमें महान् धन, असीम सम्पत्ति और बे-अन्त ऐश्वर्य हस्तगत करने के अवसर प्राप्त होना सम्भव है उनमें हमारे, हमारे मित्रों के, हम पर जान न्योछावर करने वाली वीर वाहिनियों के, संरक्षण का भार, सुरक्षा का प्रबन्ध, आप ही सम्भालें और आप ही इन सब की उन्नति, वृद्धि और चौमुखी तरक्की करने वाले हूजिये; क्योंकि पिता! हमने तो—

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।।

तात्पर्य—हम प्रार्थना करते हैं कि हे सब धनैश्वर्यों के अधिपति! हे सर्व-शक्तियों के स्वामिन्! आप शत्रुओं के साथ हमारे युद्धों में हमारी सेनाओं, हमारी वाहिनियों, हमारे सुहृदों मित्रों और हमारे सहायकों सहयोगियों की रक्षा कीजिये। विश्वभर की धन-सम्पत्ति की प्राप्ति का आशीर्वाद दीजिये। आप ही हमारी चतुरंगिणी सेनाओं का नेतृत्व करके उन्हें सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ाइये, हर

प्रकार से उनकी उन्नति कीजिये। हमें अपना बना लीजिये। जब आप हमें और हमारे राष्ट्र के वीर योद्धाओं को अपना लेंगे, हम सब के सिरों पर अपने आशीर्वाद का हाथ रख देंगे, आप हम पर प्रसन्न होंगे तो हमारा पूर्ण कल्याण अवश्यभावी है; फिर कोई हमारे साथ वैर-विरोध नहीं करेगा, कोई वक्र दृष्टि से, क्रूर दृष्टि से और गृध्र दृष्टि से हमारी ओर, हमारे धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य की ओर, हमारे राष्ट्र की समृद्धि की ओर देखने तक का साहस नहीं कर सकेगा; क्योंकि यह निर्विवाद सत्य है और किसी अनुभवी सज्जन ने अपने हृदयोद्गारों को स्फुट करते हुए आपके दरबार में बड़े विश्वास से यह कहा था कि प्रभो ! हमें अब किसी सांसारिक शक्ति अथवा व्यक्ति से कोई डर नहीं, कोई भय नहीं, हमें किसी की परवाह नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि '**सब चूमेंगे अंगूठा एक तू न रूठा चाहिए**' इसीलिये हमारी याचना है कि विश्व-भर के उत्तम पदार्थ बहूमूल्य रत्न-मणियां धन-सम्पत्ति हमारे लिये सुलभ कर दीजिए और हमारे शत्रुओं को, विद्वेषियों को, अहित चिंतक आक्रमण-कारियों को परे हटा दीजिये, और पीछे खदेड़ दीजिये और सर्वथा परास्त कर दीजिये।

"**मघवन्**" Oh Majestic God, Oh Supreme Spirit, Master of all power and pelf, "**पराणुदस्व**" repulse Thou all "**अमित्रान्**" our foes. Make "**महाधने**" all the wealth of the world "**नः सुवेदाः**" accessible for us. In all our life's struggles, in our wars with our foes, be Thou our friend and "**अविता**" The Protector of us and our armies, for "**भव**" Thou art "**वृधः**" Our Saviour, and "**बोधि**" knowest us to be Thine. Oh Lord, when Thou art the Fighter of our battles with the foe, undaubtedly we shall be victorious everywhere.

पद्घटिका छन्द

कीजै मघवन् ! मम शत्रुनाश;
दीजै हमको बहु वसु-विलास।
रक्षक, वर्धक, युधि मित्र,
आशा है आप सदा कीजै विकास ॥२४॥

प्रार्थना विषय

ओ३म् शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः
शंनो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२५॥

अष्टक ५, अध्याय ३, वर्ग २८, मन्त्र २
ऋग्वेद——
मंडल ७, अनुवाक ३, सूक्त ३५, मन्त्र २

पदच्छेदः—शं । नः । भगः । शम् । उ । नः । शंसः । अस्तु । शं । नः । पुरम्ऽधिः । शम् । उ । सन्तु । रायः । शम् । नः । सत्यस्य । सुयमस्य । शंसः । शम् । नः । अर्यमा । पुरुऽजातः । अस्तु ।

पदार्थ

हे मनुष्यो !

शम्	सुख करने वाला
नः	हम लोगों के लिये
भगः	ऐश्वर्य
शम्	(सुख करनेवाला)
उ	और
नः	हम लोगों के लिये
शंसः	शिक्षा वा प्रशंसा
अस्तु	हो
शम्	सुख करने वाला
नः	(हम लोगों को)
पुरन्धिः	बहुत पदार्थ जिसमें रखे जाते हैं
शम्	सुख करने वाला
(उऽसन्तु रायः)	(धन)
शम्	आनन्द देने वाला
नः	हम लोगों के लिये
सत्यस्य	यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की
सुयमस्य	सुन्दर नियम प्राप्त करने योग्य व्यवहार की
शंसः	प्रशंसा

शम्	सुख देने वाली और
नः	हमारे लिये
अर्यमा	न्यायकारी
पुरुजातः	बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध
अस्तु	होवे, वैसा हम लोग प्रयत्न करें

अन्वय – हे मनुष्याः यथा नो भगः शं नः शंस : शमु पुरन्धिः शमस्तु नः रायः शमु सन्तु नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं पुरुजातोऽर्यमा नः शमस्तु तथा वयं प्रयतेमहि ।

भावार्थ – हे मनुष्यो ! जैसे हम लोगों के लिये ऐश्वर्य सुख करने वाला, हम लोगों के लिये शिक्षा वा प्रशंसा सुख करनेवाली और बहुत पदार्थ जिसमें रखे जाते हैं वह आकाश सुख करनेवाला हो । हम लोगों के लिये यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की सुन्दर नियम से प्राप्त करने योग्य व्यवहार की प्रशंसा सुख देनेवाली और बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध न्यायकारी हमारे लिये आनन्द देनेवाला होवे वैसा हम लोग प्रयत्न करें ।

व्याख्यानः – हे ईश्वर ! "भगः" आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य **"शं नः"** हमारे लिये सुख कारक हो **"शमु नः शंसो अस्तु"** आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो **"पुरन्धिः शमु सन्तु रायः"** संसार के धारण करनेवाले आप तथा वायु, प्राण और सब धन आपकी कृपा से आनन्ददायक हों । **"शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः"** सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादि लक्षणयुक्त की जो प्रशंसा (पुण्य स्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो । **"शं नो अर्यमा"** न्यायकारी आप **"पुरुजातः"** अनन्त सामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक हो ॥२५॥

स्वाध्याय—भगः शम् नः—(भगः=**ऐश्वर्यम्**—ऐश्वर्य: **शम्=सुखकरः**— सुख करने वाला; **नः=अस्मभ्यम्**— हमारे लिये महर्षि भाष्य) प्रभो ! ऐसी कृपा करो कि आप और आप द्वारा निर्मित और कृपापूर्वक प्रदत्त सब प्रकार का धन ऐश्वर्य हमारे लिये सुखकारी हो, कल्याण का साधन बने और हमारे अभ्युदय का कारण बने ।

पुरन्धिः शमु सन्तु रायः (**पुरन्धिः=पुरवः बहवोः पदार्थाः ध्रियन्ते यस्मिन् स आकाशः**—बहुत पदार्थ जिसमें रखे जाते हैं वह आकाश: **शम् उ=सुखकरः**—सुख करनेवाला; **रायः=धनानि**— विविध प्रकार के धन महर्षि भाष्य) परमेश्वर ! आप सर्वाधार प्रभु की अपार कृपा से हमारी ऐन्द्रिक शक्तियाँ और आप द्वारा प्रदत्त समस्त धन-सम्पत्ति हमारे लिये कल्याणकारी हों । संसार के धारण करने वाले आप तथा प्राणाधार वायु, जीवन स्थिर रखने वाले प्राण एवं सब प्रकार का धन आपकी कृपा-दृष्टि से हमारी भलाई के लिये हो ।

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः (**सत्यस्य यथार्थस्य धर्मस्य परमेश्वरः**---सत्यार्थ धर्म वा परमेश्वर की; **सुयमस्य**=**सुष्ठु नियमेन प्रापणीयस्य**---सुन्दर नियम प्राप्त करने योग्य व्यवहार की— महर्षिभाष्य) सत्य पर आधारित नियमित धार्मिक दिनचर्या के अनुसार अथवा ईश्वराज्ञा को मुख्य रखकर जीवन यापन करने से संसार में जो प्रशंसा प्राप्त होती है **'सिद्धे मारग चलदिआं उसतति करे जहान'** वह तथा जितेन्द्रियता के

व्रतानुसार आचरण करने से जो पुण्यस्तुति उपलब्ध होती है वह भी हमें तज्जन्य आनन्द एवं शान्तियुक्त प्राप्त हो ।

शं नः अर्यमा पुरुजातो अस्तु (**अर्यमा**=**न्यायकारी**—न्यायकारी; **पुरुजातः**='**पुरुपु बहुषु नरेषु प्रसिद्धः**--बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध; **अस्तु**=**भवतु**—होवे महर्षि भाष्य) प्रभो ! आप न्यायकारी, न्यायनिर्माता, न्यायप्रदाता और महान् शक्ति शाली हैं, विश्व के जन समूहों में महान् प्रसिद्ध हैं। कृपा करो कि ये समस्त शक्तियाँ, उत्तम गुण कर्म स्वभाव हमारी शान्ति, कल्याण, भलाई, प्रसिद्धि और सुख-समृद्धि एवं प्रशंसा के लिये हों ।

Oh God. **'भगः'** mayest Thou, and may the prosperity bestowed upon us by Thee, **'नः शम् अस्तु'** be conducive to our peace, and by Thy Grace **'उ नः शम् अस्तु'** may there be heartening praise for us from our brethren. **'पुरन्धि नः रायः शम् सन्तु'** Mayest Thou who supportest the whole world, and may the vital forces energising our bodies and all the riches we possess, be conducive to our all-round joy and peace. **'शम् नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः'** May the deserving praise of truthful and righteous dealings and a life of regularity and control of the senses, appreciated all over the world, be conducive to our peace and supreme happiness. **'शम् नः अर्यमा पुरुजातः अस्तुः'** Mayest Thou, oh God, maker of justice, Wielder of Supreme power, be for our peace and happiness.

रुचिरः छन्द

सारे वैभव कथन हमारे, सदा शान्तिकर सुखकर हों ।
पुरधारी वरु बुद्धि और धन, सदा सुधारों के घर हों ।
सत्य 'सूर्य' सुन्दर संयम का, शासन शान्ति योग वर हों ।
भूत, भव्य भगवान् अर्यमा, शंकर सुखद शोकहर हों ॥

कौन भुला सकता है : सादगी की मूर्ति
ज्ञान के पुंज : महाविद्यालय ज्वालापुर के निर्माता

स्व० श्री पं० नरदेव जी शास्त्री "वेदतीर्थ"

मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक पण्डिता राकेश रानी के लिये भाटिया प्रेस, दिल्ली में छपा

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
करौल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष ५६६६३६

D.A.V.P. से स्वीकृत
फरवरी १९७६
फाल्गुन २०३२

रजि० नं०
डी०—(सी०) २०१
R.N.No. 107119/65

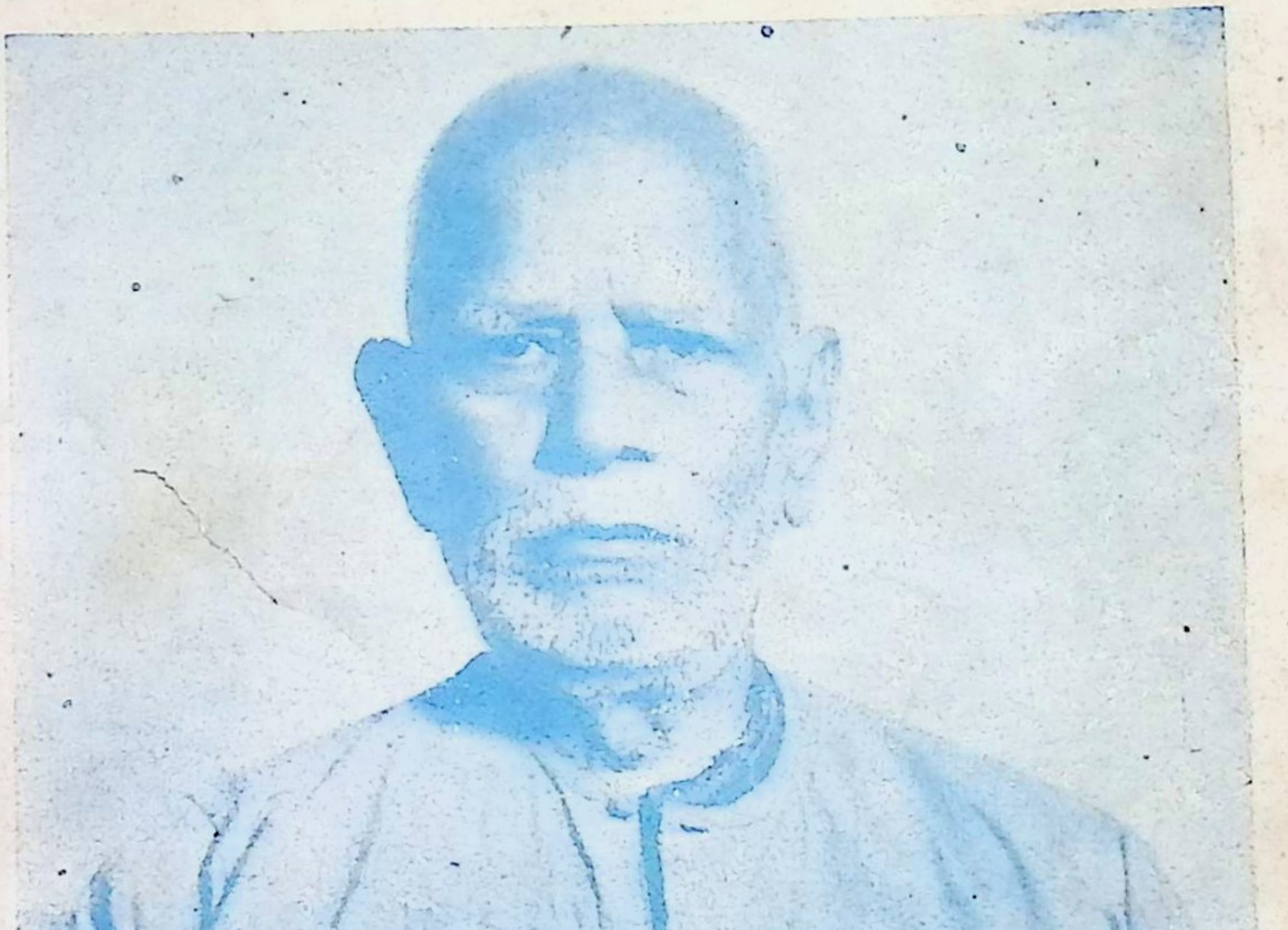

उत्तर प्रदेशीय आर्यप्रतिनिधि सभा व सार्वदेशिक
आर्यप्रतिनिधि सभा के निर्माण में प्रमुख : अध्यात्म के स्रोत

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज